महात्मा गांधी

मोहनदास करमचन्द गांधी

एक प्रेरक जीवनी

नरेन्द्र शर्मा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

महात्मा गांधी की जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित

मूल्य: 4.25

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली 1 द्वारा प्रकाशित
तथा प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित

विषय सूची

जन्मभूमि और परिस्थिति

सन अठारह सौ उनहत्तर में दो अक्तूबर के दिन, दिन के प्रथम प्रहर में मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म पोरबन्दर में हुआ। जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह नगर एक बंदरगाह है। यह भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर बसा हुआ है। इसका पुराना नाम सुदामापुरी है,
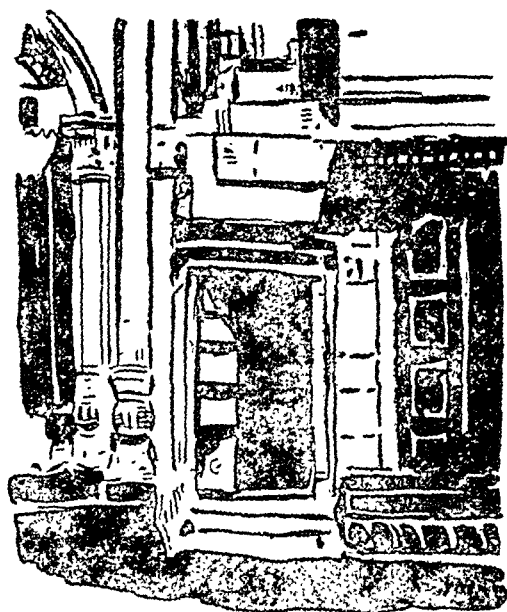
वह मकान जहां महात्मा गांधी ने जन्म लिया।

जिसका सम्बन्ध कृष्ण-सुदामा की प्राचीन कथा से है। शहर पोरबन्दर या सुदामापुरी गुजरात राज्य के सौराष्ट्र अंचल में स्थित है। सौराष्ट्र का इतिहास बहुत पुराना है। यहीं समुद्र तट पर श्रीकृष्ण की बसाई

हुई द्वारकापुरी थी। यहीं इतिहासप्रसिद्ध सोमनाथ का मंदिर भी है।

स्वतन्त्र भारत की स्थापना से पहले सौराष्ट्र में छोटी-छोटी अनेक देसी रियासतें थीं। ऐसी ही एक रियासत पोरबन्दर नाम की भी थी। मोहनदास करमचंद गांधी के दादा उत्तमचंद और पिता करमचंद इस रियासत के दीवान थे। उत्तमचंद और करमचंद गांधी अपनी कार्यकुशलता, ईमानदारी, स्वाभिमान, आन और अपने नेक चाल-चलन के लिए प्रसिद्ध थे। दरबार और प्रजा में इनका मान था।

उत्तमचंद गांधी रामभक्त थे। घराने में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का नियमित रूप से पाठ होता था। बाल्यकाल के
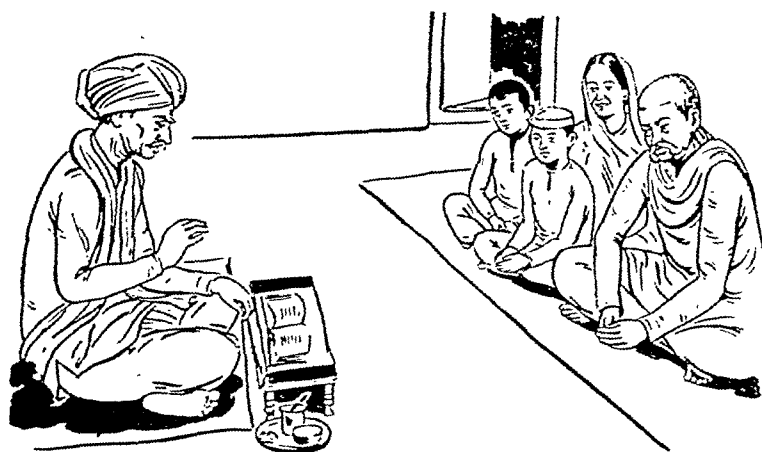
महात्मा गांधी के घराने में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का नियमित रूप से पाठ होता था।

अपने संस्मरणों में मोहनदास करमचंद गांधी ने 'आत्मकथा' में लिखा है: "मेरे मन पर रामायण-पाठ का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था, जो अमिट रहा। रामायण का पाठ मेरे पिता जी के सामने होता था।

पाठ करने वाले थे विल्वेश्वर मंदिर के लड्ढा महाराज। कहा जाता था कि लड्ढा महाराज ने विल्वेश्वर महादेव पर चढ़ाए हुए विल्वपत्रों और रामायण-पाठ से अपने कोढ़ रोग को अच्छा कर लिया था। उनका कण्ठ वहुत मीठा था। आवाज सुरीली थी। दोहा-चौपाइयों का स्वर-पाठ करके, वह उनका अर्थ समझाते जाते थे। वह रामायण की कथा में पूरी तरह तल्लीन हो जाते थे और यही हाल सुनने वालों का भी होता था।" कहना न होगा कि मोहनदास करमचंद गांधी के मन पर लड्ढा महाराज के रामायण-पाठ का प्रभाव जीवन भर वना रहा।

अपने दादा के वारे में मोहनदास करमचंद गांधी ने 'आत्मकथा' में कहा है: "मेरे दादा उत्तमचंद गांधी उर्फ ओता गांधी असूल के पक्के जरूर रहे होंगे। रियासती दाव-पेंच के कारण उन्हें पोरवन्दर से विदा लेनी पड़ी, जहां वह दीवान के पद पर रह चुके थे। उन्हें जूनागढ़ में आश्रय लेना पड़ा, जहां उन्होंने जूनागढ़ के नवाव को वाएं हाथ से सलाम किया। इस अशिष्टता की कैफियत तलव की गई, तो ओता गांधी ने जवाव दिया कि दायां हाथ तो पोरवंदर का हो चुका है।"

पोरवंदर से विदाई का कारण सिद्ध करता है कि उत्तमचंद गांधी आन के आदमी थे। पोरवंदर की राजमाता किसी व्यापारी से रुष्ट हो गई थीं। वह उसे दण्ड देना चाहती थीं। व्यापारी उत्तमचंद गांधी का शरणागत हुआ। शरणागत को आश्रय देना उत्तमचंद गांधी ने अपना धर्म समझा। क्रुद्ध राजमाता ने उत्तमचंद गांधी के घर पर तोप दगवा दी। लेकिन दीवान ने शरणागत का त्याग नहीं किया और दरवार से उसकी रक्षा का वचन लेकर ही, पोरवन्दर से विदा ली। "प्राण जायं पर वचन न जाई"—उत्तमचंद गांधी, रामायण के इस वचन को सिद्धान्त वाक्य मानते थे।

उत्तमचंद गांधी की पहली पत्नी चार पुत्र छोड़ गई थीं। दूसरी

पत्नी से दो पुत्र हुए, जिनमें करमचंद बड़े और तुलसीदास छोटे थे। ये दोनों क्रमशः पोरबंदर के दीवान बने। परिवार के बड़ों के बारे में मोहनदास ने 'आत्मकथा' में लिखा है कि "अपने बचपन में न तो मुझे ज्ञात ही हुआ और न ऐसा लगा ही कि उत्तमचंद गांधी के छह बेटे एक ही मां के सहोदर भाई नहीं हैं।"

करमचंद गांधी के बारे में गांधी जी ने लिखा है, "मरे पिता संयुक्त परिवार के प्रेमी, सत्यवादी, बहादुर और उदार थे। कुछ क्रोधी भी थे। शिक्षण उनका नहीं के बराबर था। उन्होंने जो कुछ सीखा, अपने अनुभव से। पढ़ाई उनकी अधिक से अधिक गुजराती की पांचवीं कक्षा तक रही होगी। लेकिन अपने यथार्थ अनुभव ज्ञान से वह पेचीदा से पेचीदा सवालों को हल और सैकड़ों लोगों पर शासन कर सकते थे।"

गांधी परिवार की बड़ी साख थी। इसीलिए करमचंद गांधी अपने छोटे भाई तुलसीदास गांधी को पोरबंदर के दीवान पद पर नियुक्त करा कर, राजकोट राज्य के दीवान बन गए। वह वांकानेर रियासत के दीवान भी कुछ दिनों रहे। राजकोट में छह वर्ष रहने के बाद करमचंद गांधी का स्वास्थ्य गिरने लगा। उन्हें लगा कि छोटे दो बेटों का विवाह भी कर देना चाहिए। मोहनदास उनके सबसे छोटे पुत्र थे। विवाह से समय वह तेरह वर्ष के थे।

मोहनदास, उनके मझले भाई करसनदास और एक चचेरे भाई के विवाह पोरबंदर में एक ही दिन सम्पन्न कराए गए। राजकोट से पोरबंदर जाते हुए करमचंद गांधी घोड़ागाड़ी से दुर्घटनाग्रस्त हुए। लेकिन अपने कर्मठ स्वभाव के अनुरूप, वह पट्टियों से बंधे हुए भी, पुत्रों के विवाह मंडप में बैठे और नेग-चार करते रहे।

दुर्घटना में चोट गहरी थी, जो बहुत दिनों तक करमचंद गांधी को सताती रही। बीमारी के दिनों में पोरबंदर में वह रामायण तो सुनते ही थे, राजकोट वापस लौटकर ,वह पारसी, मुस्लिम और जैन विद्वानों

से भी धार्मिक सत्संग करते रहे। ऐसे अवसरों पर मोहनदास अपने पिता जी की सेवा में उपस्थित रहते थे।

मोहनदास ने अपने बीमार पिता की मन लगाकर सेवा-सुश्रूपा की। किन्तु एक के बाद दूसरी बीमारी करमचंद गांधी को घेरे रही और इस तरह तीन वर्ष बिता कर, वह परलोक सिधारे। तब मोहन-दास करमचंद गांधी की उम्र सोलह वर्ष की थी। पिता जी की मृत्यु के साथ घर की सम्पदा भी चली गई।

दो वर्ष बाद मोहनदास ने हाई स्कूल की परीक्षा अहमदाबाद केन्द्र से बैठकर पास कर ली। इंटर की कक्षा में उन्होंने दाखला लिया भावनगर में सांवलदास कालेज में, किन्तु प्रगति संतोपप्रद न थी।

गांधी परिवार की आर्थिक दशा सन्तोषप्रद न थी। दीवान का परम्परागत पद हाथ से निकल गया। देसी रियासतों में भी अंग्रेजी भाषा और रीति-नीति का प्रभाव और प्रभुत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। अंग्रेजी माध्यम से उच्च शिक्षा पाने वाले भारतीय युवक मैदान में उतर चुके थे। अच्छी आजीविका और ऊंची पद-प्रतिष्ठा की योग्यता उन्हीं में दिखाई देती थी। इस नई दौड़ में मोहनदास के बड़े भाई लक्ष्मीदास आगे नहीं निकल सकते थे। मझले भाई, करसनदास होनहार न थे। दारोमदार मोहनदास पर ही था।

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म युग-संधि की वेला में हुआ था। एक ओर एशिया का मध्य युग सदा के लिए विदा ले रहा था और दूसरी ओर यूरोप की औद्योगिक सभ्यता विश्व पर छा जाने को थी।

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म सन अठारह सौ उनहत्तर में हुआ और उसी वर्ष स्वेज नहर का उद्घाटन हुआ, जिसके कारण पूर्व में पश्चिम की पहुंच बहुत अधिक बढ़ गई। उधर सुदूर-पूर्व जापान ने, मेजी क्रांति के द्वारा पश्चात्य सभ्यता और औद्योगिक विकास के लिए, सन अठारह सौ उनसठ में अपने द्वार खोल दिए।

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म-वर्ष भूचालों का वर्ष भी कहा जाता है। किन्तु भौतिक भूचालों से कहीं अधिक प्रभावशाली था आधुनिक संस्कृति और सभ्यता का वह आन्दोलन, जो एशिया भर के निवासियों को और विशेषतः भारतीय भद्र वर्ग को मध्य युग के अन्त और आधुनिक युग के आरम्भ के प्रति सचेत कर रहा था।

अपने किशोर काल में मोहनदास करमचंद गांधी भी इस प्रभाव से अछूते न रह सके। स्कूल के उनके साथियों में गुजराती भाषा के कवि नर्मद का एक पद्यांश उन दिनों बहुत प्रचलित था, जिसका सारांश था, "देखो तो कैसा कद्दावर है गोरा अंग्रेज जवान! वह पिद्दी-से हम छोटे-छोटे हिन्दुस्तानियों पर राज करता है, क्योंकि गोश्त की खुराक पर पलकर वह ऊंचा-तगड़ा बनता है।"

इन्हीं दिनों शेख मुख्तार नाम के दोस्त ने मोहनदास को पाठ पढ़ाया, "हम हिन्दुस्तानी बोदे लोग हैं, क्योंकि हम गोश्त नहीं खाते। अंग्रेज गोश्त खाते हैं, इसलिए हम पर राज करते हैं। मुझे देखो, मैं गोश्त खाने से कैसा तगड़ा हो गया हूं। मैं दौड़ में भी तुम्हें पछाड़ सकता हूं। गोश्त खाने से फोड़े-फुंसी भी नहीं होते। कभी हुए भी तो अपने-आप ठीक हो जाते हैं।"

इस प्रसंग में मोहनदास करमचद गांधी ने 'आत्मकथा' में लिखा है: "जिन दिनों मैं इस मित्र के सम्पर्क में आया, राजकोट में 'सुधार' की लहर आई हुई थी। इस मित्र ने मुझे बतलाया कि स्कूल के हमारे कई-एक शिक्षक भी चुपचाप गोश्त खाते और शराब पीते हैं। इस नए चलन में चलने वाले अनेक ऐसे व्यक्तियों के नाम भी उसने गिनाए, जो नगर के प्रतिष्ठित और नामी लोग माने जाते थे।"

गोश्त खाने के पक्ष में दलीलों का तांता लग गया। मोहनदास पर दलीलों का असर होने लगा। वह भी भारतवासियों पर राज करने वाले अंग्रेज़ों की तरह तगड़े और हिम्मत-बहादुर बनने की बात सोचने लगे। गोश्त खाने का प्रयोग हुआ। किन्तु परिणाम अरुचिकर

सिद्ध हुआ। रात को कटे हुए बकरे की आवाज कानों में गूंजने लगी। बड़ों का जी दुखाने का डर लगा। चोरी-छिपे कुछ करने के प्रति मन में ग्लानि पैदा हुई। दो-चार बार नया प्रयोग करने के बाद, मोहनदास करमचंद गांधी ने निर्णय किया : "माना कि यह अनिवार्य है कि मासांहार करना चाहिए। हम हिन्दुस्तानियों को अपने खानपान में सुधार करना ही होगा। लेकिन यह सुधार अपने माता-पिता को धोखे में रखकर नहीं किया जा सकता। धोखा देना बुरी बात है।"

इसका बड़ा मार्मिक उदाहरण उनकी आत्मकथा में मिलता है अपने मझले भाई सहित मोहनदास बुरी संगत में पड़ गए और चोरी-छिपे सिगरेट-बीड़ी पीने के कारण कुछ उधार कर लिया। भरपाई करने के लिए मझले भाई के सोने के कड़े में थोड़ा-सा सोना कटवा कर बेच दिया गया। मन कहता था कि पिता जी के सामने जाकर अपराध स्वीकार करो और क्षमा मांग लो, लेकिन लिहाज इतना था कि ऐसा करते डर भी लगता था।

मोहनदास इस प्रसंग में कहते हैं : "यह बात नहीं कि डर पिटाई होने का था। नहीं, पिता जी ने बच्चों को कभी हाथ भी न लगाया था। डर तो उनका जी दुखाने का था। लेकिन सच-सच तो उन्हें कहना ही होगा। अपराध स्वीकार किए बिना मन कैसे शुद्ध होगा? मुंह न खुलता था इसलिए मैंने पत्र में सब-कुछ लिख देने का निर्णय किया। मैंने पत्र लिखा और स्वयं अपने हाथ से उन्हें दिया। मैंने पत्र में अपने अपराध को स्वीकार किया, उचित दण्ड देने का अनुरोध किया और अन्त में विनती की, पिता जी अपना जी न दुखाएं। मैंने प्रतिज्ञा की, फिर कभी चोरी न करूंगा।

"पिताजी को पत्र देते समय मेरे हाथ कांप रहे थे। वह रोग-शैय्या पर पड़े थे। उनका बिस्तर तख्ते पर लगा था। मैं वहीं बैठ गया। उन्होंने पत्र पढ़ा। मोती जैसी आंसू की बूंदें उनके मुख पर बहती

कागज पर पड़ीं। थोड़ी देर के लिए उन्होंने अपनी आंखें बंद कर लीं। वह कुछ सोचते रहे। और फिर उन्होंने कागज को फाड़ दिया। मैं भी रोया। पिताजी के मन की पीड़ा को मैं समझ सका था
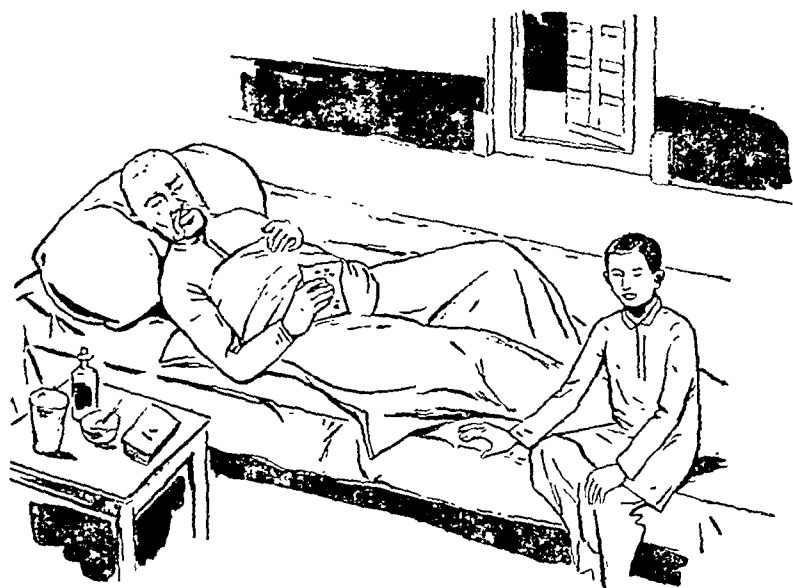
"उन्होंने पत्र पढ़ा। मोती जैसी आंसू की बूंदें उनके मुख पर बहती हुई कागज प
पड़ीं। थोड़ी देर के लिए उन्होंने अपनी आंखें बन्द कर लीं। पिताजी के म
की पीड़ा को मैं समझ सका था।"

यदि मैं चित्रकार होता तो आज भी उस दृश्य को ज्यों-का-त्यों चित्रि कर देता। दृश्य आज भी हूबहू मेरी आंखों के सामने है। प्रेम वे आंसुओं की मोती जैसी उन बूंदों ने मेरे मन को शुद्ध कर दिया। मेर पाप धुल गया। जिसने ऐसा प्रेम पाया हो, वही जान सकता है उसकी शक्ति को।"

मोहनदास के घर के संस्कार अच्छे थे। श्रीराम का एक पत्नी-व्रत, सत्यवादी हरिश्चन्द्र की सत्य-प्रतिज्ञा और श्रवणकुमार की पितृ

भक्ति, रामायण और पौराणिक नाटकों के सुनने-पढ़ने से, मन में घर कर चुके थे।

उन दिनों मोहनदास स्वयं को स्वभावत: डरपोक समझते थे। अंधेरे में मोहनदास को बहुत डर लगता था। भूत-प्रेत के भय से वह अंधेरे में सो भी न सकते थे। रात को बाहर निकलना उनके वस की बात न थी। घर की नौकरानी रम्भा बहन से मोहनदास ने भय भगाने का मंत्र सीखा। रम्भा बहन ने उन्हें बताया कि राम-राम जपने से भय निकल जाता है। मोहनदास ने यह बात गांठ बांध ली।

राम-भक्ति के कारण छुआछूत की भावना से भी मुक्ति मिली। क्या श्रीराम ने निषाद को गले नहीं लगाया था ? इस विषय में मोहन-दास अपनी मां की भी न सुनते थे। घर की सफाई के लिए आने वाले ऊका नामक भंगी के प्रति अत्यधिक छूआछूत का वर्ताव बालक मोहन-दास के गले न उतरता था।

मोहनदास अपनी मां के लाड़ले थे। माता पुतलीबाई पोरबंदर में राजमाता और राजकोट में रानी साहिबा के बुलावों पर राजमहलों में जातीं, तो अपने छोटे पुत्र को भी साथ ले जाती थीं। मोहनदास का बचपन अपनी मां की आंचल छाया में बीता था।

करमचंद गांधी अपने छोटे पुत्र मोहनदास को प्यार से मनु कहते थे। माता पुतलीबाई मनु को मोनिया कहती थीं। वह करमचंद गांधी की चौथी पत्नी थीं। पहली से एक पुत्री हुई और वह परलोक सिधारीं। दूसरी पत्नी भी एक पुत्री को जन्म देकर चल बसीं। तीसरी निस्संतान गईं। पुतलीबाई एक पुत्री और तीन पुत्रों की माता बनीं, जिनमें मोहनदास सबसे छोटे थे।

मोनिया छुटपन में पारे जैसा चंचल था। पूजा की कोठरी उसका खेलघर थी। बड़ी बहन की गोद से उतर कर, वह ठाकुर की जगह भगवान की चौकी पर जा बैठता। और जब कीला-कांटी करने लगा, तो पूजाघर के फर्श को खड़िया से रेखांकित कर देता।

कुछ और बड़ा हुआ तो एक पांव सदा घर के बाहर रहता। बहन मर्यादा बांधती, तो अकेला खड़ा-खड़ा गाय-बैलों को देर तक चुपचाप देखता रहता और उनसे मेल-जोल बढ़ाता।

दौड़ने-भागने लायक हुआ, तो अमरूद के पेड़ पर चढ़ जाता और फल खाने लगता। बड़ी बहन कहां तक संग लगी डोलती? निगाह रखने के लिए कोई नौकर-चाकर भेजा जाता, तो स्वाभिमानी और स्वावलम्बी मोनिया बुरा मानता। उसकी कोई निगरानी या मदद करें, मोनिया को यह अच्छा न लगता।

एक दिन मझले भाई ने मारा। मां से फरियाद हुई। मां ने कहा, तू भी मार, हिसाब बराबर हो जाएगा। मोनिया ने मां की ओर कुछ ऐसे देखा, जैसे धरती फट गई हो। कहा—"मां, कहीं बड़े भाई पर हाथ उठाया जाता है? तू भाई को समझाने की जगह, मुझे ही गलत शिक्षा देती है। मैं किसी पर भी हाथ नहीं छोड़ता, तो क्या बड़े भाई पर हाथ उठाऊंगा?" मां ने हंसकर कहा—"तर-ऊपर के भाई-बहनों में तो ऐसा ही होता है।" मोनिया ने आपत्ति की—"लेकिन बड़े भाई को उलटकर मार बैठना तो बहुत बुरी बात है। मैं पिट लूंगा, पर भाई को कभी हाथ न लगाऊंगा।"

"तुझे यह सब कौन सिखाता है, मोनिया," —यह कहते कहते मां गद्‌गद् हो गईं।

मां ने अपने लाड़ले को मन से प्यार किया। उसे अपनी बांहों में भरकर वह बोलीं—तुझे यह सब कौन सिखाता है, मोनिया—और यह कहते-कहते वह गद्‌गद् हो गईं।

मोनिया पाठशाला जाने लगा। संयुक्त परिवार में काम-धन्धे से घिरी हुई मां समय से

खाना न दे पातीं, तो खाखरा और दही खाकर मोनिया पाठशाला चला जाता। बचपन से ही समय का पाबन्द था। घर से सीधे पाठशाला और पाठशाला से सीधे घर आना मोनिया का नियम था।

मोनिया अपने संकोची स्वभाव के कारण सहपाठियों के साथ भी बहुत कम मिलता-जुलता था। संयोगवश किसी समवयस्क बालक से मित्रता हो जाती, तो मोनिया उसे मन से निभाता। एक बार अपने मित्र को आम खाने का न्यौता दिया। दावत के ऐन दिन न्यौते हुए मित्र को स्मरण दिलाने की याद नहीं रही। आम-रस की दावत में मित्र शामिल न हो सका। अपनी भूल के लिए मोनिया ने पश्चाताप-वश उस साल आम न खाने की प्रतिज्ञा की। मित्र ने और घर के बड़ों ने समझाया-बुझाया, लेकिन मोनिया अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा।

स्कूल में निरीक्षण के समय, इंस्पेक्टर से आंख बचाकर, शिक्षक ने किसी शब्द को गलत से ठीक लिखने का संकेत दिया। लेकिन नकल करना मोनिया को स्वीकार न था। विशेष बात यह है कि शिक्षक के विषय में भी निरादर की भावना मन में न जाने दी। बाल्यकाल में भी मोनिया का नियम था कि बड़ों के दोषों की ओर न देखना चाहिए।

परिश्रम और रटन्त से बचने के लिए हाई स्कूल के छात्र मोहनदास करमचंद गांधी ने संस्कृत से पल्ला छुड़ाने की ठानी। संस्कृत के अध्यापक ने समझाया कि संस्कृत से कतराना अपनी संस्कृति से ही हाथ धो लेना है। प्रोत्साहन का अच्छा प्रभाव पड़ा। और जब मोहनदास के प्रति अध्यापक ने पूर्ण विश्वास व्यक्त किया, भरोसे का बोझ डाला, तो मोहनदास ने अभ्यास और अध्यवसाय से उत्तीर्ण होना अपना कर्त्तव्य समझा। अपने विवाह के कारण फेल होने से स्कूल में एक वर्ष खो दिया था, अब एक साथ दो कक्षाएं पार कर क्षति-पूर्ति कर ली। इस सफलता से आत्मविश्वास बढ़ गया।

वह अपने शिक्षकों के प्रति विनीत थे, पढ़ाई पर पूरा ध्यान देते थे। उन्होंने स्वयं को मामूली विद्यार्थी कहा है। किन्तु एक बार

उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली थी, जिसके लिए मोहनदास ने अपनी योग्यता को नहीं, अपने सोरठ निवासी होने को ही श्रेय दिया।

जिस वर्ष मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म हुआ, उस वर्ष में उनकी भावी कर्मभूमि दक्षिण अफ्रीका में दो घटनाएं घटीं। एक तो यह कि उस वर्ष वहां हीरे की एक खान का पता लगा। और दूसरी यह कि भारत की अंग्रेजी सरकार ने उसी वर्ष, प्रवासी भारतीयों के प्रति दक्षिण अफ्रीका की सरकार के दुर्व्यवहार पर विरोध प्रकट करते हुए, वहां भारतीय मजदूरों को भेजने से इन्कार कर दिया। भारतीय मजदूरों के विना दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार का काम नहीं चल सकता था। और इस काम में भारत की अंग्रेजी सरकार दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार से असहयोग कर रही थी। उद्देश्य था दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतियों के हितों का थोड़ा-बहुत संरक्षण। कौन जानता था कि अपने भावी जीवन में मोहनदास करमचंद गांधी को यह कार्य स्वयं अपने हाथ में लेना होगा?

मोहनदास करमचंद गांधी के जन्म-वर्ष, सन अठारह सौ उनहत्तर में अंग्रेजों के विरुद्ध पहले स्वातंत्र्य संग्राम, यानी तथाकथित सन सत्तावन के गदर को हुए पूरे बारह वर्ष बीत गए थे। कौन जानता था कि बारह वर्ष के बाद भारत का भाग्य फिर पलटा खा रहा था?

मोहनदास करमचंद गांधी के जन्म के समय शायद ही किसी ने यह भविष्यवाणी की हो कि वह नवभारत के मुक्तिदाता और महा-मानवता के महात्मा कहलाएंगे।

भारत की पुराणप्रिय धर्मप्राण जनता में अनेक ऐसे लोग होंगे जो महात्मा गांधी को अवतारों में गिनती करते हैं। किन्तु उन्हें अवतार न कहकर, यदि हम आरोही आत्मा कहें, तो अधिक उपयुक्त होगा। उन्होंने अवतरण नहीं, आरोहण किया था। यानी यह कि वह सामान्य से महामान्य बने थे।

टाल्सटाय, रस्किन और रायचंद भाई ने गांधी जी को प्रभावित किया। किन्तु उनके मन पर सर्वाधिक प्रबल प्रभाव संभवतः उनकी माता पुतलीबाई का ही था। माता के असीम प्रेम से मोहनदास को आत्मविश्वास और दायित्वबोध मिला था। माता के आदेश से ही उन्होंने तीन व्रत लिए थे, जिन्हें उन्होंने आजीवन निभाया। व्रत-पालन से ही उनकी अन्तर्शक्ति जागी। माता के पवित्र आंचल की छाया में ही मोहनदास करमचंद गांधी का सदाचारी जीवन विकसित हुआ। माता की अथाह ममता ही मोहनदास के मन की मानवीयता बनी।

सन 1947 में जब यूनेस्को के तत्कालीन प्रधानमंत्री मनीषी डाक्टर जूलियन हक्सले ने मानवाधिकारों के विषय में सन्देश मांगा, तो 25 मई सन सैंतालीस के अपने पत्र में गांधी जी ने दिल्ली की भंगी बस्ती से लिखा था : "मैंने निरक्षर किन्तु विवेक-ज्ञान-सम्पन्न अपनी माता से सीखा था कि मनचाहे सब अधिकारों की प्राप्ति और रक्षा का उपाय है निष्ठापूर्वक कर्त्तव्य पालन। इस प्रकार हमें विश्व में जीवित रहने का अधिकार भी तभी मिल सकता है, जब हम विश्व-नागरिक की हैसियत से अपने कर्त्तव्यों का पालन करें। इस कथन को आधार मानकर, विश्व के सब स्त्री-पुरुषों के अनिवार्य कर्त्तव्यों की व्याख्या करना सहज संभव है। कर्त्तव्यों को प्राथमिकता देने और पहले उनका पालन करने से अधिकार आप-से-आप मिलते जाते हैं। अनधिकार अधिकार की मांग और उसके लिए संघर्ष निरर्थक है।"

त्याग, तपस्या, साधना और सिद्धि से सम्पन्न अपने महान जीवन में गांधी जी ने अपनी प्यारी मां की सीख को ही गुरुमंत्र के रूप में ग्रहण किया था। गुरु करने की उत्कट इच्छा और सनातन गुरु-शिष्य परम्परा में आस्था होते हुए भी, वह गुरु के आसन पर किसी को बिठा न सके।

मोहनदास करमचंद गांधी अपने आरंभिक यौवनकाल में, पाश्चात्य विचारों से प्रभावित भारत में अपना स्थान बनाने, अपने परिवार की प्रतिष्ठा बनाए रखने और इस हेतु अच्छी आजीविका कमाने योग्य बनने के लिए लालायित और प्रयत्नशील थे। उच्च शिक्षा ग्रहण करने की लगन बहुत-कुछ इसी उद्देश्य से थी। किन्तु भावनगर के सांवलदास कालेज में इंटर प्रथम वर्ष में पढ़ने वाले छात्र को अपने उद्देश्य की पूर्ति सहज संभव दिखाई न देती थी।

एकाएक यह विचार सामने आया कि देश में चार-छह वर्ष लगाकर, सामान्य शिक्षित बनने से क्या यह अच्छा न होगा कि विलायत जाकर, तीन वर्ष में बैरिस्टर बन लिया जाए।

स्वाभाविक रुझान डाक्टरी की ओर था। लेकिन वैष्णव परिवार का सदस्य चीर-फाड़ की विद्या सीखे, बड़ों को यह मंजूर न होता। इसलिए यही रास्ता था कि गांधी परिवार का होनहार नवयुवक मोहनदास बैरिस्टर बने और दादालाई गद्दी को संभाले, यानी काठियावाड़ की किसी रियासत का दीवान बने।

●

विलायत की यात्रा

मोहनदास करमचंद गांधी ने अपनी उम्र के उन्नीसवें वर्ष में विलायत जाने का इरादा किया। उस उम्र में भी वह इरादे के पक्के थे। इसका प्रमाण यह है कि बहुत कम साधन और बहुत अधिक कठिनाइयों के रहते हुए भी, दो-चार महीनों में ही उन्होंने विलायत जाने के अपने इरादे को पूरा कर दिखाया।

जैसे आज नवयुवक साथी-सहपाठी विदेश जाने की सम्भावनाओं पर आपस में बातचीत करते हैं, वैसे उन दिनों भी उनके बीच ऐसी चर्चा चलती थी। इस विषय में मोहनदास करमचंद गांधी ने अपनी पहली समुद्र यात्रा की डायरी में लिखा है :

"जब मैं भावनगर कालिज में पढ़ता था, जयशंकर बूच से मेरी मामूली-सी बातचीत हुई। उन्होंने मुझे सलाह दी कि तुम सोरठ के निवासी हो, इसलिए जूनागढ़ दरबार में लंदन जाने के लिए छात्र-वृत्ति पाने की अर्जी दो।"

मोहनदास के मन में छात्रवृत्ति पाने की आशा तो न बंधी, पर विलायत जाने का इरादा घर कर गया। गर्मी की छुट्टियों में वह अपने घर राजकोट आए। अपने बड़े भाई लक्ष्मीदास के साथ परिवार के पुरोहित मावजी जोशी से मिलने गए। उन्होंने भी मोहनदास को विलायत भेजने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि लक्ष्मीदास अगर तुम्हारे पास रुपया न हो तो अपना साज-सामान (फर्नीचर) बेच डालो। पर किसी भी तरह मोहनदास को लंदन भेज ही दो। मैं समझता हूं कि तुम्हारे स्वर्गवासी पिता की प्रतिष्ठा बनाए रखने का एकमात्र उपाय यही है।

दीवान बनने के लिए पिता और पितामह को न अंग्रेजी स्कूल-

कालिज में पढ़ने की आवश्यकता पड़ी थी, न विलायत जाने की। पर समय बदल गया था। भारत में अंग्रेजी राज जड़ जमा चुका था। सन अठारह सौ सत्तावन की विफल क्रांति के बाद भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन गया था। देसी रियासतों में भी अंग्रेजी शासन, भाषा और संस्कार का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। वहां भी पढ़े-लिखे महत्वाकांक्षी भारतीय युवक अब अंग्रेजीदां बनने में ही अपनी भलाई समझते थे। उनमें भी वे, जो विलायत जाकर पढ़ाई कर पाते थे, श्रेष्ठ समझे जाते थे। अच्छी आजीविका, समाज में प्रतिष्ठा, ऊंचा पद और जीवन में सफलता पाने का सबसे अच्छा रास्ता विलायत जाना था। बड़े भाई ने अपने होनहार छोटे भाई को लंदन भेजने का वादा कर दिया।

बड़े भाई के वादे से, मोहनदास करमचंद गांधी के विलायत जाने के इरादे के पूरे होने में एक कठिनाई दूर हुई। लेकिन कठिनाइयों की शुरूआत भी यहीं से हुई। लक्ष्मीदास गांधी ने परिवार के हितैषी पुरोहित के आदेशानुसार बात को गुप्त रखने का वचन दिया था, पर वह बहुत भोले थे। उन्होंने चचेरे भाई, खुशालभाई से बातचीत की। बात उन्हें पसंद आई। पर शर्त इतनी ही थी कि मैं अपने धर्म का पालन कर सकूं। विलायत में धर्म का पालन हो सकता है या नहीं, यह जानने के लिए मोहनदास पुरोहित मावजी भाई के बैरिस्टर पुत्र केवलराम भाई से मिले। वह विलायत जा चुके थे। मावजी जोशी का कहना था कि लंदन जाने में पांच हजार रुपये लगेंगे और वहां रहते हुए भी मांस-मदिरा से बचाव हो सकता है। केवलराम भाई का कहना था कि "तुम्हें वहां कम-से-कम दस हजार रुपये खर्च करने पड़ेंगे। अगर तुम्हारे मन में कोई धार्मिक आग्रह हों तो उनको, तुम्हें छोड़ देना होगा। तुम्हें मांस खाना पड़ेगा। शराब पिए बिना भी काम न चलेगा। जितना ज्यादा खर्च करोगे, उतने ही ज्यादा होशियार बनोगे। मैं तुमसे साफ-साफ कहता

हूं। बुरा मत मानना। तुम अभी बहुत छोटे हो। लंदन में प्रलोभन बहुत हैं। तुम उनके फंदे में फंस जाओगे।"

स्थिति ऐसी थी कि कोई चेतावनी देता था, तो कोई झूठा प्रोत्साहन। चचेरे भाई मेघजी ने पांच हजार रुपये देने का आश्वासन दिया। मोहनदास ने डायरी में लिखा है कि "जब बात मेरी प्यारी मां के सामने आई, तो उन्होंने मेरे इस भोलेपन पर फटकार बताते हुए कहा कि समय आने पर तुम्हें उनसे कुछ न मिलेगा।"

मां की बात सच निकली। रुपये मांगने पर मेघजी भाई ने शत्रुता साध ली। वह मोहनदास की जगह-जगह निन्दा करने लगे। लाड़ले बेटे की निन्दा से माता पुतलीबाई का जी दुखता, तो मोहनदास कोई दूसरी बात चलाकर मां को हंसाते और उनका मन शांत करते।

माता इस बात पर राजी हो गई कि पोरबंदर में परिवार के बड़ों से विलायत जाने की बात की जाए। चाचा जी की अनुमति और रियासत के अंग्रेज प्रशासक मिस्टर लेली से आर्थिक सहायता पाने के लिए मोहनदास राजकोट से बैलगाड़ी और ऊंट की सवारी पर पोरबंदर गए।

मोहनदास ने अपनी डायरी में लिखा है: "सबसे पहले मैंने चाचा जी से भेंट की और उनसे पूछा कि उन्हें मेरा लंदन जाना पसंद है या नहीं। चाचा जी ने मुझसे लंदन जाने के फायदे गिनाने को कहा। मैंने अपनी समझ के अनुसार फायदे गिना दिए। तब उन्होंने कहा, "बेशक इस पीढ़ी के लोग इस बात को बहुत पसंद करेंगे। पर जहां तक मेरी बात है, मैं पसंद नहीं करता। फिर भी हम बाद में विचार करेंगे।"

उसी दिन देर से मिस्टर लेली से भी भेंट हुई। भेंट का वर्णन इस प्रकार है: "वह बहुत जल्दी में थे। वह मुझसे अपने बंगले के ऊपरी खंड के जीने पर चढ़ते-चढ़ते मिले थे। उन्होंने कहा कि पोरबंदर

रियासत बहुत गरीब है। इसलिए वह तुम्हें कोई आर्थिक सहायता नहीं दे सकती।"

आर्थिक सहायता के लिए मोहनदास चचेरे भाई परमानंद भाई के पास गए। डायरी में उल्लेख है कि उन्होंने कहा, "अगर तुम्हारे चाचा तुम्हारा लंदन जाना पसंद करें, तो मैं खुशी से रुपये दे दूंगा। मैंने इसे जरा कठिन ही समझा। पर मैं चाचा जी की अनुमति पा लेने पर तुला हुआ था। मैं जब उनसे मिला वह किसी काम में व्यस्त थे। मैंने उनसे कहा—चाचा जी, अब बताइए, आप मेरे लंदन जाने के बारे में क्या सोचते हैं? मेरा यहां आने का मुख्य उद्देश्य आपकी अनुमति प्राप्त करना ही है। उन्होंने उत्तर दिया—मैं अनुमति नहीं दे सकता। तो भी तुम्हारी माता और भाई को पसंद है, तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है। मैंने कहा—पर आप जानते ही हैं कि मुझे लंदन जाने की इजाजत न देकर आप परमानंद भाई को मेरी आर्थिक सहायता करने से रोक रहे हैं। मेरे यह कहते ही उन्होंने क्रोधभरी आवाज में कहा—तू क्या जाने, छोकरे, उन्होंने ऐसा क्यों कहा है? वह जानते हैं कि मैं तुझे जाने की अनुमति कभी नहीं दूंगा। इसलिए उन्होंने यह बहाना बनाया है। सच बात यह है कि वह तुझे कभी मदद न देंगे। मैं उन्हें मदद करने से रोकता नहीं।"

पोरबंदर मोहनदास का जन्मस्थान था। वहीं तेरह वर्ष की उम्र में उनका विवाह हुआ था। विलायत जाने के बारे में ससुराल के बड़ों से भी चर्चा करनी थी। अन्यत्र उन्होंनें इस विषय में कहा था: "अपने श्वसुर के साथ कई रात बैठना, उनकी आपत्तियों को सुनना और उनका संतोषप्रद उत्तर देना कोई सरल काम नहीं था। पर मुझे यह पुरानी कहावत कि धीरज और परिश्रम से पहाड़ भी कट जाता है, इतनी अच्छी तरह सिखाई गई थी कि मैं पीछे हटने वाला नहीं था।"

पोरबंदर से मोहनदास भावनगर गए। वहां किराये का अपना ठिकाना उन्होंने छोड़ दिया। फर्नीचर वगैरह सब सामान बेच डाला।

इस अवसर की स्मृति डायरी में अंकित है : "पड़ौसी मित्रों और दयामयी घर-मालकिन से विदा ली, तो उनकी आंखों में आंसू थे। मैं उनकी, अनूपराम की और अन्य मित्रों की आत्मीयता कभी भूल नहीं सकता।"

राजकोट के ठाकुर साहब और राजकाज के प्रबन्धक कर्नल वाटसन से मिलना बाकी था। आर्थिक सहायता तो न मिली, लेकिन ठाकुर साहब से एक फोटो प्राप्त हुई और दूसरे से परिचय की एक चिट्ठी। चिट्ठी देते हुए कर्नल ने बड़े गर्व से कहा था कि "इसका मूल्य लाख रुपये के बराबर है।" इस प्रसंग में मोहनदास ने लिखा था : "इस अवसर पर मुझे जो पक्की खुशामद करनी पड़ी थी, उससे मेरे मन में गुस्सा भर गया था।"

मोहनदास की जगह कोई और होता, तो हताश होकर घर बैठ जाता। मोहनदास ने लिखा है : "सचमुच ये दिन बड़े कठिन गुजरे। रात को मैं अच्छी तरह सो नहीं सकता था। हमेशा स्वप्नों के आक्रमण होते रहते थे। कुछ लोग मुझे लंदन न जाने के लिए समझाते, कुछ जाने की सलाह देते। कभी-कभी मेरी मां भी न जाने को कहती। और बड़ी अजीब बात तो यह थी कि मेरे भाई भी अकसर अपना मन बदलते रहते थे। इसलिए मैं अधर में लटके हुए त्रिशंकु की स्थिति में था। परन्तु सब लोग जानते थे कि एक बार किसी चीज को शुरू करके मैं छोड़ूंगा नहीं।"

राजकोट के एल्फ्रेड हाई स्कूल के साथियों ने 4 जुलाई, 1888 के दिन विदाई का समारोह किया। शुभ कामनाओं के उत्तर में, मोहनदास गांधी ने जो कहा, उसका सारांश स्थानीय 'काठियावाड़ टाइम्स' में छपा था : "मुझे आशा है कि दूसरे भी मेरा अनुकरण करेंगे और इंग्लैंड से लौटने के बाद हिन्दुस्तान में सुधार के बड़े-बड़े काम करने में सच्चे दिल से लग जाएंगे।"

डायरी में भी इस अवसर का उल्लेख है : "मुझे मेरे स्कूल के साथियों ने एक मानपत्र दिया था। मुझे जो कुछ बोलना था, उसे

आधा बोलने के बाद मैं कांपने लगा। आशा है, भारत लौटने के बाद फिर ऐसा न होगा।"

परिवार से विदाई का समय आया। उसकी स्मृति में, मोहनदास गांधी ने अन्यत्र कहा था: "आखिर वह दिन आ पहुंचा। एक ओर मेरी मां अपनी आंसूभरी आंखों को हाथों में छिपाए थीं। उनके सिसकने की आवाज साफ सुनाई पड़ रही थी। दूसरी ओर मैं लगभग पचास मित्रों के बीच में था। मैंने मन में कहा—"अगर मैं रोया तो ये लोग मुझे बहुत दुर्बल समझेंगे। शायद मुझे इंग्लैंड जाने भी न दें। इसलिए, यद्यपि मेरा हृदय फट रहा था, मैं रोया नहीं। अन्त में पत्नी से विदा लेने का अवसर आया। निस्सन्देह उसने बहुत पहले से ही सिसकना शुरू कर दिया था। मैं उसके पास गया और क्षण भर गूंगी प्रतिमा के समान उसके सामने खड़ा रहा। उसने कहा—"जाओ मत।"

10 अगस्त, 1888 की रात को मोहनदास करमचंद गांधी अपने भाई-बंद और इष्ट मित्रों के साथ राजकोट से बम्बई के लिए रवाना हुए। वहां से उन्हें इक्कीस अगस्त को विलायत जाना था। परन्तु कठिनाइयों ने बम्बई में भी उनका पीछा न छोड़ा।

जाति के लोगों के विरोध का स्मरण करते हुए मोहनदास ने अन्यत्र कहा था: "बम्बई में मेरे जाति-भाइयों के साथ जो टक्करें हुईं, उनका वर्णन करना दुस्साध्य है, क्योंकि बम्बई उनका मुख्य अड्डा है। बम्बई में मुझे दुर्भाग्यवश शहर के बीच में रहना पड़ा था। वहीं उनकी सबसे घनी बस्ती थी। इसलिए मैं चारों ओर से घिरा हुआ था। एक बार तो, जब मैं टाउन हाल के पास से गुजर रहा था, लोगों ने मुझे घेर लिया और मुझ पर हू-हा की बौछार की।

आखिर यह देखकर कि डांट-फटकार का मुझ पर कोई असर नहीं पड़ता, मुख्य पटेल ने मुझसे इस आशय की बातें कहीं—तुम्हारे पिता हमारे दोस्त थे। इसलिए हमें तुम पर दया आती है। तुम जानते हो कि जाति के मुखियों के नाते हम में कितनी शक्ति है। हम ठीक-

ठीक जानते हैं कि इंग्लैण्ड में तुम्हें मांस खाना पड़ेगा और दारू पानी पड़ेगी। इसके अलावा, तुम्हें समुद्र पार जाना है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यह सब हमारे जाति-नियमों के विरुद्ध है। इसलिए हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि अपने इरादे पर फिर से सोच-विचार कर लो नहीं तो तुम्हें भारी-से-भारी सजा दी जाएगी।"

मोहनदास का संकल्प अडिग रहा। अपने आचार-विचार को शुद्ध रखने का वचन वह अपनी मां को पहले ही दे चुके थे कि न तो मांस-मदिरा का सेवन करेंगे और न परस्त्री-प्रसंग। वह संकल्प कर चुके थे कि व्रतों का पालन करेंगे। जाति के सरपंच के निर्णय के विरुद्ध और नित नई कठिनाइयों का सामना करते हुए, वह समुद्री यात्रा की प्रतीक्षा में बम्बई में कुछ दिनों और रुके। और एकाएक प्रस्थान का दिन आ पहुंचा। 'क्लाइड' नाम का जहाज 4 सितम्बर, 1888 को बम्बई से लंदन जाने वाला था। मोहनदास को जहाज में जगह मिल गई।

यात्रा की डायरी में लिखा हुआ है: "4 सितम्बर, 1888। समुद्र यात्रा। जहाज ने लगभग 5 बजे शाम को लंगर उठाया।"

पांच बजे शाम को, जब जहाज ने लंगर उठाया कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी लग गई थी। वर्षा से धुला हुआ आकाश खुला हुआ था। मोहनदास करमचंद गांधी ने अपनी डायरी में लिखा है: "हमारे चारों ओर का दृश्य बहुत सुन्दर था। पहले-पहल तो मैं अनुमान ही नहीं कर सका कि यह सब क्या है। ऐसा लगता था कि जैसे अनगिनत हीरे बिखरे हुए हों। पर इतना तो मैं जानता ही था कि हीरे तैर नहीं सकते। फिर मैंने सोचा कि किसी तरह के कीड़े होंगे, जो रात को ही दिखाई देते हैं। मैं ऐसे ही विचारों में डूबा हुआ था कि मैंने आसमान की ओर देखा। और फिर मैं समझा कि यह और कुछ नहीं, तारों का प्रतिबिम्ब है। मैं अपनी भूल पर हंस पड़ा। तारों की परछाइयों को देखकर आतिशबाजी की कल्पना होती है। कल्पना

कीजिए कि आप किसी बंगले की छत पर खड़े देख रहे हैं और सामने आतिशबाज़ी हो रही है। मैं अक्सर इस दृश्य का आनन्द लिया करता था।"

अमावस के बाद उजाला पाख शुरू हो जाता है। हर रात चन्द्रमा की कलाएं बढ़ने लगती हैं। चढ़ते चांद की एक रात को इस यात्रा में मोहनदास ने देखा: "चन्द्र का प्रतिबिम्ब पानी पर पड़ रहा था। लहरों के कारण चन्द्रमा ऐसा दिखाई पड़ता था, मानों वह इधर-उधर डोलता हो।"

प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेते हुए, मोहनदास करमचंद गांधी आठ-दस दिनों में स्वेज नहर पर पहुंचे, जहां "अपने जीवन में मैंने पहली बार अपने जहाज के आगे बिजली की रोशनी देखी। वह चांदनी जैसी दिखलाई पड़ती थी। मुझे लगता है कि जो इसे किसी दूसरी जगह से देखता होगा, उसे यह और भी सुन्दर दिखलाई पड़ती होगी। स्वेज नहर की रचना मेरी समझ में नहीं आई। सचमुच वह अद्भुत है। जिस आदमी ने इसका निर्माण किया है, उसकी प्रतिभा की कल्पना मैं नहीं कर सकता। पता नहीं, कैसे उसने यह किया होगा। कहना बिल्कुल ठीक ही है कि उसने प्रकृति से होड़ ली है। दो समुद्रों को जोड़ देना कोई सरल काम नहीं है।"

मोहनदास उस समय शायद ही जानते होंगे कि उनका जन्म और स्वेज नहर का उद्घाटन एक ही वर्ष, अर्थात् सन 1869 में हुआ था। उस समय कौन जानता था कि ब्रिटिश साम्राज्य की धमनी के समान उस नहर और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें हिला देने वाले भावी महात्मा का आविर्भाव एक वर्ष में, कुछ ही सप्ताह आगे-पीछे हुआ था। गांधी जी का जन्म 2 अक्तूबर, 1869 को और स्वेज नहर का उद्घाटन 17 नवम्बर, 1869 को हुआ। नहर का उद्घाटन बड़ी धूमधाम से हुआ था। निर्माता फ्रेंच इंजीनियर को 'स्टार आफ इंडिया' की उपाधि प्रदान की गई थी।

यात्रा के पांचवें दिन अदन आया, जबकि "सब समुद्र के नीरस एकसुरेपन से ऊब गए थे और जमीन देखने के लिए आतुर थे।" भूमध्य सागर के मध्य द्वीप माल्टा के बारे में मोहनदास ने लिखा— "माल्टा के अजायबघर में नैपोलियन बोनापार्ट की गाड़ी बहुत सुन्दर थी। और फिर दुभाषिया हमें संतरा बाग (आरेंज गार्डन) में ले गया। हमने बाग देखा। मुझे वह बिल्कुल पसंद नहीं आया। मुझे राजकोट का हमारा सार्वजनिक पार्क उससे ज्यादा अच्छा लगता है। अगर मुझे कुछ देखने लायक मालूम हुआ तो वह था एक छोटे कुंड में सुनहली और लाल मछलियां।

"जहाज जिब्राल्टर में रात को पहुंचा और रात भर ही वहां रुका। सबेरे हमारे पास सिर्फ डेढ़ घण्टे का समय था। तड़का होने के कारण सब दुकानें बंद थीं। जिब्राल्टर एक पहाड़ी पर बना हुआ है। शिखर पर किला है। मगर हम उसे देख नहीं पाए, इसका बहुत अफसोस रहा।"

मोहनदास करमचंद गांधी की पहली समुद्र यात्रा चौबीस दिनों में पूरी हुई। वह 28 सितम्बर की शाम को लंदन पहुंचे। पहुंचते ही उन्होंने लंदन-स्थित अपने देशवासी डाक्टर प्राण जीवन मेहता को अपने आगमन की सूचना दी। डाक्टर मेहता ने देखा कि मोहनदास बेमौसम की पोशाक पहने हुए हैं। जाड़ों के मौसम की शुरुआत हो चुकी थी और आगन्तुक ने सफेद सूट पहन रखा था। फलालीन का यह नया सूट सम्भवतः विश्व के सबसे बड़े साम्राज्य की राजधानी लंदन के मान में पहना गया था। किन्तु वहां तो जाड़ों में गहरे रंग की पोशाक का चलन था। शायद अंग्रेजों ने भी उन्हें जहाज से उतरते हुए देखकर, उनकी ओर इसीलिए किंचित् आश्चर्य से ताका था। परिवार के मित्र डाक्टर मेहता ने मोहनदास को विलायती तौर-तरीके समझाए।

डाक्टर मेहता के रेशमी टापहैट पर मोहनदास की दृष्टि टिक गई।

उन्होंने मुग्ध भाव से उसे उठा लिया और लगे इस पर उलटा हाथ फेरने। टोप के रोएं खड़े हो गए। डाक्टर मेहता ने नौसिखिया आगन्तुक की ओर खीझभरी दृष्टि डाली और समझाया कि विलायत में आज्ञा लिए विना किसी की चीज-वस्त को हाथ नहीं लगाया जाता। किसी के निजी मामलों में न हस्तक्षेप किया जाता है, न पूछताछ। डाक्टर मेहता ने आगन्तुक मोहनदास को यह भी समझाया कि विलायत में 'सर' कहकर संभाषण करने की रीति नहीं है। मोहनदास ने डाक्टर मेहता की सीख के लिए हृदय से आभार माना। डाक्टर मेहता का आत्मीय स्नेह पाकर वह अनुगृहीत भी हुए और आश्वस्त भी। मोहनदास खुले कि अपने नौसिखियेपन और साबुन से नहाने के उत्साह के कारण, उन्हें दाद जैसा कुछ हो गया है। डाक्टर मेहता ने जांच की और ऐसेटिक एसिड लगा दी। मोहनदास दवा की जलन से तिलमिला गए, लेकिन त्वचा नीरोग हो गई। मोहनदास प्रसन्न हुए।

आगन्तुक की प्रसन्नता लंदन में अपने आरम्भिक निवास के अजनबीपन और अकेलेपन के कारण टिक न सकी। होटल में भारी बिल भरकर भी, अरुचिकर भोजन के कारण भूखा रहना पड़ा। एक कमरा लेकर होटल से पिंड छुड़ाया। लेकिन वहां भी न दिन को चैन और न रात की नींद। 'आत्मकथा' में मोहनदास गांधी ने इस प्रसंग में लिखा है : "मुझे घर की और देश की याद सताती। अपनी मां के प्यार के विना मुझे सब सूना-सूना लगता और मुझे निरन्तर उसकी हुड़क आती। परदेश के लोग, उनका रहन-सहन और रिहायश के मकान, मेरे लिए सब कुछ अजनबी था। वहां के शिष्टाचार और चलन के बारे में मैं नौसिखिया था और हर कदम फूंक-फूंक कर रखना पड़ता था। मासांहार न करने के व्रत से खानपान में असुविधा तो होती ही थी, लेकिन शाकाहार में जो कुछ मिलता, वह वेस्वाद और अरुचिकर लगता था। सरौते में सुपारी की-सी हालत हो गई थी।

इंग्लैण्ड में रहना दूभर लगता था, लेकिन वापस चले जाने का सवाल भी उठता न था। मेरे अन्तःकरण की आवाज यही कहती थी कि आए हो, तो जैसे-तैसे तीन बरस तक निवाह करो।"

डाक्टर मेहता ने मोहनदास को किसी अंग्रेज परिवार के साथ रहने की व्यवस्था कर दी। यों विलायती रहन-सहन की रीति सीखने का क्रम आरम्भ हुआ। दीपावली, जो उस वर्ष तीन नवम्बर को पड़ी थी, के चौथे दिन मोहनदास करमचंद गांधी ने बैरिस्टरी के शिक्षा लेने के लिए 'इनर टैंपिल' में 6 नवम्बर, सन 1888 के दिन अपना नाम लिखा दिया।

बड़े भाई लक्ष्मीदास गांधी को 9 नवम्बर, सन 1888 के अपने पत्र में मोहनदास ने लिखा: "मंगलवार को मैं 'इनर टैंपिल' में भर्ती हो गया। ...ठण्ड बहुत पड़ रही है। ..... इस कठिन शीत में भी ईश्वर की कृपा से मांस-मदिरा की जरूरत मालूम नहीं होती। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूं। मेरी तबियत बहुत अच्छी है। मातुश्री की सेवा में शिर-साष्टांग दण्डवत् पहुंचाइएगा।"

माता पुतलीबाई

दीपावली के त्यौहार पर माता पुतलीबाई को लंदन-प्रवासी अपने पुत्र की अनुपस्थिति कितनी खली होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। पुत्र के पत्र नियमित रूप से आते थे। माता पुतलीबाई पुत्र की कुशल-क्षेम और वचन-पालन के समाचार सुनकर सन्तोष की सांस लेती थीं। पुत्र के भावी अभ्युदय की आशा में वह गिन-गिनकर दिन बिताती थीं कि कब उनका होनहार लाड़ला बेटा बैरिस्टर बनकर आएगा और कब गांधी परिवार के दिन बहुरेंगे। फिर भी मां का मन दुखी भी होता था कि संकोची स्वभाव का उनका पुत्र रुचि के भोजन के बिना न जाने कैसे रहता होगा। अपने एक पत्र में मोहनदास ने घर से मिठाई भेजने को भी लिखा था, क्योंकि विलायती खाना रुचता न था।

उन दिनों विलायत में खान-पान के सम्बंध में अपनी कठिनाइयों के बारे में मोहनदास करमचंद गांधी ने बरसों बाद 'आत्मकथा' में लिखा कि "खान-पान की समस्या बहुत कठिन बन गई थी। नमक और मसाले के बिना उबाली हुई शाक-सब्जी बिल्कुल बेस्वाद होती थी। घर-मालकिन की समझ में न आता था कि मेरे लिए क्या पकाए। कलेउ के लिए जई का दलिया बनाया जाता था। उससे पेट भर लेता था। लेकिन दोपहर और रात के खाने में ऐसा कुछ न मिलता था कि भूख बुझे। सहवासी मित्र मुझे मांसाहार के पक्ष में दलीलें देकर निरन्तर समझाते रहते। मैं कहता कि मां को दिए हुए वचन को मैं पूरा करूंगा। मित्र फिर भी तर्क करते। उत्तर में मैं चुप साध लेता।

"दोपहर और रात के खाने में उबाला हुआ हरा शाक, डबल

रोटी के टुकड़े और जैम रखा जाता । इतने से पेट न भरता, क्योंकि खुराक मेरी अच्छी थी । शिष्टाचार और संकोच के कारण रोटी के दो-तीन टुकड़ों से अधिक मैं न ले पाता । दोनों जून के भोजन में दूध का अभाव रहता ।

"यह दशा देखकर सहवासी मित्र एक दिन तंग आकर उबल पड़े । वह बोले--तुम मेरे सगे भाई होते तो मैं अभी हाल तुम्हारा विस्तर गोल कर देता । तुम्हारी मां निरक्षर हैं। यहां के रहन-

"यह दशा देखकर सहवासी मित्र एक दिन तंग आकर उबल पड़े । वह बोले--तुम मेरे सगे भाई होते तो अभी हाल तुम्हारा बिस्तर गोल कर देता।...."

सहन का उन्हें रत्ती-भर ज्ञान नहीं है । उन्हें दिए हुए वचन का क्या अर्थ है भला ? वह वचन निरर्थक है । कानून की नजरों में ऐसे वचन के कोई मानी नहीं होते ।"

माता को दिए हुए वचन के प्रति मोहनदास के आग्रह को देख कर मित्र ने बहस बंद कर दी । इंग्लैण्ड में प्रचलित साधारण शिष्टाचार और खान-पान की रीति की उससे शिक्षा लेकर,

मोहनदास ने लंदन शहर के निकट एक दूसरा ठिकाना ठीक किया और वह रिचमण्ड से वेस्ट केंसिंग्टन में एक ऐंग्लो-इंडियन परिवार के साथ रहने लगे। वहां भी भोजन पूरा न पड़ता। खाना वैसा ही बेस्वाद होता। भूख न बुझती।

अखबार पढ़ने के सिवा, घर में और कोई काम भी न था। मोहनदास नित्य तीन दैनिक समाचारपत्र उलट-पलट कर देख लेते। इस कार्य में अधिक-से-अधिक एक घंटा लगता। बाकी का समय किसी ऐसे भोजनालय की खोज में व्यतीत होता जहां भरपेट शाकाहार मिल सके। मोहनदास रोज दस-बारह मील का चक्कर काटते और किसी सस्ते रेस्तरां में पूरी डबल रोटी खाकर, अपनी भूख बुझा लेते। एक दिन उन्हें फेरिंग्टन स्ट्रीट में एक शाकाहारी भोजनालय दिखाई पड़ा : "उसे देखकर मेरे मन में वैसी ही खुशी हुई, जैसे किसी बच्चे को उसकी मनचाही वस्तु मिल जाने पर होती है।"

शाकाहारी भोजनालय में मोहनदास को लंदन आने के बाद से पहली बार भरपेट भोजन मिला। वहीं शाकाहार के महत्व पर साल्ट की पुस्तक 'शाकाहार के पक्ष में एक अनुरोध' भी मिली। मोहनदास ने पुस्तक ध्यान से पढ़ी और उनके मन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। "इस पुस्तक को पढ़ने के दिन से मैं स्वेच्छा से शाकाहारी बना, ऐसा मैं साधिकार कह सकता हूं। जिस दिन मैं मां के सामने वचनबद्ध हुआ था, उसे भी मैं धन्य समझने लगा। पुस्तक को पढ़ने से पहले तक सत्य की रक्षा और वचन का पालन करने के लिए ही मांसाहार से बचता था। लेकिन मन ही मन मैं सोचता था कि हमें मांसाहार करना चाहिए। लेकिन अब तो मैंने स्वेच्छा से शाकाहार को सिद्धान्त रूप में अपना लिया था। मन में इसके प्रचार की लगन लग गई थी।"

कोरे विचारक और क्रांतिकारी में यही तो अन्तर होता है

कि पहला तो विचार का प्रतिपादन करके रह जाता है और दूसरा विचार को अपने आचरण में उतार कर, अपने जीवन को बदल डालता है। शाकाहार के पक्ष में साल्ट की पुस्तक ने मोहनदास के जीवन पर वैसा ही गहरा प्रभाव डाला, जैसा कि बाल्यकाल में सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध में सत्यवादी हरिश्चन्द्र नाटक और पितृभक्ति के बारे में श्रवणकुमार काव्य ने डाला था।

मांसाहार का मोह छूटा। पर अंग्रेजी रहन-सहन को अपना कर, साहब बनने की आकांक्षा बलवती हुई। मोहनदास ने कीमती सूट-बूट और टोप, यानी इंग्लैण्ड के भद्र वर्ग की पोशाक को अपनाया। फ्रेंच भाषा, नृत्य और संगीत की शिक्षा लेना शुरू किया। भाषण देने की कला या वक्ता की प्रतिभा बढ़ाने की दिशा में ध्यान दिया। लय-ज्ञान के लिए वायलिन का अभ्यास आरम्भ किया। वक्तृता पर एक महंगी पुस्तक भी खरीदी। लेकिन पैसे को पानी की तरह बहते देखकर, मन में विवेक जागा कि बड़े भाई ने ज्यों-त्यों करके जिस पैसे का प्रबन्ध किया है, क्या उसे इस तरह उड़ाना उचित है? मन में संकल्प का उदय हुआ कि वेश-भूषा और बाहरी चलन से भद्र व्यक्ति नहीं बनना है। चरित्र और आचरण की भद्रता ही सच्ची भद्रता है।

साहब बनने की आकांक्षा को तिलांजलि देकर, विद्याध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। किन्तु बैरिस्टर बनने के लिए तो नाममात्र की पढ़ाई थी। अधिक परिश्रम की आवश्यकता न थी। मोहनदास ने समय का सदुपयोग करने के लिए लंदन की मैट्रिक परीक्षा में बैठने की बात सोची।

परीक्षा के पाठ्यक्रम को देखा, तो मोहनदास को ज्ञात हुआ कि प्राचीन भाषा लैटिन और एक आधुनिक यूरोपीय भाषा का अध्ययन अनिवार्य था। फ्रेंच भाषा से तो परिचय हो चुका था। यूरोप की यह आधुनिक भाषा संस्कृति और विचारों के क्षेत्र में

विशिष्ट मानी जाती है। मोहनदास इसका अध्ययन कर रहे थे। किन्तु सर्वथा अपरिचित प्राचीन भाषा लैटिन की जानकारी कैसे संभव होगी ? मोहनदास इस विषय में शंकित थे। पर मित्र ने समझाया : "लैटिन की पढ़ाई बैरिस्टरी में भी काम आएगी। बैरिस्टरी की कानून की किताबों के समझने के लिए लैटिन भाषा उपयोगी सिद्ध होगी और रोमन कानून का पूरा-का-पूरा एक प्रश्नपत्र तो लैटिन भाषा में ही होता है। इसके अलावा लैटिन भाषा का ज्ञान अंग्रेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होगा।"

मोहनदास को अंग्रेजी भाषा का अपना ज्ञान बहुत कच्चा मालूम होता था। इसलिए भी मोहनदास को लैटिन भाषा का अभ्यास अनिवार्य जान पड़ा। लैटिन भाषा के अध्ययन की समस्या कठिन थी। किन्तु मोहनदास ने चुनौती को स्वीकार किया। असुविधा और कठिनाई का मुकाबला किए बिना, बड़ा कौन बना है ?

लंदन मैट्रिकुलेशन की परीक्षा वर्ष में दो बार होती थी। आगामी परीक्षा की तारीखें पांच महीने बाद थीं। फिर भी मोहनदास परीक्षा की तैयारी में जुट गए। वह लैटिन भाषा में उत्तीर्ण न हो सके। किन्तु परीक्षा पास करने का उनका संकल्प शिथिल न पड़ा। आगामी छमाही की परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुए। विशेषता यह भी थी कि पहली बार रसायन विज्ञान विषय का अध्ययन किया था, तो अब की बार भौतिक विज्ञान के ऊष्मा और प्रकाश विषय को अपनाया। विज्ञान के अनिवार्य विषयों में मोहनदास दोनों बार उत्तीर्ण हुए।

लंदन मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के साथ-साथ, स्वावलम्बी सादा जीवन के प्रयोग में भी मोहनदास सफल हुए। उन्होंने पैसे और समय के सदुपयोग के लिए एक अकेला कमरा

लिया, स्वयंपाकी बने और अपने खर्च को भी आधा कर दिया। 'आत्मकथा' में उन्होंने लिखा है : "कोई यह न समझे कि सादगी से मेरा जीवन नीरस बन गया। सच तो यह है कि इससे मेरे भीतर और बाहर के जीवन में समरसता आ गई। यह सन्तोष भी था कि मैं अपने परिवार पर अधिक भार नहीं डाल रहा हूं। मेरे जीवन में अधिक सचाई आ गई। मेरी आत्मा में आनन्द लहराने लगा।"

मितव्यय के क्रम में मोहनदास ने खुराक के बारे में अपने प्रयोगों का श्रीगणेश भी इसी समय किया। इस प्रसंग में उन्हें एक बार फिर स्वयं को नैतिक कसौटी पर कसना पड़ा। शाकाहारियों का एक दल अण्डे को निर्जीव पदार्थ मानकर, उसे भोजन में लेता था। मोहनदास पर इस का प्रभाव कुछ दिनों तक रहा। किन्तु एक दिन मोहनदास गांधी के अन्तःकरण में शंका उठी कि मां को दिए हुए वचन में यद्यपि मांसाहार का ही निषेध था, अण्डे का नहीं; किन्तु क्या मां के तात्पर्य में अण्डा भी मांसाहार के अन्तर्गत नहीं आ जाता ? देश में तो मांस, मछली और अण्डा को समान रूप से मांसाहार में ही शामिल किया जाता है। मोहनदास ने तुरन्त अण्डा खाना छोड़ दिया। मां को दिए हुए वचन का आशय अण्डा खाने की छूट नहीं देता, मोहनदास ने इस सत्य को स्वीकार किया। वचन का पालन करने वाले को छूट लेने के लिए बाल की खाल नहीं निकालनी चाहिए, वरन् वचन का पालन उसी अर्थ में करना चाहिए, जिस अर्थ में प्रतिज्ञा कराने वाला प्रतिज्ञा करने वाले से वचन ले।

आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण की अपनी प्रवृत्ति से स्वयं को कसकर, प्रवासी मोहनदास निरन्तर अधिकाधिक शुद्ध चित्त बनते जाते थे। शाकाहार के समर्थकों की संस्था में शामिल होने से मोहनदास करमचंद गांधी के नए सामाजिक जीवन

का एक नया द्वार खुल गया था। समान विचार के लोगों में उठना-बैठना शुरू हो गया था। विचार के प्रचार के लिए संस्था बनाने की भी सूझी। इसी सिलसिले में अंग्रेजी में बुद्धचरित (लाइट आफ एशिया) और भगवद्गीता (सांग सेलेश्चियल) के काव्य-रचयिता सर एड्विन आर्नल्ड से परिचय हुआ। मोहनदास शाकाहारियों की संस्था की कार्यकारिणी समिति के सदस्य चुन लिए गए। इसी समय एक ऐसी समस्या उपस्थित हुई, जिसने मोहनदास के सामने संस्थागत मर्यादा और न्याय का प्रश्न उपस्थित कर दिया।

संस्था के अध्यक्ष एक धनी उद्योगपति थे। वह संयमी शुद्ध जीवन के कट्टर समर्थक थे। संस्था उनकी आर्थिक सहायता से चलती थी। संस्था के सदस्य डा० एलिसन को वह संस्था से निकाल देना चाहते थे, क्योंकि डा० एलिसन सन्तति-निरोध के लिए गरीब श्रमिकों के बीच कृत्रिम उपायों का प्रचार करते थे। मोहनदास सन्तति-निरोध के लिए कृत्रिम उपायों का विरोध करते हुए भी, शाकाहारी संस्था से एक शाकाहारी के निष्कासन को न्याय और संस्था की मर्यादा के विरुद्ध मानते थे। यह पक्ष पराजित हुआ। मोहनदास करमचन्द गांधी ने सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

एक अवसर पर एक वृद्ध अंग्रेज महिला ने इस शर्मीले युवक को कुंवारा समझकर, अपने जान-पहचान की किसी युवती से परिचित कराया। परदेसी युवक और अंग्रेजी युवती में मेल-जोल बढ़ाने के उपाय होने लगे। मोहनदास के मन में विवेक जागा। उन्हें पश्चाताप हुआ कि मैंने स्पष्ट क्यों नहीं किया कि मैं विवाहित गृहस्थ हूं, कि मैं विवाहित ही नहीं, एक बच्चे का बाप भी हूं।

मोहनदास ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए, वृद्ध महिला को पत्र लिखा : "प्रथम परिचय के दिन से ही आप मुझ पर माता

की भांति कृपा करती रही हैं और आप स्नेहवश मुझे एक विवाहि
सुखी गृहस्थ के रूप में भी देखना चाहती हैं । मुझे अपनी स्थि
स्पष्ट कर देनी चाहिए। मैं आपके स्नेह और कृपाभाव के यो
नहीं हूं।"

स्थिति स्पष्ट हो गई । सत्य के प्रयोग से किसी का मन मैर
न हुआ। मोहनदास को वृद्धा की ओर से पूर्ववत् स्नेह मिलता रहा
पहले की भांति हर रविवार को मोहनदास का उस घर में स्वाग
होता रहा। अपनी भूल को स्वीकार करके उसे तुरन्त सुधार लेने व
टेव मोहनदास के स्वभाव का अभिन्न अंग थी । बाल्यकाल
पिता जी को भी भूल-स्वीकार और क्षमा-याचना करने के लि
मोहनदास ने पत्र लिखा था और उसका परिणाम भी इसी प्रका
सुखद हुआ था।

विलायत से वापसी

लंदन की मैट्रिक परीक्षा पास कर लेने से मोहनदास करमचंद गांधी की ज्ञान-वृद्धि तो बढ़ी ही, अंग्रेजी भाषा पर भी अच्छा अधिकार हो गया था। लैटिन भापा के अध्ययन से 'रोमन ला' के अध्ययन में दिक्कत न हुई। मोहनदास ने वैरिस्टरी की परीक्षा पाठ्यक्रम का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन और अभ्यास किया। जबकि अधिकतर विद्यार्थी डिनर खाकर और कुंजियां पढ़कर, वैरिस्टरी की परीक्षा के लिए तैयारी करते थे, मोहनदास ने निष्ठा के साथ पूरी पढ़ाई की थी।

वैरिस्टरी की पढ़ाई के अतिरिक्त, मोहनदास ने गीता, वुद्धचरित और वाइविल का अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से अध्ययन किया। कालाइल-लिखित वीर पैगम्बर (हजरत मोहम्मद) निवंध को ध्यान से पढ़ा। थियोसोफी-रहस्य नामक पुस्तक पढ़कर, अपने धर्म के प्रति उत्साह का अनुभव किया। मोहनदास इस वीच तथाकथित नास्तिक या अनीश्वरवादी भारतमित्र ब्रेडले को सुना और उनके साहित्य को भी पढ़ा और धारणा वनाई कि ब्रेडले की दृष्टि में न्याय और सत्य ही ईश्वर है। मोहनदास भारतमित्र ब्रेडले की अन्त्येष्टि में भी श्रद्धासहित सम्मिलित हुए।

समाचारपत्र पढ़ने से देश-विदेश की राजनीति की भी जानकारी हासिल की और लंदन प्रवास के दिनों में ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के आदिनेता दादाभाई नौरोजी के भी दर्शन किए। उन्हीं दिनों यानी सन 1890 में दादाभाई ने लंदन से 'इंडिया' नाम की अपनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। मोहनदास

करमचंद गांधी लंदन की संस्था इंडियन एसोसिएशन की सभाओं में भी जाते थे। दादाभाई से उनकी भेंट वहीं हुई थी।

मोहनदास करमचंद गांधी ने इस समय देशाटन भी किया। वह पेरिस गए, जहां उन्होंने विश्वविख्यात ऐफिलटावर को देखा। ऐफिल टावर उन्हें पसन्द न आया, लेकिन फ्रांस के मध्ययुगीन विशाल कैथीड्रल को देखकर उन्हें बहुत अच्छा लगा। उनका सौन्दर्य-बोध परिपक्व हो रहा था। साहित्य और कला के प्रश्नों पर वह टाल्स्टाय और रस्किन के नीतिवर्द्धक उपकारी विचारों के पक्षपाती थे।

विदेश में रहते हुए स्वदेश की याद करते, अपने नैतिक और बौद्धिक स्तर को ऊंचा उठाते और माता को दिए हुए वचन को निभाते हुए मोहनदास को लंदन में तीसरा वर्ष लगा। और तभी पोर्टस्माउथ में, जो इंग्लैण्ड के दक्षिण तट पर एक बंदरगाह है, शाकाहारी सम्मेलन हुआ। एक अन्य भारतीय प्रतिनिधि के साथ मोहनदास भी इसमें निमंत्रित थे। दोनों को एक ऐसे मकान में ठहराया गया, जिसका वातावरण चुहलबाज़ी का था। बंदरगाहों में ऐसे अनेक घर होते हैं, जहां जहाजी लोग रंगीन रैनबसेरा करते हैं।

मकान मालकिन अतिथियों के साथ ताश खेलती थी, हंसी-मजाक करती थी। ऐसे वातावरण में मर्यादा का उल्लंघन होने लगे, तो भले आदमी की खैरियत नहीं रहती। एकाएक मोहनदास ने स्वयं को बेकाबू होते पाया। भारतीय साथी ने संकेत किया—"भाग जाओ। तुम्हारा यहां क्या काम? तुम जैसे साधु पुरुष पर कलयुग कैसे उतर आया।"

मोहनदास को चेत हुआ। वह संभल गए। भावी महात्मा को भगवान ने तलवार की धार पर चलने के लिए बचा लिया। नैतिकता और व्रतपालन की कठिन परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुए।

इस प्रसंग में 'आत्मकथा' के अध्याय का शीर्षक उन्होंने 'निर्बल के बल राम' दिया है ।

वैरिस्टरी की पढ़ाई का मुख्य अंग सभ्य समाज में उठने-बैठने, शिष्टाचारपूर्वक वार्तालाप करने और सामाजिक जीवन का सामान्य ज्ञान संचित करने तक सीमित था । व्यावहारिक अनुभव के लिए संस्था की ओर से हर महीने में आठ बार प्रीतिभोज किया जाता था, जिनमें कम-से-कम महीने में दो बार परीक्षार्थी का उपस्थित रहना अनिवार्य था । यह क्रम तीन वर्ष तक चलता था ।

प्रीतिभोज में मोहनदास करमचंद गांधी की अत्यधिक पूछ और आवभगत होती थी । कारण यह था कि मदिरापान न करनेवाले सहपाठी के हिस्से की शराब एक मेज़ पर बैठनेवाले अन्य तीन भावी वैरिस्टरों के हिस्से में आ जाती थी ।

वैरिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी

परीक्षार्थी भावी बैरिस्टर सामान्यत: प्रीतिभोज को पाठ्य-क्रम से अधिक महत्व देते थे । बेशकीमती और भारी-भरकम पाठ्यपुस्तकों के बिना भी वह अपना काम चला लेते थे । लेकिन इस विषय में मोहनदास ने न तो खर्च में कमी की थी, न परिश्रम में । परीक्षा के लिए भली-भांति तैयारी करके मोहनदास ने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की और 10 जून, सन 1891 के दिन उत्तीर्ण घोषित हुए । अगले ही दिन यानी ग्यारह जून को उन्होंने हाईकोर्ट में अपना नाम वैरिस्टर की हैसीयत से दर्ज करा लिया । और

12 जून, सन 1891 के दिन बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी ने स्वदेश की ओर प्रयाण किया।

लंदन से प्रस्थान करने के पूर्व इंग्लैण्ड के शाकाहारी संघ के मुखपत्र 'वेजिटेरियन' (शाकाहारी) में उनकी एक भेंट-वार्ता प्रकाशित हुई थी। पत्र-प्रतिनिधि के एक प्रश्न के उत्तर में मोहनदास करमचंद गांधी ने कहा था: "भारत के अतिरिक्त यदि मुझे अन्यत्र कहीं बसना हो, तो मैं लंदन में रहना पसन्द करूंगा।"

भेंट-वार्ता में पत्र-प्रतिनिधि के इस प्रश्न के उत्तर में कि वह किस उद्देश्य से विलायत बैरिस्टर बनने आए थे, मोहनदास गांधी ने स्पष्ट शब्दों में बतलाया था: "महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए।"

भाषण देने में अपनी हिचक से भी मोहनदास परेशान थे। हिचक जाती ही न थी। किन्तु लेखन में उनकी प्रगति सराहनीय थी। 'वेजीटेरियन' साप्ताहिक पत्र में उनकी एक लम्बी लेखमाला प्रकाशित हुई थी, जिसमें भारतीय त्यौहारों और शाकाहारी व्यंजनों का सविस्तार परिचय दिया गया था। उसके शब्द-शब्द में मोहनदास की भावभरी स्वदेश स्मृति झलकती थी। पुतलीबाई का मोनिया अपनी मां के हाथ की सरस रसोई को भूला न था। शाकाहारी भारतीय रसोई बनाने के तरीके भी लेखमाला में बताए गए थे। साफ जाहिर होता था कि विषय मोहनदास की रुचि का था। खाने-खिलाने का शौक मोहनदास को बचपन से ही था। बड़े संयुक्त कुटुम्ब में पलने के कारण मोहनदास खाने-खिलाने में इकलखुट्टे बन ही नहीं सकते थे। उनका स्वाभाविक उदार हृदय और खानदानीपन भी इस वृत्ति को प्रोत्साहित करता था। स्वाभिमान भी ऐसा था कि जो उन्हें एक बार दावत पर बुलाए, उसे वह दो बार खाना खिलाते थे।

मितव्ययी होते हुए भी मोहनदास अपने लंदन प्रवास में दरिद्र या भदेस व्यक्ति की तरह नहीं रहे थे। स्वाभिमानी और शिष्टाचारी व्यक्ति के नाते, वह भद्र लोगों के बीच उठने-बैठने लायक भद्र पोशाक

का व्यवहार करते थे। न वह ईस्ट एण्ड की गरीब बस्ती में रहने वाले गरीब भारतीय विद्यार्थियों की तरह रहते थे, और न फक्कड़ साहित्यिक नारायण हेमचन्द्र का उन्होंने अनुकरण किया कि लंदन में धोती-कुरता पहनें और सड़क पर लड़कों से 'हो-हो' कराएं या अपनी ओर लोगों से अंगुली उठवाएं। मन में ठाठ-बाट का मोह तो नहीं, लेकिन उन दिनों मोहनदास के मिजाज में थोड़ी-बहुत साहबी अवश्य थी।

विलायत से प्रस्थान के पूर्व मोहनदास ने अपने शाकाहारी समाज को दावत दी थी। धन्यवाद का भाषण देने में वह उस बार भी सफल नहीं हुए। किन्तु और सब प्रकार से प्रीति-भोज सफल रहा। शाकाहारी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति दावत में आए थे। डाक्टर ओल्डफील्ड और सर एड्विन आरनोल्ड उनमें प्रमुख थे।

मोहनदास ने शाकाहार के प्रचार का बीड़ा उठा लिया था। प्रचार-कार्य जहाज में ही शुरु हो गया था। सहयात्रियों से मेल-जोल बढ़ाने में इस बार हिचक नहीं होती थी। जहाज के कप्तान और कर्मचारियों से भी मोहनदास खुलकर वार्तालाप करते थे। खेल में भी भाग लेते थे। प्रवासी के मन में स्वदेश लौटने का उत्साह था। उत्साह था कि मां से उसका लाड़ला बेटा मिलेगा और मिलकर कहेगा —"मां, मैंने वचन का पालन किया है।"

इस विषय में अपनी प्यारी मां से शाबासी लेने की कामना मोहनदास के मन में सर्वाधिक बलवती थी। मोहनदास की दृष्टि में बैरिस्टरी की परीक्षा पास करने का महत्व, माता के दिलाए हुए व्रतपालन के गौरव की अपेक्षा बहुत कम था। मैं अपनी मां को मुंह दिखाने लायक बना रहा, मोहनदास को इसकी बेहद खुशी थी।

अदन तक की यात्रा 'ओशियाना' नाम के बड़े जहाज में सानन्द और सुख-सुविधा के साथ हुई। 'ओशियाना' अदन से सीधा आस्ट्रेलिया जा रहा था। इसलिए बम्बई के यात्रियों को 'आसाम' नामक

जहाज लेना पड़ा, जिसका कारबार घटिया था। विलायती और देसी वातारण में यह अन्तर देखकर मोहनदास को अच्छा न लगा।

बम्बई पहुंचने पर उन्हें मालूम हुआ कि माता पुतलीबाई की मृत्यु हो गई। गांधी ने 'आत्मकथा' में लिखा है: "मैं मां के दर्शन के लिए अधीर हो रहा था। माता के स्वर्गवास के विषय में कुछ भी न जानता था। मैं नहीं जानता था कि मेरे घर लौटने पर जो मुझे छाती से लगाती, वह मेरी मां अब संसार में नहीं है। मुझे अब खबर दी गई। स्नान कराया गया। मेरे प्रवास काल में ही मां मृत्यु हो गई है, इस बात से मुझे अनजान रखा गया था। मेरे बड़े भाई चाहते थे कि यह आघात मुझे परदेस में न सहना पड़े। पर आघात तो अब भी कम नहीं लगा। मुझे सदमा पहुंचा। लेकिन इस विषय में अब क्या कहूं? पिता जी की मृत्यु पर मुझे जो आघात लगा था, उससे कहीं गहरा धक्का मुझे अपनी मां की मृत्यु की खबर पाकर लगा। मेरी आशाओं पर पानी फिर गया।"

मोहनदास गांधी के मन में माता पुतलीबाई की मृत्यु का शोक इतना गहरा था कि आंसुओं के लिए उसे थाह लेना सम्भव न था। देशान्तर और कालान्तर भी मां की स्मृति को धुंधली न कर सके। 'आत्मकथा' में गांधी ने मातृ-मूर्ति को अपने स्मृतिपटल पर सजीव किया है: "माता साध्वी स्त्री थीं। वह बहुत श्रद्धालु थीं। पूजा-पाठ किए बिना कभी भोजन न करती थीं। मन्दिर में नित्य नियम से जाती थीं। वह कठिन-से-कठिन व्रतों को निर्विघ्न पूरा कर लेती थीं। लगातार दो-तीन दिन उपवास करना उनके लिए सामान्य बात थी। एक चतुर्मास में मां ने सूर्यनारायण के दर्शन करके ही भोजन करने का का व्रत लिया था। हम बालकों की दृष्टि बादलों पर लगी रहती थी कि कब बादल हटें, सूरज दिखाई दे और मां भोजन करें। ऐसे दिन भी मुझे याद हैं, जब हम सूरज देखकर चिल्लाते, 'मां, सूरज निकला, सूरज निकला मां!' मां बाहर आतीं और सूरज भाग कर

ऐसे दिन भी मुझे याद हैं, जब हम सूरज देखकर चिल्लाते, "मां, सूरज निकला, सूरज निकला, मां!" मां बाहर आतीं और सूरज भागकर बादलों की ओट में छिप जाता।

बादलों की ओट में छिप जाता। 'कोई बात नहीं, आज भाग्य में भोजन बदा नहीं था', यों कहकर मां लौट जातीं और अपने काम-काज में लग जातीं।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में, सान्ध्यकालीन अपने प्रार्थना-प्रवचनों में महात्मा गांधी ने अपनी माता का अनेक बार स्मरण किया और उन्हें व्रत-उपवास की साधना में अपनी गुरु माना था। बापू ने अनेक बार कहा कि इस विषय में मां मुझसे बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं।

चौसठ वर्ष के महात्मा तत्कालीन पश्चिमोत्तर भारत का दौरा करते हुए एक बार प्राचीन तक्षशिला का म्यूजियम देखने गए । वहां उन्होंने स्त्रियों के प्राचीन भारतीय आभूषणों में पांवों में पहने जाने वाले चांदी के कड़े देखे । देखते ही महात्मा जी के मुंह से निकला—"मेरी मां भी ऐसे ही कड़े पहनती थी ।"

मोहनदास का अध्यात्म के प्रति झुकाव हुआ । धर्म में रुचि बचपन से थी । विलायत में रहते हुए, भारतीय धर्म-सिद्धान्तों का स्वाध्याय भी सम्भव हो सका था । अपने धर्म के प्रति आस्था भी गहरी हो गई थी, जिसे अन्य धर्मों की जानकारी ने दिनों-दिन पुष्ट किया था । किन्तु अध्यात्म के प्रति रुझान का कारण सम्भवतः गहरा मातृ-शोक था ।

इस मनस्थिति में मोहनदास करमचंद गांधी की भेंट एक मनीषी मुमुक्षु से हुई । मोहनदास ने उनकी गिनती उन तीन व्यक्तियों में की है, जिन्होंने उनके अन्तःकरण को प्रभावित किया । इन तीन महानुभावों के सम्बन्ध में 'आत्मकथा' में कहा गया है : "मेरे जीवन पर गहरी छाप डालने वाले आधुनिक पुरुष तीन हैं । रायचंद भाई ने अपने जीवंत सम्पर्क से, टाल्स्टाय ने 'स्वर्ग तेरे हृदय में है' अपनी पुस्तक से और रस्किन ने 'अंटु दिस लास्ट' (सर्वोदय) नामक पुस्तक से मुझे मंत्रमुग्ध किया ।"

रायचंद भाई जौहरी की हैसियत से लाखों का धंधा करते थे । किन्तु उनके जीवन का मुख्य विषय अध्यात्म था । वह विदेह की स्थिति में रहते हुए, संसार और सार को निबाहते थे । वह शतावधानी थे, कवि थे और उनके मन में आत्मसाक्षात्कार की उत्कट लगन थी । किन्तु अपने स्वास्थ्य के प्रति वह अत्यधिक उदासीन थे । मोहनदास सम्भवतः मन-ही-मन भगवान के सेवक का स्वस्थ और परिश्रमी होना अनिवार्य मानते थे ।

इसी काल में उन्हें एक ब्राह्मण रसोइया मिला, जो निरक्षर और फूहड़ था। मोहनदास ने उसे शुचिता का महत्व समझाया और चाहा कि वह भी संध्या-वंदन की ओर ध्यान दे। लेकिन सन्ध्या करना वह जानता ही न था। मोहनदास को आश्चर्य हुआ। ब्राह्मण रसोइया बोला—"संध्या? हल चलाना ही हमारी संध्या और खेत जोतना ही हमारा भजन है। ऐसा ब्राह्मण हूं मैं। चाहो रखो, चाहे निकाल दो। कुछ न होगा तो खेती ही करूंगा।" कहना न होगा कि रसोइये रविशंकर ने अपने मालिक से सन्ध्या करना सीखा, खाना पकाना सीखा और वह मोहनदास के पास परिवार के सदस्य की तरह रहा।

बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी ने बम्बई में अपना धंधा शुरू किया, लेकिन अदालत में जबान खुलती ही न थी। असफल बैरिस्टर ने किसी स्कूल में शिक्षक पद के लिए आवेदनपत्र दिया। इस कार्य में भी असफलता ही मिली। बड़े भाई की सलाह से राजकोट में ही कानूनी सलाहकार के रूप में अर्जी-दस्तावेज तैयार करने का काम शुरू किया। इस काम से आमदनी तो ठीक-ठीक हो जाती थी, लेकिन अपने सिद्धान्त के प्रतिकूल और लाचार होकर, फीस में से थोड़ा-बहुत कमीशन वकील को देना पड़ता था। बड़े भाई की वकील से साझेदारी थी, इसलिए मोहनदास का मन समझाने के लिए बड़े भाई ने कह दिया कि वकील के कमीशन का एक भाग तो फिर भी गांधी परिवार के पास आ जाता है। तो. कमीशन देने में घाटा नहीं है। फिर भी मोहनदास की नैतिकता और स्वाभिमान को आघात पहुंचता ही था।

स्वाभिमान को भीषण आघात पहुंचाने वाली एक और घटना घटी। बड़े भाई के अनुरोध पर, मोहनदास राजकोट के एक अंग्रेज उच्चाधिकारी से मिलने गए। अंग्रेज अधिकारी से विलायत में जान-पहचान हुई थी। लेकिन, अब वह स्वतंत्र इंग्लैण्ड में नहीं,

परतंत्र भारत में शासक जाति के एक अधिकारी से मिलना चाहते थे। करेला और नीम चढ़ा। अंग्रेज अधिकारी मोहनदास के बड़े भाई से पहले से ही नाराज था। और ऐसी हालत में वह यही समझा कि बैरिस्टर एम० के० गांधी इंग्लैण्ड में उससे अपनी जान-पहचान का अनुचित लाभ उठाना चाहते थे। मोहनदास अंग्रेज अफसर को सचाई की कैफियत देते ही रहे कि शासक जाति के अधिकारी ने भारतीय बैरिस्टर गांधी को घर से निकलवा दिया। मोहनदास करमचंद गांधी ने 'आत्मकथा' में जी दुखाने वाली इस दुर्घटना का संक्षिप्त विवरण दिया है :

"मैंने कहा—लेकिन मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।
साहब बहुत बिगड़े—चपरासी इसको दरवाजा दिखलाओ।
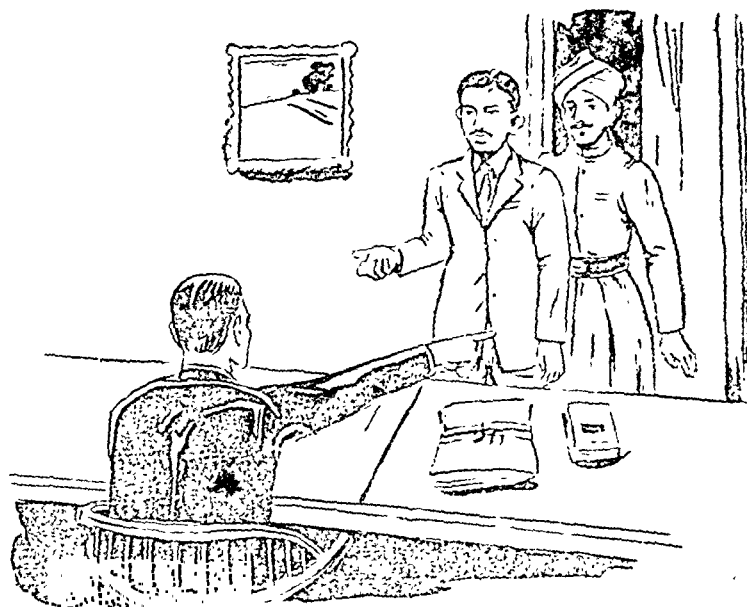
"मैंने कहा—लेकिन मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।
साहब बहुत बिगड़े—चपरासी इसको दरवाजा दिखलाओ।"

चपरासी दौड़ा आया । मेरे कन्धे पर चपरासी ने हाथ रखा और मुझे दरवाजे से बाहर निकाल दिया ।"

बैरिस्टर एम० के० गांधी ने मानहानि का मुकदमा चलाने का नोटिस दिया । साहब का उत्तर मिला, जो चाहो करो । उन दिनों के नामी-गरामी बैरिस्टर और प्रभावशाली राजनीतिक नेता, बम्बई के सर फीरोजशाह मेहता राजकोट आए हुए थे । उनसे सलाह ली गई । सलाह मिली कि चिट्ठी फाड़ डालो और अपमान को पी जाओ । हितैषी मित्रों ने समझाया कि पानी में रहना और मगर से वैर रखना ठीक नहीं । आखिर अंग्रेज अफसर की अदालत में ही बैरिस्टरी करनी है ।

'आत्मकथा' में बताया गया है कि, "मुझे यह नसीहत जहर की तरह कड़वी लगी । लेकिन कड़वे घूंट को गले से नीचे उतारने के सिवा और कोई चारा न था । मैं इस अपमान को भूल तो न सका, लेकिन मैंने इससे सीख ली कि इस तरह किसी की सिफारिश करने की स्थिति में अपने को न डालूंगा । इस नियम को मैंने कभी नहीं तोड़ा । इस आघात ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी ।"

बड़े भाई लक्ष्मीदास गांधी को भी इस घटना से आघात पहुंचा था । वह अपने छोटे भाई के भविष्य के विषय में चिन्तित थे । इंग्लैण्ड-रिटर्न अपने भाई की सुख-सुविधा के लिए लक्ष्मीदास गांधी ने घर में खाने-पहनने के चलन को पहले ही साहबी ढंग का कर दिया था । कुछ 'सुधार' मोहनदास ने भी घर आकर किए थे । नतीजा यह हुआ था कि आमदनी से खर्चा बढ़ने लगा था ।

ऐसी परिस्थिति में पोरबंदर के प्रवासी व्यापारी दादा अब्दुल्ला के भारतीय भागीदार करीम सेठ का सन्देश मिला—"हमारा व्यापार दक्षिण अफ्रीका में है । हमारी पेढ़ी बड़ी है । हमारा एक केस बहुत दिनों से चल रहा है । एक साल से अधिक आपकी जरूरत नहीं पड़ेगी ।

आपको जाने-आने का फर्स्ट क्लास का किराया और रहने-खाने के खर्च के अलावा एक सौ पांच पौंड देंगे ।"

यह वैरिस्टरी नहीं, नौकरी थी । लेकिन अपनी तत्कालीन परिस्थिति से ऊबे हुए वैरिस्टर एम०के० गांधी ने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । आजीविका की आवश्यकता, काठियावाड़ के तत्कालीन विषाक्त सामाजिक वातारण से ऊब और अपमान करनेवाले अंग्रेज अफसर की अदालत में वकालत करने में अरुचि के कारण, मोहनदास ने विदेश जाने का निश्चय किया ।

इस समय तक दूसरे पुत्र का जन्म हो चुका था । पत्नी से बिछुड़ना अखरता था । लेकिन इस वार स्वदेश छोड़ते समय मोहनदास ने अनुभव किया कि "वियोग का जो दुख विलायत जाते समय हुआ था, वैसा दक्षिण अफ्रीका जाते समय नहीं हुआ ।"

माता पुतलीवाई अब संसार में नहीं थीं । उसकी दी हुई तुलसी की कंठी मोहनदास के गले में सदा रहती थी ।

दक्षिण अफ्रिका की ओर

वैरिस्टर गांधी ने हारे दर्जे वैरिस्टर से कानूनी सलाहकार और पैरोकार काम करना स्वीकार किया था। लेकिन वह इस बात के लिए तैयार न थे कि तीसरे दर्जे के यात्री की घटिया हैसियत से जहाज पर चढ़ें। पहले दर्जे के सब टिकिट बिक चुके थे। स्थानाभाव के कारण दादा अब्दुल्ला के एजेंट ने ऐसा प्रबन्ध करना चाहा कि मोहनदास जाएं तो डेक-यात्री बनकर, किन्तु खाना और नाश्ता वह ऊंचे दर्जे के यात्रियों के भोजनगृह में कर सकें। वैरिस्टर गांधी को यह भी स्वीकार न था। वह प्रथम श्रेणी के यात्री की हैसियत से ही जाना चाहते थे। उन्हें युक्ति सूझी कि जहाज के कप्तान से क्यों न मिल लिया जाए। एजेंट से पूछ कर वह कप्तान से मिले। कप्तान से उन्होंने कहा—"क्या आप मेरे लिए गुंजायश नहीं निकाल सकते ?" उसने वैरिस्टर गांधी को सर से पांव तक गौर से देखा और मुस्कराया। वह बोला—"सिर्फ मेरे केबिन में मेरी एक अतिरिक्त वर्थ है, जो यात्रियों को दी नहीं जाती। लेकिन आपको मैं वह जगह दे सकता दूं।"

प्रथम श्रेणी के टिकिट का पैसा चुका दिया गया और सन 1893 के अप्रैल महीने में मोहनदास करमचंद गांधी ने "अपना भाग्य आजमाने के लिए उत्साह के साथ दक्षिण अफ्रीका की ओर प्रस्थान किया।"

जहाज के कप्तान के साथ उनकी खूब निभी। वह शतरंज का शौकीन था। पर अभी वह नौसिखिया था। इसलिए उसे भी एक नौसिखिये की तलाश थी। वैरिस्टर गांधी ने उससे खेल सीखा। कप्तान अपने साथी को हराकर उत्साहित होता। उत्साहित होकर, वह अपने

साथी को शतरंज खेलना सिखाता । इस तरह दिन बीतते गए और जहाज लामू बंदरगाह के पास पहुंचा, जहां उसे तीन-चार घंटों के लिए लंगर डालना था ।

कप्तान किनारे पर गया । कुछ और लोग भी उतरे । मोहनदास भी लामू बंदर देखना चाहते थे । कप्तान ने उन्हें आगाह किया कि समुद्र तट से जहाज पर वापस आने में असुविधा होगी, इसलिए जल्दी ही आ जाना । लामू बंदर एक छोटा-सा शहर था । डाकघर में भारतीय कर्मचारियों को देख कर मोहनदास बहुत प्रसन्न हुए । लौटे तो देखा कि समुद्र तट पर भारतीय यात्री भोजन बना कर, खा-पी चुके हैं और जहाज पर वापस जाने के लिए नाव की तलाश में हैं । नाव आई और मोहनदास भी भारतीय यात्रियों के साथ हो लिए । लेकिन समुद्र चढ़ाव पर था । नाव बहुत ज्यादा लदी हुई थी । जहाज की सीढ़ी तक पहुंच कर नाव ज्वार के थपेड़ों से इधर-उधर हो जाती थी । उधर जहाज पर प्रस्थान का भोंपू बज चुका था । शतरंज के अपने शिष्य और साथी को नाव में देख कर, जहाज के कप्तान ने जहाज को पांच मिनट लेट कर देने का आदेश दिया । किसी सहयात्री मित्र ने मोहनदास के लिए दस रुपये में एक अन्य नाव की व्यवस्था की और वह जहाज के पास पहुंच भी गई लेकिन तब तक नसेनी उठा ली गई थी । रस्से के सहारे मोहनदास को ऊपर खींचा गया । पहली नाव पर सवार भारतीय यात्री पीछे छूट गए ।

जहाज मोम्बासा होता हुआ, जंजीबार पहुंचा, जहां से यात्रियों को जहाज बदलना था । इस बीच वहां आठ-दस दिन रुकना जरूरी था । कप्तान ने विदा लेने से पहले मोहनदास को सैर-सपाटे पर साथ चलने के लिए निमंत्रण दिया । कप्तान का प्रेम देख कर, मोहनदास ना न कह सके । लेकिन कप्तान का प्रेम मोहनदास के लिए दुखदायी सिद्ध हुआ । एक अन्य अंग्रेज यात्री के साथ, कप्तान मोहनदास को

का उपकार माना कि उस बहन को देखकर, मेरे मन में रंचमात्र भी विकार पैदा न हुआ ।"

लगभग एक सप्ताह मोहनदास अलग कमरा लेकर, जंजीबार में भ्रमण करते रहे। ऐसी घनी हरियाली, विशाल वृक्ष और जंगली फल उन्होंने पहले कभी नहीं देखे थे। उन्होंने भारत के मलाबार (केरल) प्रान्त को ही हरियाली में जंजीबार के समकक्ष पाया।

नया जहाज मोज़ेम्बिक होते हुए नाताल के बंदरगाह, डर्बन में पहुंचा और मोहनदास भूमध्य रेखा के दक्षिण-पश्चिम में, देश से बहुत दूर, हिन्द महासागर के दूसरे छोर पर पहुंच गए । मई का महीना था, लेकिन दक्षिणी गोलार्ध में होने के कारण, नाताल में तब जाड़ों का मौसम था ।

दादा अब्दुल्ला ने बैरिस्टर गांधी का स्वागत किया । दादा अब्दुल्ला अपने कारबार के मालिक एक धनी व्यापारी थे । ऐसे लोगों को गुजरात में आदर से सेठ या शेठ कहते हैं, जो संस्कृत के श्रेष्ठि शब्द का ही बदला हुआ रूप है । अब्दुल्ला सेठ के अतिरिक्त और भी लोग अपने-अपने मित्र और सम्बन्धियों से मिलने, जहाज पर आए थे । मोहनदास करमचंद गांधी को यह समझते देर न लगी कि गोरे लोग अब्दुल्ला सेठ से ऐसा बर्ताव करते थे, जैसे बड़े लोग छोटों के प्रति करते हैं। बैरिस्टर गांधी बढ़िया विलायती सूट पहने हुए थे । इसलिए गोरे लोग उनकी ओर कुछ कौतूहल से ताकते थे । उनकी बंगालीनुमा पगड़ी विलायती सूट से मेल नहीं खाती थी और कुछ अजब-सी लगती थी । मोहनदास की दृष्टि और निरीक्षण शक्ति तीक्ष्ण थी और उन्हें ऐसा लगा कि भारतीय प्रवासियों को नाताल में नीचा समझा जाता है।

अब्दुल्ला सेठ भी बैरिस्टर गांधी को देख कर अचकचाए। सेठ के मन में संशय हुआ कि देश से आया हुआ यह साहबनुमा आदमी महंगा तो पड़ेगा ही, शायद निरुपयोगी भी सिद्ध हो ।

टूटी-फूटी अंग्रेजी अब्दुल्ला सेठ खुद भी जानते थे और उसके सहारे बैंक और अदालत में अपना काम चला लेते थे। तब यह हिन्दुस्तानी बैरिस्टर उनके किस काम का ? यह भी डर था कि कहीं यह साहब-नुमा आदमी विपक्षी से न मिल जाए।

स्वागत-सत्कार की आड़ में भी अब्दुल्ला सेठ के संशय को मोहनदास करमचंद गांधी ने ताड़ लिया। उन्हें अपनी स्थिति सुखद नहीं लगी। दूसरे-तीसरे दिन जब वह अदालत में गए, उन्हें अब्दुल्ला सेठ के वकील पास बिठलाया गया। जज उन्हें बार-बार घूर-घूर कर देखता रहा और कुछ देर बाद एकाएक गरजा—"अदालत में अपनी पगड़ी उतार कर बैठो।" बैरिस्टर गांधी ने पगड़ी उतारना स्वीकार नहीं किया और अदालत से बाहर निकल आए।

बाहर आकर, अब्दुल्ला सेठ ने पगड़ी की परिस्थिति समझाई। भारतीय मुसलमान स्वयं को 'अरब' बतला कर ही दक्षिण अफ्रीका में पगड़ी पहन सकते थे। वहां रहने वाले भारतीय पारसी अपने-आप को 'पर्शियन' कहते थे। भारतीय नस्ल के क्रिश्चियन, जो होटलों में बैरे का काम करते थे, यूरोपियन पोशाक के साथ हैट पहना करते थे। हिन्दुस्तानी या इंडियन कहे जाने वाले लोग, जो अपने आपको न अरब कहते थे, न पर्शियन, दो वर्गों में बंटे हुए थे। क्लर्क और कारकुन थे। वे या तो मुसलमान व्यापारियों के नौकर थे या डाकखाने या रेलवे कम्पनी में। उन्हें कोई नहीं पूछता था। बहुसंख्यक वर्ग में भारतीय मजदूर थे, जो एग्रीमेंट पर अंगूठा लगा कर एक विशेष अवधि के लिए लगभग दास बन कर आए थे। इन्हें गिरमिटिया कहा जाता था, एग्रीमेंट के कारण। यह बहुसंख्यक वर्ग तमिल, तेलुगु और हिन्दी बोलनेवालों का था। इन्हें गोरे लोग या तो 'सामी' कहते थे या 'कुली'। दक्षिण भारतीय 'स्वामी' शब्द का बहुत प्रयोग करते थे। यही शब्द बिगड़ कर, सामी बन गया था। यदि कोई शब्द का शुद्ध रूप और

उनका सही अर्थ बताने की जुर्रत करता, तो दक्षिण अफ्रीका के गोरे स्वामी उसे मारते-पीटते थे।

दक्षिण अफ्रीका में अपने भारतीय भाइयों की स्थिति देखकर, बैरिस्टर गांधी को अच्छा नहीं लगा। वह विलायती पोशाक पहनने के आदी थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि हैट का उपयोग करेंगे। लेकिन अब्दुल्ला सेठ ने कहा कि इंग्लैण्ड की बात और है। यहां तो उन्हें हैट पहने देख कर, गोरे लोग वेटर या बैरा कहेंगे। नंगे सिर रहना बैरिस्टर गांधी को स्वीकार न था। इसलिए यही निश्चय हुआ कि वह अपनी पगड़ी न उतरने देंगे। सवाल स्वाभिमान, और भारतीय होने के नाते, जातीय सम्मान का था।

मोहनदास करमचंद गांधी बैरिस्टर होने के बावजूद अपने देश में एक विदेशी अधिकारी के द्वारा अपमानित होकर, दक्षिण अफ्रीका आए थे। किन्तु यहां की परिस्थिति तो और भी बुरी थी। उन्होंने अखबारों में सम्पादक के नाम एक पत्र छपवाया, जिसमें भारतीय होने के नाते पगड़ी पहनने के अपने अधिकार का उन्होंने प्रतिपादन किया। यह भी स्पष्ट किया कि अदालत के प्रति असम्मान का भाव तो उनके मन में, एक बैरिस्टर होने के नाते, आ ही नहीं सकता था। बैरिस्टर गांधी ने पगड़ी पहनने का अपना दृढ़ संकल्प भी प्रकट किया।

प्रतिक्रिया अधिकांश में प्रतिकूल हुई। कुछ सम्पादकों ने 'अनवेल्कम विज़िटर' (मान-न-मान, मैं तेरा मेहमान) जैसे शीर्षक से अनुदार टिप्पणी की। कुछ-एक ऐसे भी पत्र छपे, जिनमें बैरिस्टर गांधी के पगड़ी पहनने के अधिकार की हिमायत की गई थी। इस वाद-विवाद का एक अप्रत्याशित अनुकूल परिणाम यह हुआ कि बैरिस्टर एम० के० गांधी का नाम कुछ ही दिनों में विख्यात हो गया। इस प्रकार बैरिस्टर गांधी का नाम तो चर्चा का विषय बना ही, आन भी रह गई। न उनका सर नीचा हुआ, और न सर से पगड़ी हटी।

डर्वन के भारतीय व्यापारी, शिक्षक और पढ़े-लिखे अन्य व्यव-
ों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा। ईसाई, पारसी और मुसल-
कई-एक प्रवासी भारतीय सज्जन बैरिस्टर गांधी के प्रशंसक
मित्र बन गए। उनके मन में भारतीय भावना करवटें लेने लगी।
प्रिटोरिया से तार आया कि मुकदमे के सिलसिले में अब्दुल्ला
तुरन्त वहां पहुंचें या अपना प्रतिनिधि भेजें। अब्दुल्ला सेठ
रिस्टर गांधी से जाने की बात कही। "पर इस मुकदमे के बारे
आपने मुझे कुछ समझाया नहीं है", गांधी बोले। सेठ ने अपने
से केस समझाने को कहा। बैरिस्टर गांधी की समझ में कुछ नहीं
। वही-खाते में जमा-खर्च, क्रेडिट-डेबिट की विद्या मोहनदास
ो ही न थे। उन्होंने मुनीम को अपना शिक्षक बनाया। वही-खाते
द्या (बुक-कीपिंग) पर एक पुस्तक खरीदी और ध्यान से पढ़ी।
उनकी समझ में आ गया। "मैं प्रिटोरिया जाने को तैयार हूं",
टर गांधी ने अब्दुल्ला सेठ को सूचित किया।
अब्दुल्ला सेठ बैरिस्टर गांधी के स्वभाव को थोड़ा-बहुत जान
े। उनकी भलमनसाहत और सच्चरित्रता का अब्दुल्ला सेठ के
र अच्छा प्रभाव पड़ा था। ऐसी भावना भी नहीं रही थी
सौदा महंगा पड़ा है। किन्तु जब बैरिस्टर गांधी ने सुझाया
हां तक हो सके, लेन-देन के आपसी झगड़ों को आपस में सम-
करके ही निपटा लेना चाहिए, तब अब्दुल्ला सेठ के फिर कान
हो गए। "समझौते की नीति मुकदमेबाजी से अच्छी ही रहेगी",
बोले। "लेकिन आप तैयब सेठ को नहीं जानते। वह हमारे
क्षी भी हैं और रिश्तेदार भी। समझौते की बातचीत में वह
के पेट से हमारे सब भेद निकाल लेंगे और फिर हमारे खिलाफ
का उपयोग करेंगे। वह बहुत ही होशियार आदमी हैं।"
बैरिस्टर गांधी ने उन्हें आश्वस्त किया कि आपकी कोई बात
मुंह से न निकलेगी और न आपके हित और विश्वास को ही मुझसे

कोई क्षति पहुंचेगी। लेकिन यह बात तो आप मानेंगे ही कि मुकदमे-बाज़ी में समय और पैसे की जो बर्बादी होती है, उससे तो समझौता कर लेना कहीं अच्छा है।

अब्दुल्ला सेठ ठहरे व्यापारी आदमी। उन्होंने अपने पैरोकार, बैरिस्टर गांधी को सावधानी बरतने की ताकीद की। कहा कि प्रिटोरिया में प्रतिपक्षी तैयब सेठ का बहुत प्रभाव है। स्थानीय व्यापारियों में उनके भेदिए भी हो सकते हैं। इसलिए उनसे बच कर रहना होगा। उनसे मेल-जोल बढ़ाना ठीक न होगा। दस्तावेज और अन्य कानूनी कागज-पत्रों का ध्यान रखना होगा कि कागजात किसी के हाथ न लग जाएं। बैरिस्टर गांधी ने उन्हें आश्वस्त किया और बिदा ली।

अब्दुल्ला सेठ ने उन्हें रेलवे स्टेशन पर पहुंचाया, प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बिठलाया और सलाह दी कि खर्च का कुछ ख्याल न करके वह अपने लिए बिस्तर भी सुरक्षित करा लें। बिस्तर असबाब में था, इसलिए मितव्ययी मोहनदास ने उनका अधिक खर्च न कराना ही उचित समझा।

नाताल की राजधानी मेरिट्ज़बर्ग तक यात्रा सकुशल पूरी हुई। यहां रात पड़ गई। परिचारक बिस्तर के लिए पूछने लगा। असबाब में बिस्तर है, यह कह कर मोहनदास करमचंद गांधी ने परिचारक से मना कर दिया। परन्तु उस रात आराम से सोना बैरिस्टर गांधी के भाग्य में न था।

एक गोरे यात्री ने डिब्बे में प्रवेश किया और एक भारतीय को सहयात्री के रूप में देखकर, उसकी त्यौरियां चढ़ गईं। तीसरे दर्जे के डिब्बों की ओर संकेत करते हुए, उसने कहा—वहां जाओ। बैरिस्टर गांधी ने साफ-सुथरी अंग्रेजी भाषा में कहा—मेरे पास फर्स्ट क्लास का टिकट है। सुनकर, गोरा आग-बबूला हो गया—फर्स्ट क्लास का टिकट है तो क्या हुआ? मैं कहता हूं तुम्हें यहां से हटना होगा। लेकिन मैं भी तो कहता हूं कि मुझे फर्स्ट क्लास का टिकिट

और यहां बैठने का स्थान डर्बन से ही प्राप्त है—बैरिस्टर मोहनदास ने संयत स्वर में उत्तर दिया—मैं फर्स्ट क्लास में ही यात्रा करूंगा। नहीं, ऐसा नहीं होगा, वह गुर्राया—तुम्हें उठना होगा, वरना पुलिस का आदमी तुम्हें उठा कर बाहर फेंक देगा। उठते हो या पुलिसवाले को बुलाऊं ?

पुलिस का सिपाही बुलाया गया और उसने हाथ पकड़, धक्के मारकर, सूटेड-बूटेड बैरिस्टर गांधी को डिब्बे से बाहर निकाल दिया।

"आप बुलाना चाहें, तो पुलिस बुलाइए। मैं अपनी इच्छा से तो यहां से हटूंगा नहीं"—गोरे को मोहनदास करमचंद गांधी का उत्तर मिला। पुलिस का सिपाही बुलाया गया और उसने हाथ पकड़, धक्के मारकर, सूटेड-बूटेड बैरिस्टर गांधी को डिब्बे से बाहर निकाल दिया। उनका असबाब भी बाहर फेंक दिया गया। तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठने से मोहनदास से इन्कार किया और गाड़ी चल दी। हैंडबैग को लिए बैरिस्टर गांधी मुसाफिरखाने में चले गए और बाकी सामान को वहीं छोड़ दिया, जिसे रेलवे के अधिकारियों ने अपने पास रख लिया।

दक्षिण अफ्रीका में उन दिनों कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। वह पहाड़ी स्थान तो था ही, ठंड जाड़ों में शिमला-नैनीताल की जैसी रही होगी। मध्य रात्रि, अंधेरा कमरा और परदेस में एकाकी बैठे मोहनदास करमचंद गांधी कड़कड़ाती सर्दी में रतजगा कर रहे थे। कोई दूसरा यात्री भी आ पहुंचा। उसने कुछ बात छेड़ी, लेकिन भावी सत्याग्राही नेता का ध्यान रंग-भेद की दुरंत दुर्नीति और मानवता पर उसके भीषण प्रभाव और परिणामों पर केन्द्रित था। मोहनदास करमचंद गांधी के जीवन में यह क्रान्ति की रात थी। वह सोच रहे थे कि मनुष्य को मनुष्य न समझने वाली रंग-भेद की दुर्नीति से लोहा लूं या चुपचाप स्वदेश वापस चला जाऊं? जो काम हाथ में लिया है, उसे मर्द की तरह पूरा करूं या अधूरा ही छोड़ दूं?

प्रश्न स्वाभिमान और न्यायोचित अपने निजी अधिकार की रक्षा का ही नहीं, मानवता की मर्यादा का है, मोहनदास करमचंद गांधी ने विचार किया। आततायी के प्रति आक्रोश या गोरी जाति के प्रति विद्वेष मन में न था। थी कर्तव्य के प्रति निष्ठा, स्वाभिमानी नागरिक की तरह निर्भीक जीने की आस्था और पशु पर हाथ उठाए बिना पशुता का प्रतिकार करने की अदम्य आकांक्षा। कहीं तो अन्याय और अत्याचार से डटकर मुकाबला करना ही होगा। कभी तो अमानवीय दुर्नीति से

मानव के विवेक को टक्कर लेनी होगी। किसी को तो यह काम करना ही होगा।

कर्तव्यपथ से विमुख न होने का निर्णय करके, मोहनदास करमचंद गांधी ने आगामी रेलगाड़ी की प्रतीक्षा करना ही उचित समझा। वह उठे और रेलवे के जनरल मैनेजर के नाम विस्तार से तार लिख भेजा। अब्दुल्ला सेठ को भी तार से सूचना दी। अब्दुल्ला सेठ ने जनरल मैनेजर से भेंट की। जनरल मैनेजर ने रेलवे के अधिकारियों का बचाव किया, लेकिन यह भी कहा कि उन्होंने अपने कर्मचारियों को बैरिस्टर गांधी को गन्तव्य स्थान तक सकुशल पहुंचा देने की ताकीद कर दी है।

अब्दुल्ला सेठ ने मेरिट्ज़बर्ग तथा आसपास के अपने परिचित व्यापारी मित्रों को तार से सन्देश भेज दिया था कि वह बैरिस्टर गांधी से मिलें और उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखें। रात बीती और दिन भर प्रवासी भारतीय व्यापारियों का तांता लगा रहा। बैरिस्टर गांधी से उन्होंने कहा कि ऐसी घटनाएं तनिक भी अनहोनी नहीं हैं, आए दिन होती रहती हैं। रेलवे अधिकारियों और गोरे यात्रियों का ऐसा ही व्यवहार रहता है। प्रवासी देशवासियों की दुखद कथा सुनकर, मोहनदास करमचंद गांधी का संकल्प और भी दृढ़ हो गया।

शाम हुई। गाड़ी आई। स्थान फर्स्ट क्लास में आरक्षित हुआ और मोहनदास भोर हुए चार्ल्सटाउन पहुंच गए। उन दिनों वहां से जोहान्सबर्ग तक तेज घोड़ागाड़ी में आना होता था। व्यवस्थापक ने पुराने टिकिट के बेकार हो जाने का बहाना बना कर, बैरिस्टर गांधी को स्थान देने में आनाकानी की। लेकिन जब उसे कानूनी पक्ष समझाया गया, तो वह बगलें झांकने लगा। उसकी दुविधा यह थी कि बैरिस्टर गांधी घोड़ागाड़ी के भीतर बैठने के अधिकारी थे, किन्तु गोरे सहयात्री इसे सहन न करते। इस दुविधा को समझ कर और कर्तव्यसिद्धि के लिए बाहर बैठने में कोई हर्ज न देख कर, मोहनदास

करमचंद गांधी कोच-वाक्स की एक सीट पर बैठ गए। कोच का अधिकारी, जो जान-बूझकर, उस दिन भीतर बैठा था, दोपहर बाद बाहर बैठना चाहता था, क्योंकि उसे सिगरेट पीना था और हवा खानी थी। वह बाहर आकर बोला—"सामी, तुम नीचे बैठ जाओ।" और उसने एक गंदा झाड़न पैताने बिछा दिया। यह असहनीय था। अपमान के आवेग से मोहनदास का शरीर कांपने लगा। उन्होंने कहा—"तुम भी जानते हो कि मेरा स्थान गाड़ी के भीतर था। वहां तुम बैठ गए। और अब सिगरेट पीने के लिए तुम्हें बाहर बैठना है, तो मुझे अपने पांवों में जगह देते हो। यह नहीं हो सकता। हां, मैं भीतर बैठने को तैयार हूं।" मोहनदास बोल ही रहे थे कि कोच के गोरे अधिकारी ने उनकी कनपटी पर मुक्के मारने शुरू कर दिए। उसने उनकी बांह

मोहनदास बोल ही रहे थे कि कोच के गोरे अधिकारी ने उनकी कनपटी पर मुक्के मारने शुरू कर दिए। उसने उनकी बांह पकड़कर धक्का दिया और नीचे गिरा देना चाहा।

पकड़ कर धक्का दिया और नीचे गिरा देना चाहा। मोहनदास ने दृढ़ता से कोच पर जड़ी हुई पीतल की कीलों को पकड़ लिया और निश्चय

किया कि चाहे कलाई की हड्डियां तड़क जाएं, छोड़ेंगे नहीं। गाड़ी में बैठे हुए यात्री भी यह दृश्य देख रहे थे। गाली बकता हुआ आततायी मार-पीट कर रहा था और मोहनदास करमचंद गांधी को गाड़ी से गिरा देने पर आमादा था। वह बहुत तगड़ा था और शान्त भाव से पिटता हुआ व्यक्ति अपेक्षाकृत बहुत कमजोर था। यात्री चिल्लाए—"जाने दो जी। दोष उनका नहीं। वह भीतर बैठने के अधिकारी हैं। इन्हें भीतर बैठने दो।" "यह नहीं हो सकता", आततायी चिल्लाया। पर वह खिसिया गया। उसने मार-पीट बंद कर दी और कोचवान की दूसरी ओर बैठे हुए अफ्रीकी नौकर को पैताने बिठाकर, स्वयं उसकी जगह जा बैठा। वहां बैठा-बैठा वह गुस्से से गुर्राता रहा कि अगले स्टेशन पर देख लूंगा, मेरे हाथ से बचकर तू जाएगा कहां ?

मोहनदास करमचंद गांधी भगवान का भजन करते हुए मौन बैठे रहे। रात को ठहरने का स्टेशन आया, जहां अब्दुल्ला सेठ की सूचना पाकर कुछ प्रवासी भारतीय बैरिस्टर गांधी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह ईसा सेठ के कर्मचारी थे। ईसा सेठ की दूकान पर बैरिस्टर गांधी को रात बितानी थी। बातचीत हुई और बैरिस्टर गांधी की बात सुनकर सबका जी भर आया।

लेकिन वे सब तो अपमान, अन्याय और आघात सहने के आदी हो चुके थे। रोना रोया और चुप हो रहे। मोहनदास करमचंद गांधी का कहना था कि अपने मानवोचित अधिकारियों को पाने और सुरक्षित रखने के लिए उद्योग करना होगा। उन्होंने कोच कम्पनी के मालिक को तुरन्त सविस्तार पत्र लिखा और प्रातःकाल गाड़ी में जगह आरक्षित करने की मांग की। कोच अधिकारी की करतूत का ब्यौरा भी दिया। पत्रोत्तर मिला कि प्रातःकाल बड़ी गाड़ी जाएगी, जिसमें बैरिस्टर गांधी का स्थान सुरक्षित रहेगा और नए कोच अधिकारी को साथ भेजा जाएगा।

जोहान्सबर्ग की यात्रा सकुशल पूरी हुई। स्वागत के लिए कोई प्रवासी भारतीय दिखलाई न दिया, तो मोहनदास शहर के बड़े होटल में पहुंचे। होटल के मैनेजर ने उन्हें गौर से देखा और टका-सा जवाब दे दिया—होटल में जगह नहीं है। लाचार होकर मोहनदास स्थानीय व्यापारी अब्दुल गनी सेठ के ठिकाने पर गए। मालूम हुआ कि सेठ का कर्मचारी स्वागत के लिए गया तो था, लेकिन अंग्रेजी वेशभूषा के कारण मोहनदास करमचंद गांधी को पहचान न सका। स्वागत-सत्कार मन से हुआ और रात को बातचीत के दौरान अब्दुल गनी सेठ ने कहा—"आप जैसे भले आदमी का इस देश में भला क्या काम ? हम लोग तो रुपये के लोभ से धक्के खाकर भी यहां पड़े हैं। उन्होंने बताया कि जोहान्सबर्ग से प्रिटोरिया की यात्रा और भी कठिन है। थर्ड क्लास में ही सफर करना होगा। मोहनदास फर्स्ट क्लास में सफर करने पर दृढ़ थे। उन्होंने स्टेशन मास्टर को अपना स्थान आरक्षित कराने के लिए तुरंत पत्र लिख दिया और कहा कि टिकट वह स्वंय ही सुबह आकर खरीद लेंगे।

सवेरे अपने आतिथेय के साथ, मोहनदास अपनी अंग्रेजी वेश-भूषा में रेलवे स्टेशन पहुंचे और फर्स्ट क्लास अंग्रेजी में फर्स्ट क्लास का टिकिट मांगा। स्टेशन मास्टर ने पूछा– "क्या पत्र आपने ही भेजा था?" मोहनदास ने हामी भरी। स्टेशन मास्टर ने कहा—"मैं हालैण्ड-निवासी हूं, यहां का नहीं। मैं टिकिट तो दूंगा, लेकिन मेरी जवाबदारी नहीं, अगर रास्ते में गार्ड आपको उतार दे। आप भद्र व्यक्ति हैं। भगवान आपको सकुशल पहुंचाए।"

फर्स्ट क्लास का टिकिट देखकर, अब्दुल गनी सेठ को आश्चर्य हुआ। उन्होंने 'खुदा हाफिज़' कहा और भगवान से प्रार्थना भी की कि यात्रा सकुशल पूरी हो। गाड़ी चल दी। बीच के किसी स्टेशन पर गार्ड आया और तीसरे दर्जे की ओर इशारा करके बोला—"वहां जाओ।" बैरिस्टर गांधी ने अपना टिकिट दिखाया, लेकिन

उसे अनदेखा कर, गार्ड बड़बड़ाया—"इससे क्या होता है ? तुम यहां नहीं बैठ सकते । जाओ. .।" इस पर अंग्रेज सहयात्री ने गार्ड को आड़े हाथों लिया कि भले आदमी को क्यों नाहक परेशान करते हो ? मुझे कोई आपत्ति नहीं और इनके पास इस दर्जे का जायज टिकिट है ।" गार्ड तिनक कर कहा कि बैठ कुली के साथ मुझे क्या पड़ी है ।

सांझ को आठ बजे गाड़ी प्रिटोरिया पहुंच गई । स्टेशन पर कोई प्रवासी भारतीय नहीं आया था । किसी प्रवासी भारतीय व्यापारी को सूचना भी न भेजी गई थी, इसलिए न आना स्वाभाविक था । लेकिन अब्दुल्ला सेठ के गोरे वकील के किसी कर्मचारी को तो आना ही चाहिए था । जाड़े की रात गहरा रही थी । यात्री लगभग सब जा चुके थे । शायद रात स्टेशन पर ही बितानी पड़े, इसी विचार से बैरिस्टर गांधी ने चैकर को अपना टिकिट देकर पूछा कि क्या कोई ऐसी जगह मिल सकती है, जहां रात को ठहरा जा सके । उसने ना कहते हुए सिर हिला दिया । उस समय एक अमरीकी नीग्रो वहां था । वह बोला—"शायद आप यहां के लिए अनजान और अजनबी हैं । आप मेरे साथ चलें । मैं आपको अपने अमरीकी मित्र के होटल में जगह दिला दूंगा ।"

होटल में सिफारिश से जगह तो मिली, लेकिन इस शर्त पर कि अतिथि को खाना अपने कमरे में ही खाना होगा । मोहनदास मान गए और अपने एकान्त कमरे में बैठे ऊहापोह करने लगे । इतने में होटल का मालिक आया और बोला—"क्षमा कीजिए, मैंने अनुचित शर्त लगाई थी । मैंने अपने अन्य सब अतिथियों से बात कर ली है । आप सबके साथ बैठकर भोजन करें और जब तक चाहें, यहां ठहरें ।"

धर्म, कानून और लोक-सेवा

होटल में रात विताकर, बैरिस्टर गांधी दिन चढ़े ही अब्दुल्ला सेठ के वकील मिस्टर बेकर से जा मिले। मिस्टर बेकर वहुत अच्छी तरह मिले। उन्होंने यह भी वतलाया कि गए कल रविवार होने के कारण, वह बैरिस्टर गांधी के पास किसी को स्टेशन नहीं भेज सके। ज्ञात हुआ कि धर्मनिष्ठा ईसाई होने के कारण मिस्टर बेकर रविवार को धंधा या दुनियादारी का कोई काम नहीं करते। उनका हर रवि-वार पूर्णतः ईश्वर को समर्पित होता है। मोहनदास करमचंद गांधी को कोई शिकायत नहीं थी। उन्होंने वतलाया कि अमरीकी होटल में किसी तरह जगह मिल गई थी और रात आराम से कटी।

मिस्टर बेकर ने कहा कि वह बैरिस्टर गांधी से भेंट कर लेने के वाद ही उनके लिए कोई उपयुक्त जगह खोजना चाहते थे। सो, एक जगह है इस लायक, बशर्ते कि मकान-मालकिन मान जाए।

मकान-मालकिन गोरी नस्ल की एक गरीब बुढ़िया थी, जिसका पति नानबाई यानी बेकर का काम करता था। वकील मिस्टर बेकर ने बुढ़िया से अकेले में वातचीत की। एक सौ चालीस शिलिंग प्रति मास पर जगह और खाना देने के लिए वह राजी हो गई। उसने वैरिस्टर गांधी के लिए उपयुक्त शाकाहार का प्रबन्ध कर देने को भी कहा।

शाकाहार की वात सुनकर, मिस्टर बेकर की दिलचस्पी बढ़ी। उन्होंने वैरिस्टर गांधी से उनके धार्मिक विचारों पर चर्चा की। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि बैरिस्टर गांधी ईसाई धर्म से परिचित और ईसा मसीह के प्रति श्रद्धालु हैं। मिस्टर बेकर ने बतलाया कि मैंने अपने पैसे से एक चर्च भी वनवाया है और धार्मिक प्रवचन और

प्रचार भी नियमित रूप से करता हूं । उन्होंने बैरिस्टर गांधी को प्रार्थना सभाओं और धार्मिक गोष्टियों में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया । इस प्रकार बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी दक्षिण अफ्रीका के ईसाई धर्म-प्रचारकों के घनिष्ठ सम्पर्क में आने लगे ।

प्रिटोरिया के प्रवासी भारतीय समुदाय से भी उनका घनिष्ठ सम्पंर्क स्थापित हो गया । अपने देशवासियों को बैरिस्टर गांधी ने जिस दशा में पाया, उसे देखकर वह अपनी असुविधा और व्यथा को भूल गए । प्रवासी देशवासियों के कल्याण के लिए कुछ-न-कुछ करना उन्हें अनिवार्य लगा ।

बैरिस्टर गांधी ने गोरों के काले कानून का अध्ययन करना शुरू किया और बहुत शीघ्र ही उन्होंने तथ्य की बातें जान लीं । दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीय लोगों का प्रवेश गोरों के बुलावे पर हुआ था । तब गोरे लोगों की संख्या केवल सात हजार थी और ईख की अपनी खेती-बाड़ी तथा खानों में काम करने के लिए अफ्रीका के आदिम निवासियों से काम चलता न था । इसलिए बाध्य होकर, उन्हें भारत सरकार से भारतीय किसान और मजदूर भेजने का अनुरोध करना पड़ा था । भारत सरकार ने दक्षिण अफ्रीका में सन अठारह सौ बयालीस की इस वैधानिक व्यवस्था के आधार पर कि "रंग, नस्ल, धर्म और भाषा के आधार पर भेद-भाव बरते बिना, सबको कानून की दृष्टि से समान समझा जाएगा," सन 1860 में करार पर भारतीय लोगों के दक्षिण अफ्रीका ले जाए जाने की स्वीकृति दे दी थी । दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों की दशा को असन्तोषप्रद पाकर, भारत सरकार ने सन अठारह सौ उनहत्तर में (मोहनदास करमचंद गांधी के जन्म-वर्ष में) भारतीयों की भरती पर रोक लगा दी थी । इससे नाताल की सरकार का आर्थिक विकास रुक गया । इसलिए बाध्य होकर, उसने भारत सरकार से

फिर अनुरोध किया और आश्वसन दिया कि पांच साल का करार पूरा करने के वाद जो भारतीय स्वदेश वापस आना चाहेंगे, उन्हें किराया दिया जाएगा और जो वहीं वसना चाहेंगे, उन्हें भूमि दी जाएगी। साथ ही यह भी आश्वासन दिया गया कि पांच साल के करार के वाद, प्रवासी भारतीय लोगों को वरावरी का दर्जा मिलेगा और विधि-विधान और शासन की दृष्टि में उनके साथ किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं वरता जाएगा। भारत सरकार की ओर से स्पष्ट घोषणा कर दी गई थी कि, "जव तक हम सन्तुष्ट न हो जाएंगे कि नाताल की सरकार प्रवासी भारतीय लोगों के प्रति अपने कर्तव्य में ढील नहीं करती, जव तक हमें यह विश्वास न हो जाएगा कि नाताल की सरकार के हाथों में ब्रिटिश साम्राज्य की भारतीय प्रजा के हित सुरक्षित हैं, तव तक हम भारतीय लोगों को वहां न जाने देंगे।"

करार पर भारतीय लोग जाने लगे। उनकी सुविधा के लिए नाताल सरकार ने पहले मारीशस से और फिर पश्चिम भारत से व्यापारियों को नाताल में बुलाया और वसाया। व्यापारियों के साथ मुनीम और कारकुन या क्लर्क भी गए। व्यापारी और उनके कर्मचारी शहरों में वसे और प्रवासी भारतीय मजदूर दूर देहातों में भी फैल गए। नाताल उनका प्रवेश द्वार था। वहां से धीरे-धीरे वह सम्पूर्ण दक्षिण अफ्रीका में फैलते गए।

करार या एग्रीमेंट पर आए हुए भारतीय मजदूर 'गिरमिटिए' कहे जाते थे। पांच साल के वाद अधिकतर प्रवासी भारतीय श्रमिक वहीं वस जाते थे। वहां उनके वाल-वच्चे ईसाई मिशनरियों के स्कूलों में पढ़कर या अस्पतालों में जाकर या लोभ-लालच से ईसाई वनने लगे। यों प्रवासी भारतीय लोगों में धर्म के आधार पर चार वर्ग वन गए: हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई। वृत्ति के आधार पर प्रवासी भारतवासियों के तीन वर्ग थे—श्रमिक, कर्मचारी और व्यापारी।

प्रिटोरिया के व्यापारियों से बैरिस्टर गांधी का अच्छा परिचय हो गया। वे सब मैमन उपजाति के काठियावाड़ी मुसलमान थे। मातृभाषा उनकी भी गुजराती थी। थोड़ी-बहुत कामचलाऊ टूटी-फूटी अंग्रेजी भी कुछ लोग जानते थे। भाषा और प्रदेश एक होने से बैरिस्टर गांधी के प्रति उनके मन में कुछ अपनापे की भी भावना थी। उन्होंने बैरिस्टर गांधी से जी खोलकर बातें कीं और बताया कि गोरे लोग अपना काम निकाल कर, अब भारतीय व्यापारियों को दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर करना चाहते हैं। दक्षिण अफ्रीका के औरेंज फ्री स्टेट नामक प्रान्त से तो व्यापारियों को उखाड़ ही दिया गया है। अब ट्रांसवाल की बारी है और फिर नाताल की।

मोहनदास गांधी ने उन्हें सुझाया कि जब तक वर्ग, धर्म और प्रान्त के भेद को भुलाकर, प्रवासी भारतीय एक न हो जाएंगे, तब तक विपत्ति का अन्त न होगा। गांधी जी के प्रस्ताव पर प्रिटोरिया के प्रवासी भारतीय लोगों की एक विशाल सभा हुई। सभा में गांधी जी का प्रथम सार्वजनिक भाषण हुआ। भाषण करने में अब तक जो हिचक होती थी, न जाने कहां गायब हो गई। मोहनदास करमचंद गांधी को वाणी मिली, क्योंकि वाणी को उसका सही हेतु मिल गया।

प्रिटोरिया के प्रवासी भारतीय समाज में बैरिस्टर गांधी की साख बढ़ गई। उनकी सच्चरित्रता, भद्रता और नेकनीयती के सब कायल थे। सुअवसर देखकर, बैरिस्टर गांधी ने डर्बन के अब्दुल्ला से और प्रिटोरिया के तैयब सेठ के बीच पंच-फैसला करा दिया। तैयब सेठ ने चालीस हजार पौंड के दावे में से, पंच फैसले के अनुसार, सैंतीस हजार पौंड की देनदारी स्वीकार करली।

मोहनदास करमचंद गांधी जानते थे कि देनदार इतनी बड़ी रकम एकमुश्त नहीं चुका सकेगा, इसलिए कह-सुनकर अब्दुल्ला सेठ को लम्बी अवधि तक किश्तों रकम लेने के लिए राजी कर लिया। अब्दुल्ला सेठ अगर हठ करते, तो उनके प्रतिपक्षी देनदार और नजदीकी

रिश्तेदार तैयब सेठ निश्चय ही जहर खाकर मर जाते । मैमन व्यापारियों का यह नियम था कि मर जाओ, पर दिवालिया मत बनो । और पंच-फैसला न होता, तो मुकदमा बरसों तक चलता और दोनों फरीकों को बर्बाद कर देता ।

फरीकों की बर्बादी पर खुद आबाद होने वाले वकील मानें या न मानें, लेकिन बैरिस्टर गांधी के मतानुसार "वकील का यही कर्तव्य होना चाहिए कि मुकदमा लड़ने वाले व्यापारियों को मिला दे, उनके विरोध को बढ़ने न दे ।"

अब्दुल्ला सेठ के वकील, मिस्टर बेकर ने बैरिस्टर गांधी को ईसा मसीह की शरण ग्रहण करने योग्य समझ कर, वार्षिक ईसाई सम्मेलन में अपने साथ चलने के लिए आमंत्रित किया । बैरिस्टर गांधी गए और यह देखकर दुखी हुए कि उनके साथ में होने के कारण मिस्टर बेकर को बार-बार असुविधा हुई । रंग-भेद और ईसाई धर्म-प्रचार का विरोधाभास स्पष्ट हो गया ।

मिस्टर बेकर के अतिरिक्त एक और ईसाई मित्र, मिस्टर कोट्स ने भी बैरिस्टर गांधी को ईसाई धर्म के प्रति आकर्षित करना चाहा । वह धार्मिक पुस्तकें देते गए और बैरिस्टर गांधी ध्यानपूर्वक उनका अध्ययन करते गए । उन्होंने अन्य ईसाई प्रचारकों से भी बैरिस्टर गांधी का परिचय कराया, जिनमें एक प्रचारक 'ब्रिस्टल ब्रदर्स' नामक ईसाई सम्प्रदाय के थे । इनके कथन का सारांश था, ईसा की शरणागति से सब पाप धुल जाते हैं । और क्योंकि पाप करने से मनुष्य बच नहीं सकता, इसलिए ईसा की शरण लो और जी चाहे सो करो । मिस्टर कोट्स को इस दलील से और ब्रिस्टल ब्रदर्स के आचरण से दुख पहुंचा । मोहनदास करमचंद गांधी ने उन्हें सान्त्वना दी कि ब्रिस्टल ब्रदर्स के उदाहरण के आधार मानकर मैं ईसाई धर्म पर विचार नहीं करता, बल्कि ईसाई धर्म के गुणों को चरितार्थ करने वाले अनेक ईसाई भाइयों को मैं जानता हूं ।

एक दिन मिस्टर कोट्स भी अनुदार आचरण कर बैठे। बैरिस्टर गांधी के गले में तुलसी की कंठी देखकर, वह बोले इसे तोड़कर फेंक दो। यह अन्धविश्वास की निशानी है। मोहनदास करमचंद गांधी ने कण्ठी के महत्व को यह कहकर स्पष्ट किया कि, "यह अंधविश्वास की नहीं, मेरी दिवंगता माता की निशानी है।"

तरी ने न पूछताछ की, न चेतावनी दी, एकाएक महात्मा गांधी पर टूट पड़ा और उन्हें मारपीट कर फुटपाथ से धकेल दिया।

एक दिन मिस्टर कोट्स को भी बैरिस्टर गांधी की सच्ची धार्मिकता का कायल होना पड़ा। गांधी को पैदल घूमने का शौक था। हर रोज की तरह एक वार वह रात गए घर लौट रहे थे। रास्ता प्रेसीडेंट क्रूगर के घर के सामने से निकलता था, जहां सदा पहरे पर सन्तरी रहता था। उस रात पहरे पर कोई नया संतरी तैनात था। वह अनुमतिपत्र प्राप्त भारतीय बैरिस्टर गांधी को पहचानता न था। नियम था कि गोरे लोगों की वस्ती में रात को काले लोग फुटपाथ पर निकल नहीं सकते थे। अनुमतिपत्र प्राप्त करके ही वह आ-जा सकते थे। अनुमतिपत्र बैरिस्टर गांधी के पास था। लेकिन अनजान गोरे सन्तरी ने न पूछताछ की, न चेतावनी दी, ध्यान-मग्न काले राहगीर पर एकाएक टूट पड़ा। बैरिस्टर गांधी को मार-पीटकर, उसने फुटपाथ से धकेल दिया। वह सड़क पर जा पड़े। संयोगवश उसी समय मिस्टर कोट्स घुड़सवारी कर रहे थे। उन्होंने अपनी आंखों से यह दुष्काण्ड देखा और गोरे सन्तरी को आड़े हाथों लिया। वैरिस्टर गांधी से वह बोले—"आप इस आदमी पर मुकदमा चलाइए, गवाही मैं दूंगा।" गांधी बोले—"मेरे प्रवासी देशवासियों और अफ्रीका के आदिम देशवासियों के साथ जो नित्य होता है, वही व्यवहार इस अनजान व्यक्ति ने मेरे साथ किया है। मैं इसे क्षमा करता हूं। अपने प्रति व्यक्तिगत अन्याय या दुर्व्यवहार की शिकायत लेकर, अदालत में न जाने का मेरा नियम है।"

"यह वात आपने अपने लायक ही कही" मिस्टर कोट्स बोले और क्षमा और सद्भाव की मूर्ति भारतीय बैरिस्टर गांधी की ओर देखते रहे।

प्रिटोरिया के प्रवासी देशवासियों के बीच मोहनदास करमचंद गांधी के गुणों की चर्चा होती थी। ऐसा भी कोई बैरिस्टर होगा, जो अपने स्वार्थ की नहीं, अपने मुवक्किल के हित की बात सोचे?

जो अपने ही मुवक्किल के हित की नहीं, विपक्षी के भी कल्याण की कामना करे ? वह देखते आए थे कि वकील का काम तो अपना घर भरना होता है, लेकिन अब उन्होंने यह देखा कि एक भारतीय बैरिस्टर ऐसा भी है, जिसका मन सद्‌भावना का घर है ।

बैरिस्टर गांधी तीन गरीब प्रवासी भारतीय भाइयों को पढ़ाते भी थे, जिनमें से एक हज्जाम, दूसरा छोटा दुकानदार और तीसरा कारकुन था । अंग्रेजी की पढ़ाई विद्यार्थियों की सुविधा के समय अलग-अलग उनके ठिकाने पर होती थी ।

मोहनदास करमचंद गांधी अपने प्रवासी देशवासियों को उनके न्यायोचित अधिकारों के विषय में तो सचेत करते ही थे, उनके रहन-सहन और व्यवहार-व्यापार में शुद्धता और शुचिता, सफाई व सचाई पर भी जोर देते थे। उनका कहना था कि विदेश में भारतीय अच्छी रीति-नीति बरतेंगे, तो देश का गौरव बढ़ेगा और इस के विपरीत यदि वह खोटा और गंदा जीवन बिताएंगे तो भारत का काला मुंह होगा । जिसे अपनी जिम्मेदारी का भान है, वही स्वाभिमान से जी सकता है ।

प्रिटोरिया में रहते हुए, बैरिस्टर गांधी ने वहां रहने वाले ब्रिटिश एजेंट से भी कई बार भेंट की थी और उसे प्रवासी भारतवासियों की ओर झुका लिया था । रेलवे कम्पनी के अधिकारियों से पत्र-व्यवहार करके, उन्होंने लिखित आश्वासन भी प्राप्त कर लिया था । यदि ढंग के कपड़े-लत्ते पहनकर साफ-सुथरे प्रवासी भारतीय उच्च श्रेणी के डिब्बों में यात्रा करना चाहेंगे, तो उन्हें टिकिट मिलेगा ।

तत्कालीन अपना कार्य पूरा करके, बैरिस्टर गांधी नाताल लौट गए । वहां उनका अपूर्व स्वागत सत्कार हुआ । बैरिस्टर गांधी ने स्वदेश लौटने के लिए जहाज का टिकिट खरीद लिया । अब्दुल्ला सेठ ने बड़े पैमाने पर विदाई समारोह किया । एक बड़ा होटल पूरे दिन के लिए सुरक्षित कर लिया गया । प्रीति-भोज और

आनन्द गोष्ठियों का दिन भर ठाठ रहा। संयोगवश बैरिस्टर गांधी की दृष्टि समाचारपत्र के किसी कोने में छपी एक सूचना की ओर गई, जिससे पता चला कि नाताल की विधानसभा में प्रवासी भारत-वासियों के मताधिकार को छीनने के लिए एक विधेयक पेश है। मोहनदास करमचंद गांधी चौंके। प्रवासी देशवासियों के भाग्य चौपट करनेवाले विचाराधीन विधेयक के बारे में उन्होंने गोष्ठी में चर्चा की। देशभाई अनभिज्ञ और अधिकांश में उदासीन थे। तो क्या उनका मताधिकार छीनने पर तुले हुए गोरों की यह दलील ठीक है कि जिन्हें अपने मताधिकार की चेतना ही नहीं है, उन्हें यह अधिकार दिए रखना ही निरर्थक है? लेकिन विधेयक पास हो जाने का परिणाम तो घातक होगा। मोहनदास करमचंद गांधी ने अपने देशभाइयों को परिस्थिति बताई और इस विधेयक के दूरगामी भंयकर परिणामों के प्रति सचेत किया। यह चेतावनी देकर, उन्होंने आग्रह किया कि प्रवासी देशवासियों को साहस और संगठन से इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। नतीजा यह निकला कि प्रवासी देशभाई पुकार करने लगे कि, "गांधीभाई, हमें छोड़कर स्वदेश मत जाओ।"

अपने परिवार के बीच शीघ्रातिशीघ्र जा पहुंचने को उत्कंठित मोहनदास करमचंद गांधी बड़े पसोपेश में पड़ गए। लोकसेवा और घर-गिरस्ती के प्रति कर्तव्य की भावना में संघर्ष हुआ। असहाय प्रवासी देशवासी "गांधीभाई, गांधीभाई" की रट लगाने लगे। "मनचीती कुछ और है, प्रभुचीती कुछ और", अन्तर्वाणी गूंज उठी। जहाज का टिकिट लौटा दिया गया, इस आशा से कि एक महीना बाद दूसरा खरीद लिया जाएगा। आनंद गोष्ठी ने कार्यकारिणी समिति का रूप ले लिया। भावी कार्यक्रम की रूपरेखा बनी। प्रीति-भोज में यही एक बात सबके मुंह से निकल रही थी: "शुक्र है खुदा का कि हमें गांधीभाई की रहनुमाई मिली।"

गांधीभाई को लोगों ने विश्वास दिलाया कि संगठन के लिए रुपये की कोई कमी नहीं है। आदमी भी बहुत मिल जाएंगे। आप रहेंगे तो बेड़ा पार हो जाएगा।"

प्रवासी देशभाइयों के रहनुमा गांधीभाई ने घातक विधेयक के विरुद्ध सबसे पहला काम तो यह किया कि विधानसभा के अध्यक्ष को तार भेजकर प्रार्थना की कि विधेयक पर विचार करना स्थगित किया जाए, जिससे मताधिकारप्राप्त प्रवासी भारतवासियों को अपनी बात कहने का न्यायोचित अवसर मिले। अध्यक्ष महोदय ने तुरंत उत्तर दिया कि विधेयक पर विचार करना दो दिन तक स्थगित किया जाता है। इससे प्रवासी भारतवासियों का हौसला बढ़ गया।

अब विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए आवेदन का मसविदा तैयार किया गया। इसकी चार प्रतिलिपियां रात-रात तैयार करनीं थीं। मिस्टर आर्थर नामक अंग्रेजीदां वृद्ध सज्जन ने, जो अपने सुलेख के लिए प्रसिद्ध थे, आवेदन को बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखा। चार प्रतिलिपियां अन्य योग्य व्यक्तियों ने बनाई। मताधिकारप्राप्त प्रवासी भारतवासियों के हस्ताक्षर कराने के लिए स्वयंसेवक व्यापारी अपनी या अपने पैसे से किराये पर ली हुई सवारियों पर रात भर भागदौड़ करते रहे। आवेदनपत्र यथास्थान भेज दिए गए। समाचारपत्रों ने उसे प्रकाशित किया। उसका समर्थन भी किया। विधानसभा पर आवेदन का अच्छा असर पड़ा। लेकिन विधेयक तो फिर भी पास हुआ। प्रवासी भारतीय निरुत्साहित न हुए। तय पाया कि ब्रिटेन के उपनिवेश सचिव लार्ड रिपन को नाताल में बसे हुए सब प्रवासी भारतवासियों की ओर से आवेदनपत्र भेजा जाए। गांधीभाई के नेतृत्व में सब देशभाई धर्म, वर्ग और भाषा के भेद को भुलाकर दो दिन में एक हो गए थे। मोहनदास करमचंद गांधी ने अपने प्रवासी देशवासियों में नए प्राण फूंक दिए थे। कार्यकर्ता काम में जुट गए थे।

धनी-मानी स्वयंसेवकों ने दिन-रात एक करके और अपने खर्चे पर, महीनों का काम सप्ताहों में पूरा कर दिखाया। आवेदनपत्र पर नाताल के दस हजार प्रवासी भारतवासियों के हस्ताक्षर हुए और उसकी एक हजार प्रतियां छपा ली गईं। ब्रिटेन के स्थानीय और भारत के समाचारपत्रों को भी आवेदनपत्र भेजा गया। 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने भी इसके समर्थन में अग्रलेख लिखा। लंदन के 'टाइम्स' ने भी दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों के पक्ष का समर्थन किया। विधेयक के रद्द किए जाने की आशा बंधी।

नाताल के प्रवासी देशभाई बड़ी आशा से गांधीभाई की ओर देखने लगे। नाताल में बस जाने के लिए, वह उनपर जोर डालने लगे। जीवनदान देकर हमें अधर में मत छोड़ जाइए, उनकी विनती थी। आप अब्दुल्ला सेठ के बैरिस्टर बनकर आए थे, अब हम सब देश-भाइयों के बैरिस्टर बनकर यहां रहिए, उनका आग्रह था। मोहनदास करमचंद गांधी ने कहा कि मैं सार्वजनिक सेवा का कोई मेहनताना नहीं ले सकता और न किसी मित्र पर अपना भार डाल सकता हूं। तय पाया कि बैरिस्टर गांधी बीस व्यापारियों के कानूनी सलाहकार बनकर, नाताल में अपने खर्चे पर स्वतंत्र घर और कार्यालय चलाएं। दादा अब्दुल्ला सेठ उन्हें शुक्राने में जो रकम देना चाहते थे, उससे घर और कार्यालय का साज-सामान खरीदा गया। गांधीभाई को नाताल में बसा लिया गया।

एडवोकेट की हैसियत से सुप्रीम कोर्ट में नाम दर्ज कराने के लिए, अब्दुल्ला सेठ के मित्र और एटार्नी-जनरल मिस्टर एस्कम ने बैरिस्टर गांधी की अर्जी सुप्रीम कोर्ट में पेश की। सच्चरित्रता और परिचय के प्रमाणपत्र दो यूरोपियन व्यापारियों ने प्रस्तुत किए। बम्बई हाई-कोर्ट की सनद भी भी दाखिल कर दी गई। नाताल के वकील संघ ने आपत्ति उठाई, लेकिन हाईकोर्ट ने बैरिस्टर गांधी के पक्ष में फैसला दिया। बैरिस्टर गांधी को रजिस्ट्रार ने न्यायाचार सम्बन्धी

शपथ दिलाई। इसके बाद न्यायमूर्ति प्रधान-न्यायाधीश ने बैरिस्टर गांधी को आदेश दिया कि विलायती पोशाक के साथ कोर्ट में पगड़ी न पहनें। अब्दुल्ला सेठ की सलाह के प्रतिकूल, बैरिस्टर गांधी ने न्याय-मूर्ति के आदेश को स्वीकार किया। न्यायाधीश के आदेश और जैसा देश वैसा भेस के सिद्धान्त के अनुसार बैरिस्टर गांधी ने पगड़ी के परित्याग में अधिक हानि न देखी। छोटी बातों पर झगड़ा उठाकर, संघर्ष में शक्ति का अपव्यय करने की अपेक्षा बुनियादी समस्याओं का हल करने में उसका उपयोग करना ही मोहनदास करम-चन्द गांधी को ठीक लगा।

नाताल के वकील संघ की आपत्ति, सुप्रीम कोर्ट के न्यायपूर्ण निर्णय और बैरिस्टर गांधी के भद्र व्यवहार को लेकर स्थानीय समाचारपत्रों में चर्चा हुई। वकील संघ के ईर्ष्या-द्वेष की निन्दा की गई और बैरिस्टर गांधी के पक्ष का समर्थन किया गया। इसका एक एक अच्छा परिणाम यह निकला कि बैरिस्टर गांधी का नाम और काम व्यापक रूप से प्रचारित हुआ। बैरिस्टर गांधी की वकालत चल निकली। लेकिन नाताल में बैरिस्टर बनने में मोहनदास करम-चंद गांधी का मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना नहीं, प्रवासी भारत-वासियों की सेवा कर सकना ही था। इस उद्देश्य से 22 मई, सन 1894 के दिन नाताल इण्डिन कांग्रेस की स्थापना की गई। मोहन-दास करमचन्द गांधी उसके मंत्री बने।

नाताल में जन्मे प्रवासी भारतीय युवकों के संगठन और हित-संवर्द्धन के लिए नाताल कांग्रेस के अंतर्गत इंण्डियन एजुकेशनल एसोसिएशन की भी स्थापना की गई। भारतीय संस्कृति, भाषा और परम्परा से कटे ईसाई भारतीय युवक, भारतीय भावना से अनुप्राणित होकर, संगठित होने लगे।

अनुभव के आधार पर मोहनदास करमचंद गांधी ने सार्व-जनिक संस्थाओं के हित के लिए ऐसे उपयोगी नियम बनाए कि

कार्यालय का खर्चा आरम्भ में बहुत कम रखा जाए; चन्दा वसूली के काम में ढील न की जाए; चंदा देने वाले मांगें या न मांगें, प्राप्त धनराशि की रसीद तुरन्त दी जाए; हिसाब पाई-पाई का और नित्य रखा जाए और पदाधिकारी को अपने हाथ में अधिक धनराशि कभी नहीं रखनी चाहिए। मोहनदास ने अपने प्रवासी देशवासियों को सार्वजनिक सेवा का तरीका सिखाया। गत बैठक का विवरण लिखना, आगामी बैठक में उसे पढ़कर सुनाना और उस पर सभा या समिति की सही लेना, इस उपयोगी और आवश्यक रीति-नीति का नियमित रूप से पालन करना अनिवार्य और सहज बन गया।

किन्तु आरम्भ में नाताल इंडियन कांग्रेस की सदस्यता खाते-पीते प्रवासी भारतवासियों तक ही सीमित थी। मोहनदास करमचंद गांधी को संस्था की यह कमी बहुत खलती थी। वह चाहते थे कि संस्था में गरीब और अशिक्षित गिरमिटिया मजदूर भी आएं। पर उनके साथ बैरिस्टर गांधी का विशेष सम्पर्क अभी न था। एक दिन संयोगवश बालासुन्दरम् नाम का घायल और प्रताड़ित गिरमिटिया मजदूर उनके द्वार पर आया। मोहनदास करमचंद गांधी को ऐसा लगा, जैसे भगवान ने कांग्रेस की कमी को पूरी करने के लिए ही उस दीन-हीन भारतीय श्रमिक को उनके पास भेजा था।

बालासुन्दरम् के मुंह से खून निकल रहा था। पता चला कि गोरे मालिक की मार से इस गिरमिटिया मजदूर के आगे के दो दांत टूट गए थे। उसके तन पर मैले चिथड़े थे। अस्त-व्यस्त पगड़ी उसके हाथ में थी। रोता-कांपता हुआ वह अपनी दुख कथा सुना रहा था। तमिलभाषी अपने एक कारकुन से उसकी बात जानकर, बैरिस्टर गांधी ने घायल बालासुन्दरम् को डाक्टर के पास भेजा। डाक्टरी परीक्षा कराने के बाद, गरीब की मरहम-पट्टी कराई गई और डाक्टरी सर्टिफिकेट ले लिया गया। सर्टिफिकेट लेकर बैरिस्टर गांधी बाला-सुन्दरम् के साथ मजिस्ट्रेट के पास गए और बयान दर्ज कराया।

मजिस्ट्रेट ने गोरे मालिक के नाम समन जारी कर दिए। बालासुन्दरम् का आततायी गोरा मालिक डर्बन का एक जाना-माना व्यक्ति था।

बालासुन्दरम् के मुंह से खून निकल रहा था। उसके तन पर मैले चिथड़े थे। अस्त-व्यस्त पगड़ी उसके हाथ में थी। रोता-कांपता हुआ वह अपनी दुखकथा सुना रहा था।

उस पर मुकदमा चलाने का इरादा न था। उद्देश्य था कि उसके चंगुल से छुड़ाकर, वालासुन्दरम् को अन्यत्र काम दिलाया जा सके।

करार या एग्रीमेंट पर आए हुए मजदूर पांच साल तक अपने मालिक को छोड़कर, अन्यत्र नहीं जा सकते थे। काम छोड़ने को दण्डनीय अपराध माना जाता था। हां, अगर मालिक रजामंदी से उसे अन्यत्र जाने दे, तो दूसरी वात थी, क्योंकि गिरमिटिया मजदूर खरीदे हुए गुलाम की तरह माना जाता था। ऐसी स्थिति में वाला-सुन्दरम् का स्थानान्तरण गोरे मालिक की रजामंदी से ही सम्भव था। फौजदारी के मुकदमे के डर से गोरा मालिक उसे छोड़ देने के लिए तैयार हो गया। लेकिन नए मालिक का भी गोरा होना अनिवार्य था। किसी नए गोरे मालिक को खोज निकालना टेढ़ी खीर थी। लेकिन वैरिस्टर गांधी के प्रयत्न से यह कठिन कार्य भी वन गया। वालासुन्दरम् का उनके द्वार पर आना, मोहनदास करमचन्द गांधी के लिए गरीव मजदूर समुदाय के हृदयद्वार खुल जाने के समान सिद्ध हुआ।

गिरमिटिया भारतीय मजदूरों ने अपनी मेहनत से नाताल प्रान्त को लहलहाता वाग वना दिया था। पांचसाला करार से मुक्त होकर, उनमें से वहुत-से मजदूर अच्छे किसान और वागवान वन गए थे। भारतीय व्यापारी दिनों-दिन सफल होते जा रहे थे। गोरे लोग ईर्ष्या से जल-भुन गए। उन्होंने प्रवासी भारतीयों के नाताल में वसने पर रोक लगाने के लिये पचीस पौण्ड प्रतिवर्ष के हिसाव से कमरतोड़ टैक्स लगाने की ठानी। टैक्स लगाना अनुचित था, लेकिन तत्कालीन अंग्रेजी भारत सरकार ने पचीस की जगह तीन पौण्ड टैक्स की व्यवस्था को मंजूरी दे दी। यह नासमझी और असावधानी की वात थी।

पांच व्यक्तियों के परिवार को पंद्रह पौण्ड का सालाना टैक्स भरना पड़े, तो गिरमिटिया परिवार की कमर ही टूट जाएगी।

मोहनदास करमचन्द गांधी ने अनुभव किया कि ईर्ष्या-द्वेष और रंग-भेद की दुर्भावना से प्रेरित होकर, गोरे लोग प्रवासी भारतीय समाज को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुल गए थे। नाताल इंडियन कांग्रेस को गरीब गिरमिटिया मजदूरों के हितों की संरक्षिका वनाना मोहनदास करमचन्द गांधी का ही काम था। कांग्रेस के नेतृत्व म प्रवासी भारतीय समाज को बीस वर्षों तक भीषण संघर्ष करना पड़ा, तव कहीं वह अन्यायपूर्ण टैक्स समाप्त हुआ। इस कार्य को पूरा कराने के लिए ही अहिंसात्मक सत्याग्रह के अस्त्र का आविष्कार हुआ था। सत्याग्रह में भाग लेने वाले भारतीय लोगों ने दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार के जेलखानों को भर दिया। वहुत-से उनकी गोली के शिकार हो गए। उनका सत्याग्रह आन्दोलन ही भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में हमारा मार्गदर्शक वना। उनके नेता वैरिस्टर गांधी ही भविष्य में भारत के सर्वमान्य नेता महात्मा गांधी कहलाए। उन्हें वालासुन्दरम् ने ही भारतीय दरिद्रनारायण के हृदय मंदिर के द्वार पर पहुंचाया था।

o

सेवा धर्म

दरिद्रनारायण की सेवा मोहनदास गांधी ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। स्वदेश से दूर पद दलित और दीन-हीन प्रवासी भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की सेवा का अवसर पाकर वह कितने प्रसन्न थे।

गांधी ने आत्मकथा में लिखा है:

"मैंने सेवा धर्म अपना लिया था, क्योंकि मेरी समझ में ईश्वर-साक्षात्कार का यही एक उपाय था। मेरी दृष्टि में लोकसेवा भारत माता की सेवा थी। इसका अवसर मेरे जीवन में अनायास उपस्थित हो गया, शायद इसलिए कि मेरा स्वाभाविक विकास इसी दिशा में संभव था। दक्षिण अफ्रीका आने की मेरी इच्छा देशाटन करने, काठियावाड़ के वैमनस्यपूर्ण वातावरण से बचने और जीविकोपार्जन के उद्देश्य से ही पैदा हुई थी। लेकिन यहां आकर, भगवद्दर्शन और साक्षात्कार की लगन लगी।" कहना न होगा कि इस लगन ने ही मोहनदास करमचंद गांधी को सर्वात्मना लोकसेवा में लगा दिया।

'मोहि कहां विस्राम?' सेवा धर्म अपनाने वाले साधक का यह सिद्धान्त-वाक्य होता है। किन्तु सेवा में साधक को एक अपूर्व आनन्द मिलता है। मन में आनन्द का अनुभव किए बिना, सेवा धर्म निरर्थक हो जाता है। आत्मकथा में कहा गया है, "दिखावे या लोक-लाज से धर्म को अपनाने से साधक की प्रगति रुक जाती है और उसका मन भर जाता है। सेवा में आनन्द का अनुभव न हुआ, तो सेवक और सेव्य में से किसी का कुछ भला नहीं होता। लेकिन मन से सेवा की जाए, तो सेवक को ऐसा आनन्द आता है कि अन्य सब प्रकार की सम्पदा और सुख-भोग फीके पड़ जाते हैं।

स्वयं को सेवा धर्म के अधिकाधिक उपयुक्त बनाए रखने के लिए मोहनदास करमचंद गांधी स्वास्थ्य और आरोग्य के प्रति भी पूरा ध्यान देने को कहते थे। रहन-सहन में शुचिता और उपयुक्त शाकाहार, परिश्रम और स्वच्छ वायु का सेवन, स्वाध्याय और आत्म-चिन्तन और संयम और सदाचार से उनका जीवन नियमित था। सर्व-धर्म-समन्वय की प्रवत्ति, शाकाहार के सिद्धान्त के प्रचार की इच्छा और घट-घट में भगवान हैं, यह दृष्टि उनके सेवक स्वरूप की विशिष्टताएं थीं। किसी को अचरज न होना चाहिए, यदि लोग उन्हें आदर्शवादी कहते। वह आदर्शवादी ही नहीं, आग्रही भी थे। इसीलिए कभी-कभी विचित्र परिस्थितियों का निर्माण हो जाता था।

शाकाहार पर उनके विचारों से प्रभावित होकर, एक बार किसी गोरे मित्र परिवार का बालक मांसाहार से विमुख हो गया। उसकी मां ने इसको इतना बुरा माना कि मोहनदास करमचंद गांधी से उसने कहा कि आपके विचारों के प्रभाव में लड़का बड़ा हुआ, तो वह हृष्ट-पुष्ट न हो सकेगा। दूसरों का जी न दुखाने वाले मोहनदास करमचंद गांधी को उस मित्र परिवार से विदा लेनी पड़ी।

घट-घट में ईश्वर की ज्योति है, अपने इस सिद्धांत को अपनाकर, मोहनदास करमचंद मन-ही-मन बिगड़े हुए लोगों को सुधारने का बीड़ा उठा लेते थे। बचपन में शेख मुख्तार के साथ इसीलिए दोस्ती की थी और खता खाई। और फिर नाताल में विषम परिस्थिति में पड़े।

बैरिस्टर के अनुरूप घर और कार्यालय चलाते हुए अत्यन्त कार्य-व्यस्त बैरिस्टर गांधी ने एक ऐसे व्यक्ति को अपना विशेष कृपापात्र बना लिया, जिसे लोग बुरा आदमी कहते थे। ज्यों-ज्यों लोग उसकी अधिक बुराई करते, उसके हृदय-परिवर्तन की आशा में, बैरिस्टर गांधी उसकी हिमायत करते। धीरे-धीरे उसका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि उसने गांधी जी के एक निर्दोष स्वाभिमानी कर्मचारी को घर से निकल जाने के लिए बाध्य कर दिया। रसोइया भी

नौकरी छोड़कर चला गया। संयोगवश नया रसोइया ऐसा आया कि कृपापात्र मित्र का एक दिन अकस्मात भंडाफोड़ हो गया। एक दिन नया रसोइया भागा-भागा गया और कार्यव्यस्त बैरिस्टर गांधी को आग्रहपूर्वक घर बुला लाया। मालूम हुआ कि घर-मालिक की अनुपस्थिति में उनका आश्रित कृपापात्र बेखटके वेश्या-संग करता था। यह मित्र बालबन्धु शेख मुख्तार से भी अधिक उद्दण्ड और भयंकर निकला। घर से निकलने को कहे जाने पर, उलटा चोर कोतवाल को डांटने लगा। पुलिस बुलाने की धमकी दी गई, तब कहीं उसने घर से निकलने का नाम लिया। उन दिनों का हाल लिखते हुए, मोहनदास करमचंद गांधी ने 'आत्मकथा' में कहा है कि, " लोग मुझे बातों में आ जानेवाला, यानी सहजविश्वासी, लेकिन सीधा आदमी समझते थे।"

सचाई और भलमनसाहत से विरोधी का हृदय भी बदला जा सकता है, मोहनदास करमचंद गांधी का यह दृढ़ विश्वास था। प्रवासी भारतीय समाज के प्रति दक्षिण अफ्रीका के गोरे शासकों का मन बदलने के लिए उन्होंने गोरे विधायकों और नागरिकों के नाम दो खुले पत्र लिखे थे। पत्रों में प्रवासी भारतवासियों की जन्मभूमि का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पर्यवेक्षण कराते हुए, उनकी वर्तमान स्थिति का यथातथ्य वर्णन किया गया था और गोरे ईसाई शासकों से अनुरोध किया गया था कि वे अपने प्रवासी भारतवासी मानव-बन्धुओं के साथ ईसा के सन्देश और ब्रिटेन की संवैधानिक, लोकतांत्रिक और मानवतावादी परम्परा के अनुरूप व्यवहार करें।

लोकसेवा, राजनीतिक संगठन और प्रचार कार्य में व्यस्त रहते हुए भी, मोहनदास करमचंद गांधी लंदन के साप्ताहिक पत्र 'शाकाहारी' के लिए लेख लिखकर भेजा करते थे। फलों और सब्जियों की बहुतायत वाला नाताल प्रदेश उन्हें शाकाहारियों के लिए बहुत अनुकूल

को त्याग कर उद्यम, उपयोगिता और एक ईश्वर की भक्ति का जीवन ग्रहण किया है।

"बहनों के मठ में अस्तरी करने, सिलाई-बुनाई और तिनकों की टोपियां बनाने का विभाग है। यहां अफ्रीकी बालिकाएं स्वच्छ वस्त्र पहने परिश्रम के साथ काम करती हैं।

"लगभग दो मील पर छपाई का विभाग और झरने से चलने वाली पनचक्की है। इमारत बहुत बड़ी है। वहां तेल निकालने की भी एक मशीन है, जिससे मूंगफली का तेल निकाला जाता है। कहना न होगा कि इन सब कारखानों से यहां रहने वालों की सब आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं। आश्रमवासी अनेक प्रकार के मौसमी फल पैदा करते है और लगभग आत्मनिर्भर है।

"पनचक्की की ओर जाने के लिए एक बहुत ही सुन्दर पगडण्डी है। एक ओर भव्य उपत्यका है, जिसमें मधुरतम गीत गाता हुआ एक झरना है और दूसरी ओर चट्टानों पर ईसा के बलिदानों सम्बन्धी अनेक दृश्य उत्कीर्ण हैं। पूरी उपत्यका में हरियाली कालीन की तरह फैली है, जिसमें जहां-तहां सुन्दर बूटे नगीनों की तरह सुशोभित है। इससे अधिक मनोहर सैरगाह या दृश्यावली की कल्पना करना भी असम्भव है।

"इंग्लैंड में बने श्रीमती एना किंग्जफर्डक की पुस्तकें उत्तम आहार पद्धति (पर्फेक्ट वे इन डाइट) में पढ़ा था कि दक्षिण अफ्रीका में ट्रैपिस्ट सम्प्रदाय की बस्ती हैं। वे अन्नाहारी हैं। तब से ही मैं इन अन्नाहारियों से मिलने को इच्छुक था। आखिर वह इच्छा पूरी हो गई है। दक्षिण अफ्रीका में ऐसे आश्रमों की संख्या लगभग बारह के है। अधिकतर नाताल में हैं।"

तपोवनों की सभ्यता का धनी प्राचीन भारत देश मोहनदास करमचंद गांधी के मन में निश्चय ही घूम गया होगा। किन्तु वर्तमान में तो उसकी दीन-हीन प्रवासी संतान पददलित और पराधीन थी।

उसको ऊपर उठाना ही मोहनदास गांधी के जीवन का हेतु वन गया था। वह यह भी जानते थे कि रामराज्य का दर्शन पहले मन की अयोध्या में करना होता है। भीतर रामराज्य की स्थापना हुई कि वाहर उसकी संभावना में सशय नहीं रहता। टाल्सटाय की पुस्तक 'किंगडम आफ गाड इज़ विदिन यू' (रामराज्य तुम्हारे मन की अयोध्या में है) ने मोहनदास गांधी को अत्यधिक प्रभावित किया था।

मातृभूमि और प्रवासभूमि के भारतीयों के वीच भावनात्मक एकता का सेतु वनाना भी गांधी के कार्य का एक अंग वन गया था। नाताल इंडियन कांग्रेस नाम इसीलिए चुना गया था कि भारत की सर्वाधिक जीवंत, प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि राजनीतिक संस्था, इंडियन नेशनल कांग्रेस की भाव-छाया में नाताल के प्रवासी भारतीय भाइयों को भी राजनीतिक दृष्टि से विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त हो और दोनों संगठनों में आत्मीयता वनी रहे।

प्रवासी भारतीय भाइयों को अपेक्षित लाभ हुआ। किन्तु उनके विरोधी गोरे लोग नाताल में प्रवासी भारतीय कांग्रेस के वनने से वेचैन हो गए। वह आए दिन नाताल में भारतीय कांग्रेस और उसके निर्माता वैरिस्टर गांधी पर झूठे आक्षेप लगाने लगे। सवसे पहला आक्रमण गोरे लोगों के समाचारपत्रों के माध्यम से हुआ।

कांग्रेस पर आरोप लगाया गया कि मार-पीट के एक मामले में एक भारतीय को डरा-धमका कर गवाही देने से रोका गया। यह भी कहा गया कि नाताल सरकार से लोहा लेने के लिए कांग्रेस गांधी के नेतृत्व में षडयंत्र रच रही है। भारतीय मजदूरों को अपने कष्ट-निवारण के लिए आन्दोलन करने को उभारा जा रहा है। आक्षेप करने वाला पत्र था 'नाताल विटनेस'। 'नाताल' 'एडवर्टाइजर' ने भी आक्षेपों को प्रचारित किया। कांग्रेस के मंत्री की हैसियत से मोहनदास करमचंद गांधी ने संपादक के नाम पत्र लिखा :

महोदय,

अपने शनिवार के अंक में आपने भारतीय कांग्रेस या अधिक ठीक कहें तो नाताल भारतीय कांग्रेस पर जो आक्षेप किए हैं, वे असामयिक हैं। कारण, जिस मामले में कांग्रेस का नाम लिया गया है, उसका फैसला अभी नहीं हुआ है।

इस वीच, आपके आक्षेपों से लोगों के मन पर जो गलत छाप पड़ सकती है, उसे मिटाने के लिए मैं कांग्रेस के ध्येय स्पष्ट कर दूं। कांग्रेस के ध्येय हैं: (एक) उपनिवेश में रहने वाले भारतीय और यूरोपीय लोगों के बीच एक-दूसरे को समझने की मनोवृत्ति पैदा करना और परस्पर मैत्री भाव बढ़ाना; (दो) समाचारपत्रों के माध्यम से, पुस्तिकाओं के प्रकाशन और व्याख्यानों के द्वारा भारत और भारतीयों के वारे में जानकारी देना; (तीन) भारतीयों को और विशेषकर उन्हें, जिनका जन्म उपनिवेश में हुआ है, भारतीय इतिहास और अन्य भारत सम्वन्धी विषयों के अध्ययन की प्रेरणा देना; (चार) भारतीय लोगों के दुख-दर्द की जांच-पड़ताल करना, उन्हें दूर करने के लिए हर वैध उपाय से आंदोलन करना; (पांच) गिरमिटिया मजदूरों की अवस्था की जांच करना और उनकी विशेष कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए उनकी मदद करना; (छह) गरीव और जरूरतमंद लोगों की सब उचित तरीकों से मदद करना; और (सात) आमतौर पर वे सब प्रयत्न करना, जिनसे भारतीयों की नैतिक, सामाजिक, वौद्धिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार हो।

कांग्रेस का विधान स्वतः कांग्रेस को व्यक्तिगत शिकायतों में हस्तक्षेप करने से रोकता है जब तक कि उनका महत्व सार्वजनिक न हो।

यह कहना कि 'भारतीय कांग्रेस के अस्तित्व का पता चला, सो केवल एक आकस्मिक संयोग ही था' ज्ञात तथ्यों के अनुकूल नहीं है। जबकि कांग्रेस संगठित हो रही थी 'नाताल विटनेस' ने उस हकीकत की घोषणा कर दी थी, और अगर मैं गलती नहीं कर रहा हूं तो कांग्रेस

स्थापना संबंधी अंश की नकल आपने भी छापी थी। कांग्रेस को गुप्त रखने के कोई प्रयत्न नहीं किए गए। बल्कि, उसके संगठनकर्त्ताओं ने उन यूरोपीयों को भी, जिन्हें कांग्रेस के प्रति सहानुभूतिशील समझा जाता था, उसमें शामिल होने या उसकी पाक्षिक बैठकों में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया था।

एम० के० गांधी
अवैतनिक मंत्री, नाताल भारतीय कांग्रेस

'एच' नाम से किसी गोरे सज्जन ने 'नाताल मर्करी' पत्र में छपाया कि कांग्रेस की स्थापना में एक सरकारी कर्मचारी का भी हाथ है, जो मजिस्ट्रेट की अदालत में दुभाषिए का काम करता है। उसी पत्र में बैरिस्टर गांधी पर भी आक्षेप था कि कांग्रेस के बहाने वह रुपया ऐंठते और व्यापारियों से आर्थिक सहायता लेते हैं। मोहनदास करमचंद गांधी ने सम्पादक के नाम पत्र लिखा :

"आपके शनिवार के अंक में प्रकाशित 'एच' का पत्र यदि केवल मुझ से सम्बन्ध रखता, तो मैंने उसकी कोई परवाह न की होती। पर उस पत्र में सरकारी कर्मचारियों पर भी आक्षेप किए गए हैं। इसलिए मैं आपको पत्र लिखने की धृष्टता कर रहा हूं। मैं कांग्रेस का वेतनभोगी मंत्री नहीं हूं। अन्य सदस्यों के साथ-साथ मैं भी अपनी तरफ से थोड़ी-बहुत भेंट कांग्रेस की झोली में अर्पित करता हूं। कांग्रेस की ओर से मुझे कोई कुछ नहीं देता। कांग्रेस के पास छिपाने को कुछ नहीं है। यह ठीक है कि कांग्रेस न अपना ढिंढोरा पीटती है, न अपना गुणगान करती-फिरती है। कांग्रेस के बारे में जो भी पूछताछ की जाए, चाहे वह व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, उसका उत्तर यथासंभव तत्परता से दिया जाएगा।"

कांग्रेस-विरोधी प्रचार जारी रहा। कानाफूसी, अफवाहबाजी और अखबारनवीसी के माध्यम से गोरे लोग कांग्रेस और उसके मंत्री के

विरुद्ध दुष्ट प्रचार करते रहे। कांग्रेस मंत्री मोहनदास करमचंद गांधी ने असत्य का सत्य से, अशिष्टता का शिष्टता से और अमर्यादित शैली का संयत स्पष्टोक्ति से उत्तर दिया।

लंदन में उपनिवेश मंत्री को आवेदन में नाताल भारतीय कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट की गई और सुझाया गया कि जो चाहें जब औपनिवेशिक शासन की ओर से कांग्रेस के बारे में जांच कराई जा सकती है। सांच को आंच कहां?

मताधिकार विषयक इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप नाताल सरकार ने अपना पैंतरा बदला। मताधिकार छीनने का आधार रंग-भेद को बदल कर, यह कर दिया गया कि जिस प्रवासी को अपने मूल देश में मताधिकार प्राप्त रहा है, उसे ही नाताल में मताधिकार प्राप्त होगा।

नाताल भारतीय कांग्रेस ने इसका भी विरोध किया। कहा गया कि जिस देश की समृद्धि में प्रवासी संलग्न रहे हैं और हैं, उसी देश के संदर्भ में प्रश्न पर विचार करना युक्तियुक्त है। दादाभाई नौरोजी का उदाहरण प्रस्तुत किया गया कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के अंग्रेज़ नेता इंग्लैंड में रहते हुए, इंगलैंड की पार्लियामेंट में सदस्य की हैसियत से निर्वाचित हुए हैं। इसलिए इंग्लैंड और उसके साम्राज्य के अन्तर्गत नाताल उपनिवेश में एक जैसा ही नियम स्वीकार किया जाना चाहिए।

नाताल भारतीय कांग्रेस का बिरवा जम गया था। मोहनदास करमचंद गांधी ने मातृभूमि के भारतवासियों को स्थिति से अवगत कराने का उचित अवसर जानकर, छह मास की छुट्टी पर भारत जाने की इच्छा व्यक्त की। उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए, प्रवासी भारतीय सहयोगियों ने शुभकामनाएं प्रकट कीं और विनयपूर्वक यथाशीघ्र वापस आने को कहा। प्रवासी भारतीय सहयोगी प्रसन्न थे कि गांधी भाई वापसी में अपने स्त्री-बच्चों को भी नाताल ला रहे हैं।

छुट्टी और वापसी

सन अठारह सौ छियानवे के मई मास में, 'पोंगोला' जहाज पर सवार होकर, मोहनदास करमचंद गांधी नाताल से भारत की ओर रवाना हुए। जहाज कलकत्ता जा रहा था। पहुंचने में चौबीस दिन लगे, जो दृश्य-दर्शन, उर्दू और तमिल, एक अंग्रेज सहयात्री के साथ शतरंज खेलने और जहाज के कप्तान के साथ धर्म-चर्चा में बीते। कप्तान से इस बार भी मित्रता हो गई। यात्रा बहुत अच्छी रही। 'आत्मकथा' में मोहनदास करमचंद गांधी लिखते हैं कि चौबीस दिनों की यह आनंददायिनी यात्रा समाप्त हुई और मैं, हुगली के सौंदर्य को निहारता हुआ, कलकत्ता उतरा। उसी दिन मैंने बम्बई का टिकट कटाया।

गाड़ी प्रयाग होती हुई जाती थी, जहां वह पौना घंटा रुकती थी। अवकाश का लाभ उठाकर, मोहनदास करमचंद गांधी ने नगर भ्रमण का विचार किया। कोई दवा बनवानी थी। सो किसी केमिस्ट की दुकान पर रुके। दवा बनाने में भले आदमी ने इतनी देर कर दी कि स्टेशन लौटते-लौटते गाड़ी छूट गई। मोहनदास करमचंद गांधी को होटल में एक दिन रुकना पड़ा। समय का सदुपयोग करने के लिए प्रयाग के तत्कालीन प्रभावशाली पत्र 'पाइनियर' के सम्पादक से मिलने की सोची। पत्र लिखा। सम्पादक से भेंट करने का अवसर मिल गया।

'पाइनियर' पत्र का सम्पादक अंग्रेज हुआ करता था। उसके संपादकीय विभाग में प्रसिद्ध साम्राज्यवादी अंग्रेज साहित्यिक किप्लिंग भी काम कर चुका था। वह पत्र अंग्रेजी प्रभुसत्ता का समर्थक था। साम्राज्य के नाताल उपनिवेश से आए हुए बैरिस्टर गांधी और पत्र-

सम्पादक मिस्टर चैसनी की बातचीत अच्छी रही। सम्पादक ने बैरिस्टर गांधी का कथन ध्यान से सुना और वादा किया कि नाताल सम्बन्धी उनके लेखों पर ध्यान दिया जाएगा, हालांकि उनकी सब बातों का समर्थन संभव नहीं है। ध्यान शासक जाति के दृष्टिकोण का भी रखना होगा। मोहनदास करमचंद गांधी ने कहा—"मैं आपसे पक्ष-समर्थन नहीं, केवल सामान्य न्याय दृष्टि की आशा करता हूं।"

शेष दिन नगर भ्रमण और त्रिवेणी संगम के दर्शन में बिता कर, मोहनदास करमचंद गांधी अपने भावी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने में लग गए। उस समय उन्हें क्या पता था कि प्रयाग में 'पाइनियर' के संपादक से इस अप्रत्याशित भेंट का भविष्य में क्या परिणाम निकलेगा?

राजकोट पहुंचते ही, मोहनदास करमचंद गांधी ने एक महीने के घोर परिश्रम से दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के विषय में एक पुस्तिका तैयार की, जिसका आवरण पृष्ठ हरे रंग का था। वही 'हरी किताब' के नाम से प्रसिद्ध हुई। लेखन में कटुता और अतिशयोक्ति का लवलेश न था। प्रवासी भारतवासियों के कष्टों को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं, कुछ कम करके ही बताया गया था। प्रयाग के प्रभावशाली साम्राज्यवादी पत्र के संपादक ने सम्पादकीय लिखकर, सर्वप्रथम 'हरी किताब' की चर्चा की। पुस्तिका का सारांश 'रायटर' के संवाददाता द्वारा तार से लंदन भेजा गया और सारांश का सारांश लंदन से नाताल पहुंचा। जो संवाद पहुंचा, वह शब्द, शैली और संदर्भ में मूल से बहुत भिन्न हो गया था। नाताल के गोरे बैरिस्टर गांधी की गतिविधि के समाचार से जल-भुन गए। उन्हें सबसे अधिक यह बात खली कि 'पाइनियर' जैसा साम्राज्यवादी पत्र गांधी की बातों में आ गया।

'हरी पुस्तिका' की दस हजार प्रतियां छपाई गई थीं। व्यापक रूप से इसका वितरण हुआ और दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भार-

तीर्थों के विषय में इसके प्रचार से लोगों को बहुत जानकारी मिली। वितरण की पूरी व्यवस्था मोहल्ले और परिवार के बालक स्वंयसेवकों की सहायता से की गई थी। इस प्रकार मोहनदास करमचंद गांधी ने भारत में अपनी भावी कार्य-पद्धति की संक्षिप्त-सी पूर्व-सूचना भी दे दी थी।

उन्हीं दिनों बम्बई में प्लेग की महामारी फैल गई। पूरे पश्चिम भारत में आतंक छा गया। राजकोट में भी खलबली मच गई। वहां एक सार्वजनिक समिति बनाई गई। मोहनदास करमचंद गांधी का नाम सदस्य सूची में था। वह सार्वजनिक सेवा कार्य में जुट गए। राजकोट नगर की आरोग्य रक्षा के लिए उन्होंने घर-घर और घर-बाहर की सफाई का कार्यक्रम अपनाया। इस समय के अपने अनुभवों के बारे में उन्होंने 'आत्मकथा' में लिखा कि मालदार और ऊंची जाति के लोगों की अपेक्षा इन्हें गरीब और हीन जातियों के लोगों से अधिक सहयोग और समर्थन मिला। अचरज की बात यह भी दिखाई दी कि बड़े लोगों के घरों की अपेक्षा छोटे लोगों के झोंपड़ों में ज्यादा सफाई थी। भारतीय समाज के अपने रूपान्तर-कार्य में, मोहनदास करमचंद गांधी को भविष्य में भी बड़े लोगों से कम सहयोग और अधिक प्रतिरोध का अनुभव होना था।

इस अवसर पर मोहनदास करमचंद गांधी राजकोट की भंगी बस्ती में गए, जहां अन्य कोई गण्यमान्य व्यक्ति न गया था। अजरच से देखा कि बस्ती स्वच्छ थी। वह उस वैष्णव मंदिर में भी गए, जहां माता पुतलीबाई देव-दर्शन के लिए नित्य नियम से जाती थीं और जहां गए बिना वह अन्न ग्रहण न करती थीं। पुजारी ने उनका स्वागत किया। मंदिर के अहाते का कोना-कोना उन्होंने देखा और देखकर दुख हुआ कि एक कोने में वर्षों की जूठी पत्तलों के ढेर से देवभूमि के आंचल में ही कूड़ाघर बन गया था। मोहनदास करमचंद गांधी को दुख होता था कि जिस देश में पूर्वजों ने भीतर-बाहर की शुचिता-स्वच्छता को

जीवन का अनिवार्य अंग बनाया था, वहीं के लोग इस विषय में क्योंकर इतने असावधान और उदासीन बन गए हैं ।

आधुनिक ढंग की सार्वजनिक सफाई के कामों में मोहनदास करमचंद गांधी अंग्रेजी सरकार के प्रयत्नों में पूर्ण सहयोग देने को उत्सुक रहते थे । इस विषय में लोकमान्य तिलक सरकार से सहयोग न करते थे। मोहनदास करमचंद गांधी उन दिनों ब्रिटिश शासन के प्रति पूर्ण सद्भावना रखते थे । उन्हें विश्वास था कि दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों की समस्या केवल सामयिक और स्थानीय है । सब मिलाकर, वह ब्रिटिश साम्राज्य को अकल्याणकारी नहीं मानते थे। उनका ख्याल था कि ब्रिटिश साम्राज्य या कामनवेल्थ के अन्तर्गत स्वायत शासन प्राप्त भारत अभ्युदय को प्राप्त हो सकता है।

वह महारानी विक्टोरिया के सम्राज्ञी पद की रजत जयंती और सम्राट एडवर्ड छठवें की राजगद्दी उत्सव में सम्मिलित हुए थे । तब तक गांधी की दृष्टि में भारत की समस्या का हल पारस्परिक सम्बन्धों को सुधारने और परस्पर समझदारी और सद्भावना बढ़ाने से संभव था । नरम दल के नेताओं में और उनमें तब तक बस यह अन्तर था कि मोहनदास उनकी भांति आरामकुर्सी और भाषणों तक ही अपने राजनीतिक कार्यों को सीमित न रखते थे। सार्वजनिक सेवा उनकी राजनीति का मुख्य अंग थी । इतना ही नहीं, वह जनसेवा और देवाराधन में कोई व्यवधान न देखते थे । उनकी ईश्वरभक्ति जनता जनार्दन की सेवा थी ।

दक्षिण अफ्रीका के भारतवासियों के विषय में देशवासियों को भली-भांति बताने के लिए, वह देश के सब नेताओं की सहानुभूति प्राप्त करना चाहते थे । इसी उद्देश्य से उन्होंने बम्बई की यात्रा की । वहां पहले वह न्यायमूर्ति रानडे और जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी से मिले । उन्हें मोहनदास की बातें न्यायसंगत लगीं । उन्होंने सलाह दी

कि गांधी बम्बई के बेताज के बादशाह सर फीरोजशाह मेहता से भेंट करें। सर फीरोजशाह मेहता से मिलने के बाद उन्हें ऐसा लगा जैसे पिता ने पुत्र का हौसला बढ़ाया। फीरोजशाह मेहता ने वादा किया कि प्रवासी भारतीय समस्या पर बम्बई में वह एक सार्वजनिक सभा अवश्य करेंगे।

मोहनदास करमचंद गांधी इस आश्वासन से प्रसन्न थे। वह राजकोट लौट गए। अपने साथ अपने बीमार बहनोई को भी ले गए कि उनकी तीमारदारी कर सकें। अपने बहनोई की सेवा-सुश्रूषा में मोहनदास करमचंद गांधी ने रात-दिन एक कर दिया। किन्तु वह उनको बचा न सके। सब परिवार शोक में डूबा हुआ था कि बम्बई की सार्वजनिक सभा की सूचना मिली। शोक और श्रम से टूटे हुए मोहनदास करमचंद गांधी बम्बई पहुंचे। फीरोजशाह मेहता ने सुझाया कि भाषण लिखित होना चाहिए। रात-भर जागकर, मोहनदास करमचंद गांधी ने अपना वक्तव्य लिखा। किन्तु विशाल सभा में वह अपना भाषण पढ़ न सके। दिनशा वाच्छा ने भाषण पढ़ा और सभा में वक्तव्य की बहुत सराहना हुई। समाचारपत्रों ने वक्तव्य का विस्तृत प्रचार किया।

बम्बई से मोहनदास करमचंद गांधी लोकमान्य तिलक के पास पूना गए। लोकमान्य से उन्हें समर्थन और प्रोत्साहन मिला। लोकमान्य ने सलाह दी कि भांडारकर जी से सभा की अध्यक्षता करने की प्रार्थना करें। मोहनदास करमचंद गांधी इस सम्बन्ध में गोखले जी से मिलने के लिए उत्सुक थे। लोकमान्य ने उनका अनुमोदन किया। गोखले जी का सौजन्य अनुपम और स्नेह असीम था। उन्होंने भी सभा के अध्यक्ष के रूप में भांडारकर जी के नाम का समर्थन किया। पूना की सभा बहुत जोरदार हुई। फीरोजशाह मेहता, तिलक और गोखले के सम्बन्ध में मोहनदास करमचंद गांधी ने 'आत्मकथा' में लिखा है—"फीरोजशाह हिमालय के समान महान पर दुर्लंघ्य,

तिलक सागर से अथाह पर दुस्तर प्रतीत हुए लेकिन गोखले तो गंगा माता जैसे आत्मीय लगे ।"

पूना के वाद मोहनदास करमचंद गांधी मद्रास गए । वाला-सुंदरम् की घटना ने मोहनदास करमचंद गांधी को मद्रास का दुलारा वना दिया था। वहां उन्हें सर्वाधिक समर्थन मिला ।

कलकत्ता में भारतीय नेताओं और भारतीय सम्पादकों ने मोहनदास करमचंद गांधी को अप्रत्याशित रूप से हतोत्साह किया । किन्तु 'इंग्लिशमैन' पत्र के अंग्रेज सम्पादक मिस्टर साण्डर्स का उन्हें आशातीत समर्थन मिला । 'पाइनियर' के अंग्रेज सम्पादक की भांति 'इंग्लिशमैन' का अंग्रेज सम्पादक भी मोहनदास करमचंद गांधी के न्यायनिष्ठ अतिशयोक्तिविहीन और यथातथ्य वक्तव्य और वार्तालाप से वहुत प्रभावित हुआ । सार्वजनिक सभा का जो आश्वासन सर सुरेंद्रनाथ वनर्जी से न मिल सका था, एक अंग्रेज सम्पादक की सद्भावना से संभव प्रतीत हुआ । किन्तु तभी दक्षिण अफ्रीका से सूचना मिली कि तुरन्त पहुंचिए । अव की वार परिवार को भी साथ ले जाना था, इसलिए मोहनदास करमचंद गांधी ने कलकत्ता से वम्वई की गाड़ी पकड़ी ।

मोहनदास करमचंद गांधी अपने साथ तीन सहयोगी बैरिस्टर भी ले जाना चाहते थे। दो तो राजी भी हो गए थे । किन्तु ऐन वक्त पर उन दोनों ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। तीसरे सज्जन, जो लंदन में मोहनदास करमचंद गांधी के सहपाठी थे, समझाने लगे कि क्या धरा है दक्षिण अफ्रीका में ? क्या कमी है अपने देश में सेवा-कार्य की ? किन्तु मोहनदास करमचंद गांधी अपने उन प्रवासी भाइयों का साथ कैसे छोड़ सकते थ, जिनको न अन्य किसी का सहारा था, न आसरा । मोहनदास करमचंद गांधी ने सपरिवार दक्षिण अफ्रीका की ओर प्रस्थान किया ।

संयोगवश वम्वई से दक्षिण अफ्रीकी बंदरगाह डर्वन के लिए दो जहाज साथ-साथ निकले । डर्वन के गोरों को जव यह खवर मिली,

उन्होंने इसमें गांधी की कूटनीति और कारिस्तानी की गंध पाई। उन्हें भ्रम हो गया कि बैरिस्टर गांधी प्रवासी भारतवासियों की संख्या बढ़ाने के लिए भारत से अपने समर्थकों से दो जहाज भर कर दक्षिण अफ्रीका आ रहे हैं। भारत में दक्षिण अफ्रीका के गोरों के विरुद्ध प्रचार करने वाले बैरिस्टर गांधी से गोरे लोग कुपित थे ही, इस भ्रम से उनका क्रोध और भी भड़क उठा। नाताल की सरकार इस भ्रम का निराकरण कर सकती थी। किन्तु उसे क्या पड़ी थी?

डर्बन पहुंचते ही दोनों जहाजों को सलाह दी गई कि वह भारत वापस चले जाएं। कहा गया कि बम्बई में प्लेग की बीमारी फैली हुई है, इसलिए वहां से आनेवाले जहाजों को बंदरगाह में घुसने न दिया जाएगा। लेकिन जहाजों ने वापस जाने की अपेक्षा क्वैरंटीन में रहना पसन्द किया। उन्हें पांच दिन क्वैरंटीन में रखा गया। डाक्टरी जांच पड़ताल हुई।

जहाज पर ही बड़े दिन का त्यौहार मनाया गया था। कप्तान ने पहले दर्जे के मुसाफिरों को दावत दी, जिसके बाद पश्चिमी सभ्यता पर मोहनदास करमचंद गांधी का भाषण हुआ। उन दिनों मोहनदास करमचंद गांधी स्वयं तो पाश्चात्य ढंग की पोशाक पहनते ही थे, उनका विचार था कि सुधरे हुए लोगों में अपनी गिनती कराने के लिए हमारा पहनावा और शिष्टाचार, जहां तक संभव हो, यूरोपियन ढंग का होना चाहिए। ऐसा करने से ही लोगों पर प्रभाव पड़ता है और लोगों पर प्रभाव डाले बिना देशसेवा नहीं हो सकती। इसलिए पत्नी के लिए पारसी महिलाओं के ढंग की साड़ियां खरीदीं। बच्चों के लिए पारसी कोट पतलून लिए। सबके लिए बूट और मोजे तो जरूरी थे ही। उन्होंने लाचार होकर पोशाक में इन परिवर्तनों को स्वीकार किया। उससे भी अधिक अनिच्छा से उन्होंने खाते समय छुरी-कांटे का उपयोग शुरू किया।

किन्तु पश्चिमी सभ्यता के प्रति आदर भाव प्रदर्शित करते हुए भी, मोहनदास करमचंद गांधी पश्चिम सभ्यता को हिंसा-प्रधान और पूर्व की सभ्यता को अहिंसा-प्रधान मानते थे। इसीलिए पूर्व में पैदा होने वाले ईसा मसीह, क्रिसमस का त्यौहार जिनके जन्म-दिन के रूप में मनाया जाता है, शान्ति और अहिंसा के मूर्तिमंत स्वरूप थे। कप्तान ने पूछा—नाताल के यूरोपियन जैसी धमकी दे रहे हैं, अगर वैसा ही आचरण कर, वह आपको मारें-पीटें तो आप अहिंसा के अपने सिद्धान्त का पालन कैसे करेंगे ?

मोहनदास करमचद गांधी ने उत्तर दिया—मुझे आशा है कि उन्हें माफ करने और उन पर मुकदमा न चलाने की हिम्मत और बुद्धि ईश्वर मुझे देगा।

अहिंसा के सिद्धान्त की कठिन परीक्षा की घड़ी उपस्थित हुई। जनवरी सन् अठारह सौ सतानवे के दूसरे सप्ताह के अन्त में जब सूर्य पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध में अंकित मगर रेखा को स्पर्श करता है, उत्तरी गोलार्ध में शीतकाल और दक्षिणी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु होती है, जहाज के यात्रियों को उतरने की आज्ञा मिली। नाताल मंत्रि-मंडल के एक मंत्री, अब्दुल्ला सेठ के मित्र और बैरिस्टर गांधी के भूत-पूर्व सहयोगी मिस्टर ऐस्कम ने जहाज के कप्तान के नाम संदेशा भेजा —गांधी और उनके परिवार को शाम के समय उतारना। यूरोपियन बहुत उत्तेजित हो गए हैं। उनकी जान जोखिम में है। कप्तान की सलाह मोहनदास करमचंद गांधी ने मान ली। लेकिन उसी समय अब्दुल्ला सेठ के वकील मिस्टर लाटन ने जहाज पर पहुंच कर कप्तान से कहा कि अगर गांधी मेरे साथ चलने को राजी हों, तो उन्हें सुरक्षित घर पहुंचाने का जिम्मा मेरा है। मिस्टर लाटन को बैरिस्टर गांधी के चोरी-छुपे नगर प्रवेश करना उचित नहीं लगा। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि स्त्री-बच्चे गाड़ी में बैठकर, पारसी रुस्तमजी के घर पहुंच जाएं और बैरिस्टर गांधी मिस्टर लाटन के साथ खुलेआम पैदल

चलकर वहां पहुंचें। मोहनदास करमचंद गांधी ने इसे भी स्वीकार कर लिया। लेकिन उनका जहाज से उतरना था कि कुछ गोरे बच्चों ने उन्हें पहचान लिया। वह उनका नाम ले-लेकर चिल्लाए। बच्चों की चिल्ल-पुकार सुनकर, गोरे भी इकट्ठा होने लगे। मिस्टर लाटन ने रिक्शा बुलाया। किन्तु गोरे बच्चों ने उसे डरा-धमका कर भगा दिया। मोहनदास करमचंद गांधी भी आपत्काल में अपने संरक्षक साथी मिस्टर लाटन के आग्रह से ही रिक्शा पर चढ़ने को राजी हुए थे। लेकिन वह दोनों चढ़ें-चढ़ें कि रिक्शावाला अपनी जान बचाकर भाग खड़ा हुआ। गोरों की भीड़ बढ़ने लगी। उन्होंने अपने शिकार को मिस्टर लाटन से अलग करके पत्थर और अण्डे बरसाने शुरू किए। सर की पगड़ी थप्पड़ मारकर उड़ा दी गई। गोरों के लात-घूंसों की मार से मोहनदास करमचंद गांधी को गश आ गया। उन्होंने पास के किसी मकान के बरामदे की जाली पकड़ कर सांस ली। गोरे उन पर लात-घूंसे बरसाते रहे। संयोगवश स्थानीय

संयोगवश पुलिस सुप्रिटेंडेंट की पत्नी श्रीमती एलेक्जेंडर उधर आ निकलीं। उन्होंने भीड़ में घुसकर अपना छाता खोला और बैरिस्टर गांधी की पीठ से पीठ सटाकर खड़ी हो गईं।

पुलिस सुप्रिटेंडेंट की पत्नी श्रीमती एलेक्जेंडर उधर आ निकलीं। उन्होंने भीड़ में घुसकर अपना छाता खोला और बैरिस्टर गांधी की पीठ से पीठ सटाकर खड़ी हो गई। क्रुद्ध गोरे गोरी महिला श्रीमती एलैक्जेंडर पर तो हाथ छोड़ नहीं सकते थे। चिल्लाने लगे--गांधी को सड़े सेव के पेड़ पर लटका दो। फांसी पर चढ़ा दो।

किसी भारतीय युवक ने वहां से भागकर पुलिस थाने में सूचना दी। खबर पाते ही पुलिस का एक दस्ता घटनास्थल पर आ पहुंचा। पुलिस सुप्रिटेंडेंट स्वयं उनके साथ थे। उन्होंने बैरिस्टर गांधी से थाने में शरण लेने को कहा। पर वह न माने। पारसी रुस्तमजी के घर अधमरे-से पहुंचे। अधिकतर मार भीतरी थी। घाव भी लगे थे। डाक्टरी परिचर्या हो ही रही थी कि घर के बाहर गोरों की भीड़ फिर जमा हो गई। वह पारसी रुस्तमजी का घर फूंक देने की धमकी दे रहे थे। पुलिस सुप्रिटेंडेंट ने आग्रह किया, बैरिस्टर गांधी वहां से छिपकर निकल भागें, अन्यथा पारसी रुस्तमजी का घर तहस-नहस हो जाएगा। भारतीय पुलिसवाले की पोशाक पहनाकर बाहर निकाला गया। खुफिया पुलिस के दो सिपाहियों ने भी वैसा ही किया। छद्म वेष में बैरिस्टर गांधी ने थाने में शरण ली।

गोरों के व्यवहार का समाचार लंदन पहुंचा तो उपनिवेशों के मंत्री श्री चेंबरलेन ने तार द्वारा आततायियों पर मुकदमा चलाने का आदेश दिया। नाताल सरकार के मंत्री श्री ऐस्कम ने बैरिस्टर गांधी को बुलाया। मोहनदास करमचंद गांधी ने लिखकर दिया कि मैं किसी पर मुकदमा नहीं चलाना चाहता। जब ठीक-ठीक हकीकत मालूम होगी और लोग उसे जानेंगे, तो वे पछताएंगे।

'नाताल एडवर्टाइजर' के पत्र प्रतिनिधि ने बैरिस्टर गांधी से भेंट की। 'हरी किताब' तथा उस अन्य सब साहित्य को निरखा-परखा, जो भारत में मोहनदास करमचंद गांधी ने प्रकाशित और प्रचारित किया था। पत्र प्रतिनिधि ने बैरिस्टर गांधी के पक्ष में लेख लिखा

और फिर तो नाताल के सब अंग्रेजी पत्रों ने स्वजातीय गोरे आततायियों की भर्त्सना और विजातीय बैरिस्टर गांधी की सराहना की। मुकदमा न चलानेवाले, प्रतिशोध के निराकांक्षी, क्षमाशील मोहनदास करमचंद गांधी के सद्व्यवहार की ऐसी छाप पड़ी कि गोरे शर्मिन्दा हुए। हिन्दुस्तानी कौम की प्रतिष्ठा बढ़ी।

प्रवासी भारतवासियों और उनके नेता की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा का एक विपरीत परिणाम यह हुआ कि मन ही मन गोरों का उनके प्रति द्वेष और भय बहुत अधिक बढ़ गया। नए-नए कानून बनने लगे, जिनका उद्देश्य प्रवासी भारतीय व्यापारियों का उच्छेद करना और नए भारतीय आगन्तुकों के नाताल में प्रवेश पर रोक लगाना था। ऐसी परिस्थिति में बैरिस्टर गांधी का काम बहुत अधिक बढ़ गया। भेद-भाव की नीति के विरुद्ध न्याय-बोध जगाने के लिए उन्होंने लंदन जाकर भी दौड़ धूप की। किन्तु परिणाम कुछ न निकला।

सार्वजनिक सेवा, बैरिस्टरी और गृहस्थी के त्रिविध कार्यों को दक्षता से करते हुए, मोहनदास करमचंद गांधी ने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की ओर ध्यान देना शुरू किया। तीन बच्चे उनके साथ आए थे। दो उनके अपने पुत्र और एक उनका भांजा, उनके दिवंगत बहनोई का लड़का। इन तीनों बच्चों की बढ़ाई का प्रबन्ध या तो गोरों के किसी स्कूल में होता, जहां कह-सुनकर ही उनका प्रवेश संभव था। या ईसाई धर्म-प्रचारकों के स्कूल थे, जहां की रीति-नीति और शिक्षा पद्धति मोहनदास करमचंद गांधी को पसन्द न थी। समयाभाव से शिक्षण की पूरी जिम्मेदारी वह ले न सकते थे। इसलिए एक ऐसी अंग्रेज शिक्षिका को नियुक्त किया गया, जो मोहनदास करमचंद गांधी के आदेशानुसार बच्चों को लिखा-पढ़ा सके। वह स्वयं बच्चों के साथ गुजराती भाषा में वार्तालाप करते थे। वह बच्चों के मन में भारतीयता के संस्कारों को अक्षुण्ण रखना चाहते थे। किन्तु फिर भी अपने बच्चों के शिक्षण का उनका प्रयोग पूर्ण रूप से सफल नहीं कहा

जा सकता । ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल गांधी वड़े होकर, पढ़ाई के लिए देश चले गए और अपने पिता से इस विषय में असन्तुष्ट रहने लगे ।

यहां यह वता देना अप्रासंगिक न होगा कि मोहनदास करमचंद गांधी के चार पुत्र हुए । ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल गांधी का जन्म विलायत की यात्रा से कुछ पहले हुआ था । दूसरे पुत्र मणिलाल गांधी का जन्म विलायत वापसी के वाद और दक्षिण अफ्रीका की प्रथम यात्रा के वीच हुआ था । तीसरे पुत्र रामदास गांधी का जन्म गांधी जी के सपरिवार दक्षिण अफ्रीका आने के वाद हुआ । सबसे छोटे देवदास गांधी अफ्रीका में ही हुए ।

सेवा की प्रवृत्ति और भोग से निवृत्ति

वैरिस्टर गांधी की शोहरत, सफलता और आमदनी में दिनों-दिन वढ़ोतरी हो रही थी और उसी अनुपात में उनके हृदय में सेवा की प्रवृत्ति भी वढ़ रही थी। एक दिन उनके द्वार पर एक कोढ़ी आ खड़ा हुआ, जिसके अंग महारोग से गल रहे थे। मोहनदास करमचंद गांधी ने उसके लिए घर के द्वार ही नहीं खोल दिए, वरन् उसके घावों को स्वयं धोया और मरहम-पट्टी की। दो रोटी देकर ही, वह उसे निहाल कर सकते थे। किन्तु इतने से वह सन्तुष्ट न हो सके। जब
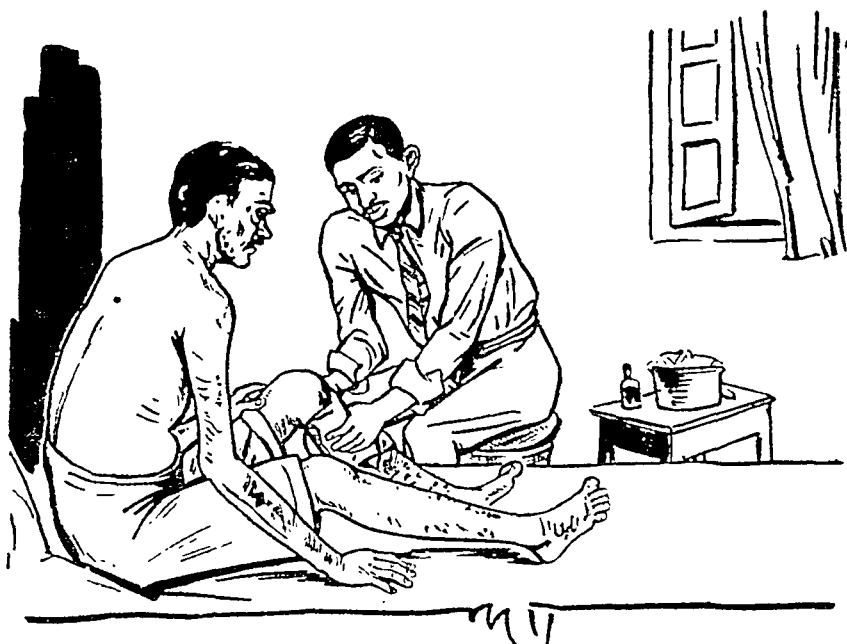
मोहनदास गांधी ने उस कोढ़ी के लिए अपने घर के द्वार ही नहीं खोल दिए, वरन् उसके घावों को स्वयं धोया और मरहम-पट्टी की।

तक सरकारी अस्पताल में वह उसके लिए स्थान और उपचार का प्रबन्ध न करा सके, गलित कुष्ठ के रोगी को उन्होंने अपने पास ही रखा। और फिर भी उनके मन में यह कलक बनी रही कि उसे अपने घर में रखकर, स्वयं उसकी सेवा न कर सके।

उपचार और सेवा-सुश्रूषा का अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्होंने पारसी रुस्तमजी के बनवाए हुए अस्पताल में लोकसेवी डाक्टर बूथ के सहायक के रूप में प्रतिदिन कुछ समय के लिए कम्पाउण्डर और नर्स का काम करना शुरू किया। उपचार और सेवा-सुश्रुषा के इस कार्य के सहारे, मोहनदास करमचंद गांधी दीन-हीन प्रवासी भारतवासी गिरमिटिया मजदूरों के निरन्तर निकट पहुंचते रहे। अनुभव भविष्य में भी घर-बार बहुत काम आया। जिन दोनों बच्चों का जन्म दक्षिण अफ्रीका में हुआ था, आरंभिक दो महीनों में उनकी और जच्चा मां की पूरी देखभाल पिता के द्वारा हुई। इस कार्य को भली-भांति कर सकने के लिए, मोहनदास करमचंद गांधी ने 'मां को सीख' नामक गुजराती पुस्तक का ध्यान से अध्ययन भी किया था। अपने चौथे पुत्र देवदास गांधी का प्रसव मोहनदास करमचंद गांधी को स्वयं कराना पड़ा था क्योंकि ऐन वक्त पर न डाक्टर मिला, न कोई दाई।

स्वावलम्बन की लगन तो पहले से ही थी, किन्तु दक्षिण अफ्रीका में आन-बान-शान के अपने जीवन की प्रतिक्रियास्वरूप, मोहनदास करमचंद गांधी के मन में वह लगन एकाएक बहुत प्रबल हो गई। सेवा कार्य में अपनी कमाई का अधिक अंश और मन लगाने के लिए उन्होंने अपना घर-खर्च कम करने का निश्चय किया। वह अपने कपड़े खुद धोने लगे। धुलाई के साधन और इस विषय की पुस्तकें खरीद कर, मोहनदास करमचंद गांधी ने स्वयं को इस हुनर में इतना माहिर बना लिया कि राजनीति में अपने मनोनीत गुरु गोखले जी का प्रमाणपत्र इस विषय में भी प्राप्त कर लिया। घटना उन दिनों की है, जब गोखले जी दक्षिण अफ्रीका के दौरे पर मोहनदास करमचंद

गांधी के मेहमान थे। गोखले जी को अपना एक उपरना या उत्तरीय बहुत प्रिय था, जो उन्हें न्यायमूर्ति रानडे से उपहार में मिला था। अपने गुरू के उपहार की वह बेहद कद्र करते थे। उसकी धुलाई और अस्तरी के लिए मोहनदास करमचंद उद्यत हुए तो गोखले जी ने शंकित होकर कहा—वकालत में तुम्हारी योग्यता का मैं कायल हूं, लेकिन धुलाई के तुम्हारे हुनर का जोखिम मैं नहीं उठा सकता। लेकिन अपने आग्रही और उत्साही शिष्य को उम्दा धुलाई के लिए प्रमाणपत्र देना ही पड़ा। मोहनदास करमचंद गांधी ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा—दुनिया अब जो चाहे कहे, मुझे तो मुंहमांगा मनचाहा प्रमाणपत्र मिल ही गया।

प्रिटोरिया में एक गोरे हज्जाम ने 'कुली बैरिस्टर' के बाल काटने से इनकार कर दिया। बैरिस्टर गांधी ने उसी दिन से इस विषय में भी स्वावलम्बन का अभ्यास शुरू कर दिया। पहला प्रयोग सफल नहीं हुआ। सहयोगी बैरिस्टर हंसे। किन्तु गोरे हज्जामों के इनकार की बात सुनकर उन्हें कुछ अजब न लगा। मोहनदास करमचंद गांधी ने मन ही मन सोचा कि देश में हम सवर्ण लोग भी तो नाई को अछूतों के बाल काटने नहीं देते। छूआछूत के भेद-भाव का अभिशाप हमें दक्षिण अफ्रीका में इसीलिए तो भोगना पड़ता है। पाप का प्रायश्चित तो करना ही पड़ता है।

लोकसेवा के धर्म का सर्वात्मना पालन करने के लिए, मोहनदास करमचंद गांधी को अब ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण करना भी अनिवार्य प्रतीत होने लगा। इसी समय दक्षिण अफ्रीका में बोअर युद्ध छिड़ गया। मोहनदास करमचंद गांधी की सहानुभूति यद्यपि बोअर लोगों के प्रति थी किन्तु उन्हें ब्रिटिश प्रजाजन के नाते अंग्रेजों का पक्ष लेना ही उन्हें धर्मसम्मत लगा। प्रवासी भारतीय लोगों की एम्बुलेंस टुकड़ी बनाकर, बैरिस्टर गांधी ने युद्ध में आहत सैनिकों की सेवा का बीड़ा उठाया। लेकिन अंग्रेजों ने इस कार्य में भी प्रवासी भारतवासियों

को दूर ही रखना चाहा। उनका ख्याल था कि भारतीय लोग डरपोक और पैसे के लालची होते हैं। डाक्टर बूथ की चिट्ठी लेकर, वह नाताल के विशप से मिले। भारतीय टुकड़ी में कुछ प्रवासी भारतीय ईसाई भी थे। विशप ने बैरिस्टर गांधी के प्रस्ताव का समर्थन किया। मिस्टर ऐस्कम और डाक्टर बूथ तो पहले से ही प्रयत्नशील थे। उधर परिस्थिति ने भी ऐसा पलटा खाया कि डटकर लड़ने वाले वीर बोअर लोगों ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिए और भारतीय एम्बुलेंस टुकड़ी की सेवाएं अंग्रेजों ने सहर्ष स्वीकार कर लीं। युद्ध और भी घमासान होता गया और भारतीय एम्बुलेंस टुकड़ी को युद्धक्षेत्र की गोलाबारी के बीच में जाना पड़ा। एक आहत अंग्रेज जनरल को सुरक्षित स्थान तक पहुंचाने का श्रेय भी इस टुकड़ी को मिला। इसमें ग्यारह सौ भारतीय थे, जिनमें से चालीस दल-नेता थे। युद्ध में सेवा कार्य करते हुए प्रवासी भारतीय अनुशासन और एकता के सूत्र में बंध गए और उनके मन में आत्मविश्वास पैदा हुआ। उस समय प्रवासी भारत-वासियों की प्रतिष्ठा और गोरों के साथ मैत्री बहुत बढ़ गई। एक बार धूप-ताप में कूच करते-करते गोरे सिपाही और भारतीय टुकड़ी के सदस्य दोनों समान रूप से प्यासे थे। रास्ते में एक छोटा-सा झरना दिखाई दिया। गोरों ने कहा, पहले भारतीय लोग पानी पिएंगे और भारतीय आग्रह करते थे कि पहले गोरे सिपाही अपनी प्यास बुझाएं। सेवा और सहयोग से परस्पर शंका और वैमनस्य रखनेवालों के बीच भी प्रीति पैदा हो जाती है।

एम्बुलेन्स टुकड़ी के एक सदस्य के रूप में गांधी

भारतीय एम्बुलेंस टुकड़ी की सरकार और अखबारों द्वारा बहुत सराहना हुई थी। टुकड़ी के नेताओं को 'युद्ध पदक' भी प्रदान किए गए थे। ऐसा लगता था जैसे प्रवासी भारतवासियों के दिन फिरने में

भारतीय एम्बुलेंस टुकड़ी का सामूहिक चित्र।

अब बहुत देर नहीं है। गोरों के समाचारपत्र अंग्रेजी और भारतीय प्रजा के बारे में प्रेम का गीत गा रहे थे—आखिर तो हम सब एक ही साम्राज्य की प्रजा हैं।

ऐसी परिस्थिति में मोहनदास करमचंद गांधी को लगा कि यदि प्रवासी भारतीय भाइयों के रहन-सहन में भी कुछ सुधार हो जाए, तो अंग्रेजों और भारतीयों के बीच की खाई का पट जाना और भी आसान हो जाएगा। प्रवासी भारतीय अपने घर-आंगन और बस्ती में स्वच्छता की आवश्यकता के प्रति उदासीन रहते थे।

नाताल बंदर में भी प्लेग फैलने की आशंका पैदा हो गई थी। इसलिए सफाई का अभियान आवश्यक हो गया। यदि प्रवासी भारतीय स्वेच्छा से इसमें शामिल न होते, तो सरकार की ओर से सख्ती की जाती। लेकिन इसकी नौबत नहीं आई। मोहनदास करमचंद गांधी

के नेतृत्व में प्रवासी भारतवासियों की वस्तियों में सफाई का काम शुरू हो गया। फिर भी उन्हें यह देखकर दुख हुआ कि भारतीय अपने अधिकारों के प्रति जितने सजग दिखाई दिए, उतने अपने कर्तव्यों के प्रति नहीं। घर-आंगन और बस्ती की सफाई में कुछ खर्च करना प्रवासी भारतीय भाइयों को धन का अपव्यय प्रतीत होता था। हाथ से काम करने में वह शरमाते थे। मोहनदास करमचंद गांधी को इस दिशा में बहुत अधिक प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ा।

प्रवासी भारतवासियों को मातृभूमि भारत के प्रति सदा जागरूक रखना भी मोहनदास करमचंद गांधी का नियमित कार्य बन गया। देश में उस बीच कई बार अकाल पड़ा। प्रवासी भारतीय समाज ने अकाल पीड़ित देशवासियों की बार-बार आर्थिक सहायता की। इस विषय में गोरे लोगों ने भी उदारता दिखाई। मोहनदास करमचंद गांधी के नेतृत्व में दक्षिण अफ्रीका का प्रवासी भारतीय समाज नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से दिन-पर-दिन उन्नति कर रहा था। राजनीतिक उन्नति की भी आशा बंधने लगी थी।

लोकसेवा के माध्यम से सत्य की आराधना में मोहनदास करमचंद गांधी ने अनुभव किया कि सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों-ज्यों उसकी सेवा की जाती है, त्यों-त्यों उस पर नए-नए फल आते हैं, जिनका कोई अन्त नहीं। सत्य एक ऐसी खान के समान है कि उसमें जितना ही गहरा पैठा जाए, उतने ही रत्न गहराई में दिखाई देते हैं, जिनके आलोक में सेवा के नए-नए मार्ग सूझते जाते हैं।

बीसवीं सदी आरंभ हो गई थी। मोहनदास करमचंद गांधी ने मन-ही-मन निश्चय किया, अब मुझे मातृभूमि की सेवा के लिए देश लौट जाना चाहिए। वहां से मित्रों के अनुरोधभरे पत्र भी लगातार आ रहे थे। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतवासियों की सेवा के लिए कुछ कार्यकर्ता भी अब तक तैयार हो चुके थे। मोहनदास करमचंद गांधी को अपने सेवाकार्य का क्षेत्र और विस्तृत करना था। किन्तु

नाताल में इसकी संभावना तो कम और बैरिस्टरी के धन्धे की नित्य प्रति अधिकाधिक होती जा रही थी। उन्हें शंका होने लगी कि कहीं धंधा ही उनके जीवन का मुख्य अंग न बन जाए। वह तो केवल जीने भर के लिए धंधा चाहते थे। धन्धे के लिए जीना उनका उद्देश्य न था। उन्होंने अपने प्रवासी भारतीय सहयोगियों और मित्रों से स्वदेश जाने की अनुमति मांगी। साथियों ने पहले तो छुट्टी ही न देना चाहा और फिर कठिनाई से माने भी तो यह शर्त लगाई कि अगर एक वर्ष के भीतर वापसी का संदेश पहुंचे तो गांधीभाई को कौम की रहनुमाई के लिए दक्षिण अफ्रीका आना होगा। जनता की वाणी को जनार्दन का आदेश समझकर, मोहनदास करमचंद गांधी ने भारतीय भाइयों की शर्त को मान लिया। वर्ग, धर्म, भाषा और क्षेत्र के आधार पर बंटे हुए, जिस बिखरे हुए प्रवासी भारतीय समाज को मोहनदास करमचंद गांधी ने एकता की डोर में बांधा था, उसने कच्चे धागे की प्रेम-डोर में उन्हें ही बांध लिया था।

बिदाई की सभा में प्रवासी भारतीय भाइयों ने गांधीभाई पर असीम प्रेम बरसाया। भेंट में चांदी-सोने और हीरे की बहुमूल्य वस्तुओं का ढेर लग गया। कस्तूरबाई को सोने की एक भारी जंजीर भेंट की गई, जिसका मूल्य उन दिनों, और वह भी दक्षिण अफ्रीका में, जहां सोने का भाव यों भी कम होता है, पचास गिन्नी था। भेंट में मिली बहुमूल्य वस्तुओं के कारण गांधी रात-भर सो न सके। अपने कमरे में चक्कर काटते रहे। निश्चय किया कि भेंट में मिली बहुमूल्य वस्तुओं को बेचकर, प्रवासी भारतीय समाज की सेवा के निमित एक ट्रस्ट या धर्मादा की स्थापना कर दी जाएगी। इस आशय का पत्र लिखकर, वह सो गए।

सबेरे उठे तो बच्चों से इस विषय में बातचीत की। उन्होंने अपने पिता का सहर्ष अनुमोदन किया। अब रहा कस्तूरबाई को मनाना। मोहनदास करमचंद गांधी ने यह काम बच्चों को सौंपा। मानना होगा

कि बच्चों को मां के पीछे लगा देने में चतुराई भले ही रही हो, कार्य न्यायोचित न था। कस्तूरबाई बोलीं—माना कि तुम्हें चीज-वस्त की दरकार नहीं और न तुम्हारे बच्चों को ही इनकी जरूरत है। माना कि बच्चों को सिखा-पढ़ाकर तुम उन्हें चाहे जैसा नाच नचा सकते हो। और मैं यह भी मानती हूं कि मेरा चीज-वस्त पहनना भी तुम्हें अच्छा नहीं लगता और मैं भी यही मानती हूं कि जिसमें तुम राजी, उसमें मैं राजी। पर कल के दिन घर में जब बहुएं आएंगी, तब उन्हें क्या दूंगी ? वह तो दो गहने पहनेंगी ही। और कल की कौन जानता है ? जो चीज-वस्त लोगों ने हमें मन से दी हैं, मैं उन्हें किसी तरह देने वाली नहीं हूं।

गांधी ने धीरे से कहा—बहुओं की चिन्ता छोड़ो। अगर उन्हें गहने पहनने ही होंगे, तो बन जाएंगे। बस मुझसे कह भर देना।

"अच्छी कही" कस्तूरबाई बोलीं, "क्या मैं तुम्हें जानती नहीं हूं। तुमने मेरे सब गहने-पाते उतरवा लिए। जब तक एक भी गहना अंग पर रहा, तुमने मुझे चैन से नहीं बैठने दिया। खूब कही कि मेरे कहते ही तुम मेरी बहुओं के लिए गहने बनवा दोगे। इसीलिए तो तुम अभी मेरे बच्चों को साधु बनाए दे रहे हो। नहीं, मैं चीज-बस्त न दूंगी। और यह माला, जो मुझे मिली है, इसपर तुम्हारा क्या अधिकार है ?

—भला तुमने कौन-सी सेवा की है। यह माला भी तो मेरी सेवाओं के उपलक्ष्य में तुम्हें मिली है। गांधी ने कहा। "मानती हूं" कस्तूरबाई बोलीं, "लेकिन तुमने सेवा की तो मैंने ही सेवा की। क्या दोनों में कोई भेद है ? और मंने भी तो न दिन देखा न रात देखी, तुम्हारी चाकरी करती रही। यह सेवा नहीं थी क्या ? तुमने भी न दिन देखा न रात देखी, चाहे जिसे घर में मेहमान बनाकर, मेरे सिर पर बिठाया। रुला-रुलाकर मुझ से हर किसी की टहल कराई। यह सेवा नहीं थी क्या ?

'आत्मकथा' में गांधी लिखते हैं: "भाले-जैसे तीखे बोल हृद
सीधे पैठ गए। मैं घायल हुआ और कायल भी। लेकिन भेंट में f
बहुमूल्य वस्तुओं को लौटा देने का मेरा निश्चय अटल था। सन् अट
सौ छियानवे और अब सन उन्नीस सौ एक में जो-जो वस्तुएं भें
मिली थीं, सब लौटा दी गईं। विधिवत् एक ट्रस्ट बना दिया ग
मुझे इसका कभी पछतावा नहीं हुआ और मेरी पत्नी ने भी बा
इसे समझदारी का काम माना। ऐसा करने से हम अनेक प्रलो
से बचे हैं। मेरी तो निश्चित रूप से यह मान्यता है कि लोक
करनेवालों को कभी कोई बहुमूल्य वस्तु भेंट-स्वरूप स्वीकार
करनी चाहिए।"

मोहनदास करमचंद गांधी ने मातृभूमि की ओर सपरि
प्रस्थान किया। जहाज मार्ग में एक दिन के लिए मारीशस के बंदर
में ठहरा। स्थान देखने और स्थानीय गतिविधि से परिचित हो
लिए मोहनदास करमचंद गांधी किनारे पर गए और एक
उपनिवेश के गवर्नर, सर चार्ल्स ब्रूस के मेहमान रहे।

स्वदेश पहुंचकर, मोहनदास करमचंद गांधी कुछ दिनों
देश-दर्शन करते रहे और फिर कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में कल
जा पहुंचे। उन्हें कांग्रेस के संगठन और संचालन को देखकर स
नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि स्वयंसेवकों में राष्ट्रसेवा की भ
तो थी, किन्तु अनुभव और अनुशासन की कमी थी। प्रतिनि
के आवास-स्थल पर सफाई का प्रबन्ध बहुत खराब था. प्रब
के बीच काम का ठीक-ठीक बंटवारा न था। कांग्रेस संगठन अधि
के उपरांत निष्क्रिय हो जाता था और अधिवेशन में भी भाषणों व
भरमार रहती, पर प्रस्तावों पर बहुत कम विचार किया जाता
ऐसी स्थिति में दक्षिण अफ्रीका पर कांग्रेस में प्रथम बार और व
सर्वसम्मति से अपना प्रस्ताव पास कराने में बाद भी, मोह
करमचंद गांधी को सन्तोष न हुआ। उन्हें यह देखकर भी

हुआ कि कांग्रेस के अखिल भारतीय अधिवेशन में आनेवाले अलग-अलग प्रांतों के प्रतिनिधि अलग-अलग खानपान करते थे। कांग्रेस के संगठन और संचालन में जनता के प्रतिनिधियों और जनता की भाषा का अभाव भी मोहनदास करमचंद गांधी को बहुत अखरा। यह सच था कि दक्षिण अफ्रीका में नाताल भारतीय कांग्रेस ने इस दिशा में जो कार्य पांच वर्ष में कर दिखाया था, मातृभूमि में वह अब तक न हो सका था।

कलकत्ता से मोहनदास करमचंद गांधी कुछ दिनों के लिए रंगून भी हो आए। तब बर्मा भी भारत में सम्मिलित था। वहां उन्हें यह देखकर दुख हुआ कि भारतीय व्यापारी भी विदेशी व्यापारियों और की भांति बर्मी जनता का शोषण करते हैं। बर्मा के पुरुष आलसी और स्त्रियां कर्मठ दिखीं। बर्मी भिक्षु भी सक्रिय न थे।

वापस कलकत्ता आकर, मोहनदास करमचंद गांधी गोखले जी के साथ एक महीना रहे। वहां उनकी भेंट देशभक्त डाक्टर प्रफुल्लचंद्र राय से हुई और उनके साथ जीवन भर के लिए स्नेह सम्बन्ध जुड़ गया। मोहनदास करमचंद गांधी ने स्वामी विवेकानंद और महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर से भी मिलने का प्रयत्न किया, किन्तु दोनों में से किसी से भेंट न हो सकी। यदि उनका सम्पर्क स्वामी विवेकानन्द से हो पाता, तो बहुत संभव है कि दरिद्रनारायण के उपासक इन दो क्रान्तिकारियों के मिलन से भारतीय क्रान्ति का उषाकाल और भी कांतिमान हो जाता। स्मरणीय है कि शिकागो की विश्व धर्म संसद में सम्मिलित होने के लिए स्वामी विवेकानंद की अमरीका यात्रा और भावी महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी की दक्षिण अफ्रीका की पहली यात्रा एक ही वर्ष में, यानी सन 1894 में हुई थी।

मनचीती प्रभुचीती

भारत में अपना धंधा और गृहस्थी जमाने से पहले मोहनदास करमचंद गांधी देश-दर्शन कर लेना चाहते थे। फर्स्ट क्लास में यात्रा करने के अभ्यासी गांधी की इच्छा इस बार तीसरे दर्जे में बैठकर रेलयात्रा करने की थी। इसी दर्जे के अनुरूप ही उन्होंने पोशाक बनाई थी। एक कंबल और झोले के सिवा और कुछ साथ न लिया था। और कुछ था तो गोखले जी का दिया हुआ एक सस्ता-सा टिफिन कैरियर, यानी खाना रखने का कटोरदान। मोहनदास करमचंद गांधी गोखले जी के मना करने पर भी, तीसरे दर्जे में रेलयात्रा करने पर तुले थे। गोखले जी और डाक्टर प्रफुल्लचंद्र राय ने उन्हें हावड़ा जंक्शन से विदा किया।

पहला पड़ाव वाराणसी में हुआ, जहां एक सामान्य तीर्थयात्री की भांति, मोहनदास करमचंद गांधी किसी पण्डे के घर ठहरे। गंगा जी की पूजा कर, उन्होंने स्नान किया और काशी विश्वनाथ के दर्शन के लिए गए। गंदी गलियों में स्थित मंदिर, दकियानूसी व्यवस्था और पण्डों की लोलुपता उन्हें अच्छी न लगी। वाराणसी में मोहनदास करमचंद गांधी ने श्रीमती एनी बेसेंट से भी भेंट की। उन दिनों वह अस्वस्थ थीं। कुशल-क्षेम पूछ कर उनसे बहुत जल्दी ही विदा ली।

तीसरे दर्जे में रेलयात्रा जारी रही। मोहनदास करमचंद गांधी बम्बई पहुंचे। गंदगी और असुविधा के बीच तीसरे दर्जे में रेलयात्रा करनेवाली भारतीय जनता की दुर्दशा देखी। उसे दूर करने की लगन मन में बलवती हुई। गांधी को यह देखकर दुख हुआ कि दक्षिण अफ्रीका में तीसरे दर्जे की रेलयात्रा की तुलना में भारत में तीसरे दर्जे की रेलयात्रा हर हालत में बदतर थी।

राजकोट में धंधा जमा कर, मित्रों की इच्छा और गोखले जी के आदेश से मोहनदास करमचंद गांधी बम्बई आ गए। कार्यालय का प्रबन्ध हाई कोर्ट के निकट फोर्ट में किया और घर लिया गामदेवी में। लेकिन घर के कमरे अन्धेरे थे, हवा ठीक न आती थी और सीलन भी बहुत थी। द्वितीय पुत्र मणिलाल बीमार पड़े। बीमारी बढ़ती गई। डाक्टरी इलाज बेकार सिद्ध हुआ। डाक्टर हल्के आमिष भोजन के लिए आग्रह करने लगे। पिता-पुत्र दोनों मांसाहार के लिए राजी न थे। डाक्टरी इलाज बंद हुआ। किन्तु विषम ज्वर बढ़ता गया और मणिलाल को सरसाम हो गया। भगवान का नाम लेकर पिता ने पुत्र का इलाज अपने हाथ में लिया। लेकिन मन में भीषण संघर्ष था कि कुछ हो गया, तो बड़े भाई क्या कहेंगे? क्या अधिकार है मुझे अपने पुत्र पर अपने प्रयोग करने का? और फिर मन को धैर्य बंधाया सुदृढ़ आस्था ने जिसके सहारे प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार उपचार आरम्भ हो गया।

गीली चादर में पुत्र का शरीर और गीले तौलिये में सिर लपेट कर गांधी जी ने मणिलाल को दो कंबल उढ़ा दिए। धैर्यमूर्ति ममतामयी मां अपने बीमार बेटे के पास मौन बैठी रही। मोहनदास करमचंद गांधी अपने आन्दोलित मन को शान्त करने के लिए समुद्र तट पर चले गए। आंखें चौपाटी की भारी भीड़ को देखकर भी न देख पाती थीं। कान कोलाहल सुनकर भी, कुछ न सुन पाते थे। मन में रट लगी थी, मेरी लाज तुम्हारे हाथ है, हरि। राम-नाम का जप करते हुए गांधी समुद्र तट पर कुछ देर यों ही अकेले घूमते रहे। मन शान्त हुआ और वह घर लौट आए। कमरे में प्रवेश करते ही मणिलाल की आवाज सुनी—बापू, आप लौट आए?

—हां, बेटा। मैं आ गया।

—मुझे इसमें से निकालिए। मैं जल रहा हूं।

—तुम्हें पसीना आया, बेटा?

—मैं पसीने से नहा गया हूं। अब मुझे निकालिए।

पिता ने पुत्र के माथे पर हाथ रखा। माथे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूंदें थीं। बुखार उतर रहा था। पिता ने प्रभु को धन्यवाद दिया।
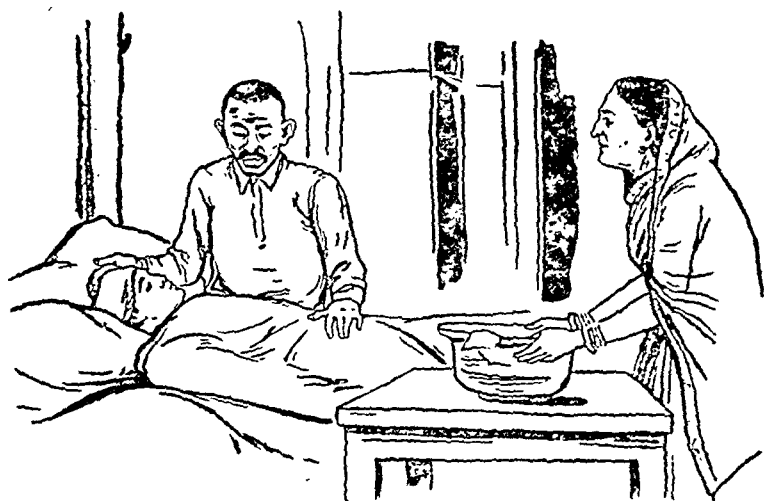
पिता ने पुत्र के माथे पर हाथ रखा। माथे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूंदें थीं। बुखार उतर रहा था।

धीरे-धीरे मणिलाल स्वस्थ हुए। मोहनदास करमचंद गांधी ने इस प्रसंग में लिखा है—कौन कह सकता है कि मणिलाल ईश्वरकृपा से रोगमुक्त हुआ या जल चिकित्सा से? उसे पथ्य से आरोग्य लाभ हुआ या अच्छी सुश्रूषा से? हर कोई अपनी-अपनी मति के अनुसार ही इन प्रश्नों का उत्तर देगा। पर जहां तक मेरी बात है, मैं तो यही मानता था कि ईश्वर ने मेरी लाज रख ली।

गांधी ने अंधेरे बंद कमरों का वह घर छोड़कर, सान्ता क्रुज में एक अच्छा, खुला हुआ, हवादार बंगला किराये पर लिया और धीरे-धीरे बम्बई में बैरिस्टरी का अपना काम जमा लिया। आशा से अधिक आमदनी होने लगी। लेकिन तभी, वर्ष भर की अवधि पूरी होने के

पहले ही दक्षिण अफ्रीका से फिर बुलावा आ गया। मोहनदास करमचंद गांधी अपने वादे को भूले न थे। 'आत्मकथा' में उन्होंने लिखा है कि ईश्वर ने अपने लिए बनाई हुई मेरी किसी योजना को कभी टिकने नहीं दिया है। निर्णय सदा हरि के हाथ रहा है।

—भाई आ गए! भाई आ गए!!—नाताल के प्रवासी भारतवासियों ने भाई की रट लगाकर, मोहनदास करमचंद गांधी का स्वागत किया। नाताल पहुंचते ही वह काम में जुट गए। इंग्लैंड के उपनिवेश मंत्री चेंबरलेन से प्रवासी भारतवासियों के प्रतिनिधि मंडल के मिलने की तारीख तय हो चुकी थी। परन्तु चेंबरलेन ने प्रवासी भारतवासियों की पुकार को सुनकर अनसुना कर दिया। प्रवासी भारतवासियों को आश्वासन के स्थान पर उपदेश मिला कि उन्हें दक्षिण अफ्रीका में रहना है, तो शासक गोरी जाति से बनाकर रखें और व्यर्थ का टंटा खड़ा न करें। प्रवासी भारतीय समाज को घोर निराशा हुई। बोअर युद्ध में अंग्रेजों के सहायक बनकर, हमने क्या पाया? उनकी दृष्टि मोहनदास करमचंद गांधी पर टिक गई। मूक प्रश्न मुखर हुआ—गांधीभाई, अब हम क्या करें?

अपनी निराशा को भुलाकर, मोहनदास करमचंद गांधी ने अपने साथियों को धैर्य से समझाया कि हमें अपनी एकता, अपने संगठन और सुमति के भरोसे अब अपने पांवों पर खड़ा होना होगा। चेंबरलेन तो दक्षिण अफ्रीका के अंग्रेज़ और बोअर लोगों से सम्बन्ध सुधारने और दक्षिण अफ्रीका की सरकार से साढ़े तीन करोड़ पौंड की भेंट स्वीकार करने के लिए ही मुख्यतः आए हैं। इसीलिए हमारी शिकायतों को सही मानते हुए भी वह हमारे प्रति उदासीन रहने के लिए बाध्य हैं। हमने अपनी बात कह दी, अच्छा हुआ। अन्यथा यह कहा जाता कि प्रवासी भारतवासियों को यहां की सरकार से कोई शिकायत ही नहीं है।

नाताल से ट्रांसवाल जाने की वात थी। वहां भी गांधीभाई की प्रतीक्षा में प्रवासी भारतवासी आस लगाए वैठे थे। किन्तु वोअर युद्ध के वाद वहां जानेवाले एशियावासियों को अनुमतिपत्र प्राप्त करना आवश्यक हो गया था। एशियावासियों की देखरेख के लिए एक नया सरकारी विभाग खुल गया था, जिसके अधिकारी और कर्मचारी भारत और लंका से आए हुए अंग्रेज़ अफसर थे। वह दक्षिण अफ्रीका के अंग्रेज़ अफसरों से भी कठोर और निरंकुश थे। अनुमतिपत्र पाने के लिए सिफारिश पहुंचाना या रिश्वत देना अनिवार्य-सा हो गया था। मोहनदास करमचंद गांधी यह सव न कर सकते थे। लेकिन ट्रांसवाल की राजधानी प्रिटोरिया पहुंचना जारी था। वह अपने पुराने परिचित पुलिस सुप्रिटेंडेंट मिस्टर एलैग्ज़ेंडर के पास गए और पूछा—क्या प्रिटोरिया पहुंचने की कोई सूरत नहीं? मिस्टर एलेग्ज़ेंडर फौरन उठे और मोहनदास करमचंद गांधी के लिए कहीं से अनुमति-पत्र ले आए।

प्रिटोरिया पहुंचकर, मोहनदास करमचंद गांधी ने देखा कि शहर और प्रान्त वोअर युद्ध के कारण लगभग उजड़ गया है और प्रवासी भारतवासियों की स्थिति पहले से भी वदतर हो गई है। गांधीभाई के आगमन से प्रवासी भारतवासियों की हिम्मत वंधी, लेकिन नए एशियाई विभाग के अधिकारी जल-भुन गए। उन्हें संशय हुआ कि गांधी अनुमतिपत्र के विना ही ट्रांसवाल में घुसे हैं, इसलिए उन्हें जेल की हवा खिलाने का अच्छा मौका है। वैरिस्टर गांधी की गिरफ्तारी की योजना वन ही रही थी कि नाताल से अधिकारियों को तार के उत्तर में सूचना मिल गई कि उनका शिकार वैध अनुमतिपत्र लेकर प्रिटोरिया पहुंचा है। अव प्रयत्न हुआ कि ट्रांसवाल के प्रवासी भारत-वासियों के प्रतिनिधि मंडल की सूची से वैरिस्टर गांधी का नाम काट दिया जाए। एशियाई विभाग के अधिकारी ने प्रवासी भारतीय प्रतिनिधि सेठ तैयव हाजी खानमोहम्मद के द्वारा वैरिस्टर गांधी

को अपने दफ्तर में बुलाया। उसने बैरिस्टर गांधी या अन्य किसी भारतीय प्रतिनिधि को बैठने के लिए नहीं कहा। बैरिस्टर गांधी को देखकर, छूटते ही बोला—तुम्हारा यहां क्या काम है? तुम माननीय उपनिवेश मंत्री से नहीं मिल सकते। अनुमतिपत्र तुम्हें गलती से दे दिया गया था। प्रवासी भारतवासियों के हितों की देखरेख करना हमारा काम है। एशियाई विभाग बना ही इसलिए है। तुम यहां क्या करोगे? अब तुम जा सकते हो।

अन्य प्रवासी भारतीय प्रतिनिधियों को अधिकारी ने रोके रखा और उन्हें खूब डांट पिलाई। बेचारे बहुत दुखी और असन्तुष्ट होकर वे बाहर आए।

प्रवासी भारतवासियों के प्रतिनिधि अपमान से तिलमिला उठे। सेठ तैयब हाजी ने कहा कि हमें प्रतिनिधि मंडल ले जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। भाई न जाएंगे, तो कोई न जाएगा। लेकिन मोहनदास करमचंद ने उन्हें समझाया कि प्रतिवेदन तो तैयार ही है। मैं न सही, कोई और उसे पढ़ देगा। प्रतिनिधि मंडल न गया, तो समझा जाएगा कि हमारी कोई न्यायपूर्ण मांग है ही नहीं।

तैयब हाजी भरे बैठे थे। वह उबल पड़े—यहां न्याय है ही कहां? हमें कौन-सा ऐसा हक दे रखा है, जिसे सरकार छीन लेगी। भाई, आपका अपमान सब प्रवासी भारतवासियों का अपमान है।

मोहनदास करमचंद गांधी ने ज्यों-त्यों कर अपने देशवासियों को शान्त किया और सलाह दी कि प्रवासी भारतीय ईसाई बैरिस्टर जार्ज ग्राडफ्रे को प्रतिनिधि बनाकर साथ ले जाएं। चेंबरलेन ने प्रतिनिधि मंडल से बात-बात में यह भी कहा कि जार्ज ग्राडफ्रे ने प्रतिनिधिमंडल की तरफ से प्रतिवेदन पढ़कर सुनाया, वरना एक ही शख्स की आवाज का बार-बार सुनाई पड़ना निरर्थक ही होता न? लेकिन प्रवासी भारतवासियों के प्रतिनिधिमंडल के हाथ कुछ न लगा। अफसरशाही का पल्ड़ा और भी भारी हो गया।

प्रिटोरिया के प्रवासी भारतवासियों की सभा में आवाज़ उठाई गई—गांधीभाई आपके कहने से बोअर युद्ध में हमने अंग्रेज़ों का साथ दिया, क्या यही दिन देखने के लिए ? अब क्या पाया हमने तब आपकी बात मानकर ? भाई अपने देश-भाइयों के ताने से चोट खाकर भी धैर्य साधे रहा। गांधी ने स्नेह से उन्हें समझाया कि बीती हुई को बिसार दो। आगे की सुध लो। खीझने या हाथ-पर-हाथ धरकर बैठने से काम नहीं चलेगा। हमें आज से ही काम में लग जाना होगा।

देश-भाइयों के मन में उत्साह का संचार हुआ। वह सब गांधीभाई का मुंह देखने लगे। गांधी ने कहा—यों तो वह काम पूरा हो गया, जिसके लिए मैं यहां आया था। लेकिन अब मैं सोचता हूं कि मुझे ट्रांसवाल में ही रहना चाहिए। जैसे पहले मैं नाताल में रहकर काम करता था, वैसे ही मुझे अब ट्रांसवाल में टिककर काम करना होगा। एक साल में भारत लौट जाने की आशा भी मुझे अब दिखाई नहीं देती। मुझे ट्रांसवाल की सुप्रीम कोर्ट में बैरिस्टर की हैसियत से नाम दर्ज कराने का प्रार्थनापत्र देना होगा। मुझे एशिया विभाग से टक्कर लेनी ही होगी। मुझे अपने अपमान की चिन्ता नहीं। लेकिन मैं अपने देशवासियों को रोज लुटते और बेइज्जत होते नहीं देख सकता। हम न चेते तो भारतीय प्रवासियों को निकाल दिया जाएगा या कुत्ते की जिन्दगी बितानी होगी।

ट्रांसवाल की सुप्रीम कोर्ट में बैरिस्टर गांधी की अर्जी पेश हुई। इस बार वकील संघ ने विरोध में आवाज़ उठाई। बैरिस्टर गांधी जोहान्सबर्ग में कार्यालय सजाकर और घर बसाकर रहने लगे। बम्बई से अपने बाल-बच्चों को भी उन्होंने पास बुला लिया। प्रैक्टिस जम गई। लोकसेवा का कार्य आगे बढ़ता रहा।

पहली टक्कर एशियाई विभाग के दो ऐसे अधिकारियों से हुई, जिनके विरुद्ध घूंस लेने के अनेक प्रमाण बैरिस्टर गांधी के पास जमा हो गए थे। वह सबूत लेकर पुलिस कमिशनर से मिले। उसने शिकायतों

की छानवीन की, गवाहों को वुलाकर उनके वयान लिए और जव उसे विश्वास हो गया कि वैरिस्टर गांधी के आरोप पक्के हैं, उसने भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ वारंट जारी कर दिए। उनमें एक तो डर के मारे फरार भी हो गया। मामला चला। लेकिन गोरे लोगों की जूरी ने अभियुक्तों को निर्दोष ठहराया। फिर भी एशियाई महकमे से वे दोनों अधिकारी अलग कर दिए गए। विभाग के अन्य अधिकारी और कर्मचारी भी संभल गए और उनके अत्याचारों से प्रवासी भारत-वासियों को थोड़ी-बहुत राहत मिली। कहना न होगा कि अपराधियों के प्रति वैरिस्टर गांधी के मन में वदले की भावना न थी। उनकी बेकारी के दिनों में वैरिस्टर गांधी ने उनकी सहायता भी की।

अन्याय, अत्याचार और अपराध के विरुद्ध संघर्ष करने में व्यक्तियों के प्रति द्वेष और दुर्भावना न रखना मोहनदास करमचंद गांधी का जीवन सिद्धान्त था। अच्छे कर्म की सराहना और वुरे काम की निन्दा होनी ही चाहिए। अच्छे कर्म करने वाला आदर का और बुरे कर्म करनेवाला दया का पात्र होता है। पापी से नहीं, उसके पाप से घृणा करो। इस सीधी-सी वात को समझकर ही हम इसका पालन नहीं कर पाते। यही कारण है कि दुनिया में घृणा का जहर फैलता रहता है। वुराई के मुकावले डटकर खड़े हो जाना और उससे जूझना सर्वथा उचित है, लेकिन अपने विरोधी व्यक्तियों से दुश्मनी रखना, स्वयं अपने आप से दुश्मनी करना है। सव एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की सन्तान हैं, इसलिए किसी भी जीव से शत्रुता करना या उसका जी दुखाना, उसके भीतर छिपी हुई ईश्वरीय शक्तियों से शत्रुता करना है और उन्हें दुख पहुंचाना है। ईश्वरी शक्तियां उसी व्यक्ति के अन्तर्तम तक सीमित नहीं हैं, सर्वव्यापक हैं, इसलिए एक व्यक्ति को आघात पहुंचाने से सम्पूर्ण विश्व को आघात पहुंचाना है।

स्वयं में और अन्य सव में एक अनन्य ईश्वर की शक्तियों को, और 'स्व' में सर्व और सर्व में 'स्व' को देखना ही मोहनदास करमचंद

गांधी का ध्येय वन गया था। इसी ध्येय को वह अपनी लोकसे
श्रेय वनाना चाहते थे।

गुण-दोप और शोषक-पोषक से भरे हुए जगत में सं
अनिवार्य है ही, किन्तु अद्वय-वोध के कारण यह संघर्ष अ
सत्याग्रह का ही रूप ग्रहण कर सकता है। स्वयं को अद्वय-वोध-
अहिंसक सत्याग्रही वनाने की दिशा में मोहनदास करमचंद
तीव्र गति से अग्रसर होने लगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्
जीतने के लिए उन्होंने स्वयं को ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और स
की उत्कट साधना में लगाया। अपने आदर्श को अक्षुण्ण रख
व्यवहार जगत में अतिशय क्रियाशील रहना कितना कठिन है,
कल्पना की जा सकती है। जगत से वैराग्य ले लेना अपेक्षाकृत
है, किन्तु जगत और जगदीश्वर दोनों से प्रेम निवाहना वहुत
है। जगदीश्वर के प्रति विशिष्टाद्वैतवादी दर्शन को अप
ईसाई ईसा को एकमात्र त्राणकर्त्ता और उपास्य मानते थे।
दास करमचंद गांधी का इससे मतभेद था। मध्ययुगीन भारतीय
ष्टाद्वैतवाद की सीमाओं का भी वह अतिक्रमण करते थे।
राम तुलसी और कवीर दोनों के या कहना चाहिए सव सन्तों के
थे। सर्व-धर्म-समन्वय की उनकी दृष्टि मध्ययुगीन नहीं, आ
थी।

जोहान्सवर्ग में मोहनदास करमचंद गांधी ने अपने अंतरंग
में निवृत्ति या त्याग के मार्ग को अपनाया, जिसका ध्येय
साक्षात्कार था। प्रवासी भारतवासियों की सेवा, शाकाहार का प्र
धार्मिक सत्संग और स्वाध्याय और कानूनी कारोवार यही
कार्य थे। उन्होंने राम को अपना सहारा मानकर वीमा की पा
रद्द करा दी, वड़े भाई को लिखकर संचित सम्पत्ति और सम्पत्ति-
से हाथ खींच लिया, यानी गृहस्थ से वानप्रस्थ वनने की ठान
दाम्पत्य जीवन में ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना शुरू किया। सहयो

मित्रों और अतिथियों के लिए उनके घर के द्वार पहले से ही खुले हुए थे। अब उन्होंने उनके पालक और वाली का पद भी ग्रहण कर लिया। अपने राजनीतिक सहकर्मियों के प्रति समभाव बरतने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया। अपने जीवन व्यवहार का आधार उन्होंने 'गीता' को बनाया।

प्रवृत्तियों में सर्वप्रमुख थी, भारतीय प्रवासियों की सेवा। इसके लिए मोहनदास गांधी ने श्री मदनजीत के प्रेस में पैसा लगाकर, और श्री मनसुखलाल नाज़र को सम्पादक के पद पर बिठा कर 'इंडियन ओपीनियन' पत्र निकालना शुरू किया। कहना न होगा कि देशभाइयों के इस मुखपत्र में पैसा, प्रतिभा और परिश्रम का अधिकांश गांधीभाई का था।

शाकाहार के प्रचार में अन्य उपायों के अतिरिक्त जोहान्सबर्ग में शाकाहारी भोजनालय को बनाए रखना आवश्यक प्रतीत हुआ। इस हेतु दूसरे से लेकर हजार पौंड उधार देने पड़े—कोई दो-तीन महीनों में ही मुझे ज्ञात हो गया था कि रकम वापस नहीं मिलेगी। इतनी बड़ी रकम खोने की मेरी शक्ति न थी। पैसे वापस नहीं मिले। मैंने पैसे भर दिए। एक मुवक्किल मित्र ने समझाया—भाई, यह आपका काम नहीं। सुधार के ऐसे कामों में मुवक्किलों के पैसे देने लगेंगे, तो मुवक्किल मर मिटेंगे। लेकिन आप अपनी गांठ के पैसे खोएंगे और भिखारी बनकर घर बैठेंगे। इससे आपके सार्वजनिक काम को धक्का लगेगा। सुधार के प्रति आग्रह और उत्साह के कारण बातों में आ जाना और धोखा खाना मोहनदास करमचंद गांधी के स्वभाव में था। इसलिए मुवक्किल मित्र की चेतावनी को गांठ बांध लिया। उन्होंने अपनी भूल को समझा और सुधारा।

मोहनदास करमचंद गांधी जब दस बरस पहले ट्रांसवाल में आए थे, तब उनका धार्मिक सत्संग प्रिटोरिया में मुख्यतः ईसाई बन्धुओं के साथ होता था। अब की बार जोहान्सबर्ग में थियोसोफी मतवालों

के साथ धार्मिक सत्संग अधिक हुआ। तब ईसाई बन्धु धर्मोपदेशक बनते थे और अब थियोसोफी के बन्धुओं ने मोहनदास करमचंद गांधी को अपना धर्मगुरु बनाना चाहा। किन्तु अपनी एकान्त साधना में लगे हुए मोहनदास करमचंद गांधी न तब ईसाई धर्मोपदेशकों के शिष्य बने, और न अब थियोसोफी मत के जिज्ञासुओं के गुरु। पर उनके सम्बन्ध स्निग्ध-मधुर रहे।

एकाएक अनुबंधमुक्त गिरमिटिया भारतीय प्रवासियों की बस्ती में प्लेग की महामारी फैल गई। इस बस्ती को 'कुली लोकेशन' कहा जाता था। बस्ती उठाई जाने वाली थी। सरकार से एवज़ाने में कुछ रकम पाने के लिए मुकद्दमे चल रहे थे। गांधीभाई सबके सलाहकार, अभिभावक और वकील थे। वे सब बैरिस्टर गांधी को भाई कहकर ही सम्बोधित करते थे। इस संबोधन के विषय में गांधी ने 'आत्मकथा' में लिखा है—सेठ अब्दुल्ला ने मुझे 'गांधी' नाम से पहचानने से इन्कार किया। वह मुझे 'भाई' कह कर पुकारने लगे। दक्षिण अफ्रीका में अन्त तक मेरा यही नाम रहा। लेकिन जब गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी मुझे 'भाई' कहकर पुकारते, तो मुझे उसमें विशेष मिठास मिलती थी।

मदनजीत जी 'इंडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने इस बस्ती में आए थे कि उन्हें महामारी की सूचना मिली। उन्होंने 'भाई' को सूचित किया और स्वयं एक खाली मकान का ताला तोड़कर, तेईस रोगियों को उसमें रखा। गांधीभाई ने म्युनिसिपल अधिकारियों को विशेष परिस्थिति में मकान का ताला तोड़े जाने की सूचना दी, अपने कार्यालय के चार कर्मचारियों का परिचर्या दल बनाया, प्रवासी भारतीय डाक्टर विलियम गाडफ्रे को बुलाया और रोगियों के पास पहुंच गए। डाक्टर गाडफ्रे भी खबर मिलते ही दौड़े आए और डाक्टर और नर्स दोनों का काम करने लगे। 'आत्मकथा' में कहा गया है कि—भावना शुद्ध हो, तो संकट का सामना करने के लिए सेवक और साधन मिल

ही जाते हैं। मेरे दफ्तर में चार हिन्दुस्तानी थे। उन्हें कारकुन कहो, साथी कहो, पुत्र कहो, मैंने उन्हें होमने का निश्चय किया। सुश्रूषा की वह रात भयानक थी। डाक्टर की हिम्मत ने हमें निडर बना दिया। चार नौजवानों की तन-तोड़ मेहनत और निडरता देखकर, मेरे हर्ष का पार न रहा। उस रात हमने किसी बीमार को न खोया।

अगले दिन रोगियों को एक म्युनिसिपल गोदाम खाली कराकर वहां भेजा गया। तीन रोगियों का उपचार मोहनदास करमचंद गांधी ने अपने हाथ में लिया। मिट्टी के उपचार से उनमें से दो बचे। एक इस उपचार से भी न बच सका। अन्य सब रोगी मर गए। अगले दिन जो नर्स आई थी, वह भी महामारी की शिकार हुई। अन्य सब कार्यकर्ता सकुशल रहे।

बस्ती खाली कराई गई और उसे भस्म कर दिया गया। जो नगदी बस्ती के लोगों ने गाड़कर रखी थी, उसे 'भाई' के पास जमा किया गया। छूतनाशक उपाय करने के बाद, मोहनदास करमचंद गांधी ने, जिसकी जैसी जमा-जथा थी, उसके नाम पर बैंक में जमा करा दिया। मोहन-दास करमचंद गांधी ने समाचारपत्रों में लिखा कि म्युनिसिपैलिटी का अन्याय है जो गरीबों की बस्ती पर सफाई इत्यादि के लिए न रुपया है, न समय।

इस पत्र का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। हैनरी पोलाक और जोसेफ डोक उन्हें इस पत्र के कारण मिले। हैनरी पोलाक मोहनदास करमचंद गांधी के सहयोगी, मित्र और साथी बने और जोसेफ डोक उनकी जीवनी लिखनेवालों में सर्वप्रथम थे।

महामारी के दिनों में सुश्रूषा में लगे हुए बैरिस्टर गांधी शाकाहारी भोजनालय में कई दिनों दिखलाई न दिए, तो उनके परिचित और शाम की सैर के साथी अल्बर्ट वैस्ट चिन्तित हुए। वह उनके दफ्तर गए। भेंट न हुई, तो सवेरे-सवेरे घर आए। अनुपस्थिति का कारण ज्ञात हुआ, तो

कहने लगे कि चाहो तो मुझे भी लोक सेवा में लगा दो। वैस्ट प्रेस चलाते थे। उन्हें 'इंडियन ओपीनियन' का काम संभालने के लिए डर्वन भेज दिया गया। रिपोर्ट आई कि प्रेस वहुत अव्यवस्थित है, स्थिति डांवां-डोल है। गांधी ने तुरन्त डर्वन की ओर प्रस्थान किया। रेलवे स्टेशन पर पोलाक ने उन्हें वक्त काटने के लिए एक पुस्तक दी, रस्किन की 'अंटु दिस लास्ट'। गांधी पुस्तक को रास्तेभर पढ़ते रहे। शाम को डर्वन पहुंचे। पुस्तक ने मन पर ऐसा गहरा प्रभाव जमाया कि "सारी रात नींद नहीं आई। मैंने पुस्तक में प्रतिपादित विचारों को अमल में लाने का इरादा किया। जिसने मेरे जीवन में तत्काल महत्व के परिवर्तन कराए, वैसी तो यही एक पुस्तक कही जा सकती है। वाद में मैंने 'सर्वोदय' नाम देकर इस पुस्तक (अंटु दिस लास्ट) का अनुवाद किया। मैं सर्वोदय के सिद्धान्तों को इस प्रकार समझता हूं—(एक) सब की भलाई में अपनी भलाई है। (दो) वकील और नाई, दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योंकि जीविका का अधिकार सबके लिए एक समान है। (तीन) सादा मजदूरी का और किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। पहली चीज़ को मैं जानता था। दूसरी को मैं धुंधले रूप में देखता था। तीसरी का मैंने विचार ही नहीं किया था। 'सर्वोदय' ने मुझे दीए की तरह दिखा दिया कि पहले में ही दूसरे दोनों सिद्धांन्त समाए हुए हैं। सवेरा हुआ और मैं इस पर अमल करने के प्रयत्न में लगा।"

बड़ा परिवार और बढ़ता हुआ कार्यक्षेत्र

खून के रिश्ते परिवार की सीमाओं को लांघ कर, मोहनदास करमचंद गांधी ने एक-से विचारों और आदर्शों के, एक-सी निष्ठा और आस्था वाले व्यक्तियों से नए नाते जोड़े और लोकसेवा की वृत्ति वाले सहयोगियों और सहकर्मियों का एक वहुत वड़ा परिवार वनाया। इस परिवार को वसाने के लिए ही 'फीनिक्स' की स्थापना हुई, रस्किन के 'अंटु दिस लास्ट' या सर्वोदय सिद्धांत को, कार्यरूप में परिणत करने के लिए, मोहनदास करमचंद गांधी ने डर्वन से लगभग तेरह मील दूर, फीनिक्स के रेलवे स्टेशन से अढ़ाई मील एक जायदाद पन्द्रह सौ पौंड में खरीदी और वहां अपने पहले आश्रम की स्थापना की। 'इंडियन ओपीनियन' का मुद्रण और प्रकाशन भी वहीं से होने लगा। अल्वर्ट वैस्ट और मगनलाल गांधी ने शनैः-शनैः इस कार्य को संभाल लिया। योजना का भरण-पोषण करने के लिए धन की आवश्यकता तो थी ही, जोहान्सवर्ग से मुवक्किलों का भी वार-वार वुलावा आता था, इसलिए कर्त्ता-धर्त्ता मोहनदास करमचंद गांधी को जोहान्सवर्ग वापस जाना पड़ा। वहां भी उनका एक वड़ा परिवार था, जिसमें उनके स्त्री-बच्चे तो थे ही, कार्यालय के देशी-विदेशी सहकारी और कारकुन भी सम्मिलित थे। अपने सहायक कारकुनों को गांधी अपने नौकर नहीं, वेटा-वेटी समझते थे।

अपनी स्टेनो-टाइपिस्ट मिस डिक को वैरिस्टर गांधी अपनी वेटी जैसा ही समझते थे। उसका विवाह उन्होंने कराया और स्वयं वेटी ...ाले लने। उवके जाने के वाद मिस स्टेशिन आई, जो अधिक वेतन लेना ...ी स्वीकार नहीं करती थीं। मैं पैसे के लिएनहीं, आपके आदर्श और ...कसेवा कार्य में सहयोग देने के लिए काम करती हूं। इस लड़की

ने भविष्य में प्रवासी भारतीय आन्दोलन में भी सहयोग दिया। जरूरत पड़ने पर पचास पौंड मांग कर लिया और मोहनदास करमचंद गांधी के भारत लौट आने के सात वर्ष वाद ऋण समझकर रकम लौटाई। अपनी इस तेजस्विनी पुत्री का पुण्य स्मरण गांधी जी ने 'आत्मकथा' में भी किया है।

पोलाक भी कुछ महीनों बाद बैरिस्टर गांधी के कार्यालय में काम करने लगे। वह गांधी परिवार के अन्यतम सदस्य वन गए। इस परिवार के पुरुष सवेरे साढ़े छह वजे उठकर आटे की चक्की चलाते थे। हाथ से चलने वाली यह अमरीकी चक्की बहुत भारी चलती थी। कम-से-कम दो लोग एक साथ काम पर लगते थे। पोलाक गांधी जी के जोड़ीदार वनते थे। बच्चे भी इस काम में साथ देते थे। इस काम में अधिक-से-अधिक आधा घंटा लगता था। डवल रोटी भी घर में ही पकाई जाती थी।

चक्की के वाद सवेरे सव व्यायाम करते थे। स्किपिंग या डोरी पर कूदने में मोहनदास करमचंद गांधी वहुत माहिर माने जाते थे। घर से दफ्तर लगभग छह मील दूर था। वहां पहुंचने के लिए वैरि-स्टर गांधी साइकिल पर या पैदल जाते। अधिकतर वह पैदल जाना ही पसन्द करते। साढ़े सात वजे घर से निकलकर, वह नौ वजे तक दफ्तर पहुंच जाते। चिट्ठियां पढ़कर साढ़े नौ वजे से एक घंटा पत्रों के जवाव लिखते और साढ़े दस वजे अदालत में जाते। एक वजे भोजन करते, जिसमें कार्यलय के सव कार्यकर्ता शामिल रहते। पांच वजे दफ्तर से घर जाते और शाम को सात वजे वृहत् परिवार के सब सदस्य साथ वैठकर भोजन करते। खाने के समय मृदु संभाषण और विनोद भी होता रहता। सव शाकाहारी थे और भोजन अधिकतर यूरोपियन ढंग का होता।

खाने के वाद वृहत् परिवार के सव सदस्य शान्त वैठते। गांधी जी गीता का पाठ करते और पोलाक श्लोकों का अंग्रेजी अनुवाद एडविन

आर्नल्ड की पुस्तक से पढ़ते जाते। गांधी जी श्लोकों का अर्थ और गूढ़ मर्म समझाते और फिर व्याख्यान पर चर्चा होती। यदि कभी अतिथि भी रहते, तो अन्य धर्मों और दर्शनों के बीच समानताओं पर बातचीत होती।

आवश्यकता पड़ने पर प्राकृतिक चिकित्सा, विशेषकर मिट्टी से उपचार किया जाता। वैसे सब सदस्य सामान्यतः स्वस्थ रहते। स्वावलम्बन, सहयोग, शारीरिक श्रम और समानता इस स्नेहपूर्ण पारिवारिक जीवन के विशेष गुण थे। मोहनदास करमचंद गांधी के घर में मेहमान आए दिन आते रहते। सौहार्दपूर्ण वातावरण में अजनबी भी घर के-से बन जाते। मोहनदास गांधी और कस्तूरबाई की छत्रछाया में वृहत् परिवार के सब सदस्य प्रसन्न रहते। कस्तूरबाई अपने लोकसेवक उदारमना पति की सब भांति सहधर्मिणी थीं। घर किसी वानप्रस्थ के आश्रम के समान था।

किन्तु कुछ वर्ष पूर्व डर्बन में पति-पत्नी के बीच इस बृहत् परिवार प्रणाली के कारण एक बार गहरा मतभेद और कहा-सुनी हो गई थी। तब डर्बन में भी बैरिस्टर गांधी के कारकुन घर के सदस्यों की तरह ही उनके साथ रहते थे। एक नए कारकुन तमिलभाषी प्रवासी भारतीय ईसाई थे, धर्म-परिवर्तन के पूर्व जिनकी जाति हिन्दुओं में निम्नतम मानी जाती थी। घर में रहने वाले सब लोग मल-मूत्र की सफाई स्वयं करते। जो इस विषय में चूक जाते, उनके लिए मोहनदास करमचंद गांधी स्वयं निःसंकोच भाव से भंगी बन जाते। लेकिन कस्तूरबाई से यह कैसे देखते बनता ? वह पति को हटाकर स्वयंसेवा में लग जातीं। लेकिन नीच जाति से ईसाई बने नए सदस्य के बारे में कस्तूरबाई को घिन आती। पति का आदेश हुआ कि उसकी भी सेवा करो। कस्तूरबाई की आंखें लाल हो गईं। आंखों में आंसू बहने लगे। पति की ओर सन्तप्त दृष्टि से देखते हुए, वह सेवाकार्य में लग गईं। गांधी जी ने गरज कर कहा—मेरे घर में रहना है, तो ऐसे नहीं

चलेगा। कस्तूरबाई का स्वाभिमान मर्माहत हुआ। वह बोलीं—तो धरा रहे तुम्हारा घर। मुझ से यह न होगा। पति को क्रोध आ गया। उन्होंने घर का द्वार खोला और पत्नी को घर से निकल जाने का हुकम दिया। कस्तूरबाई वज्राहत-सी ठिठक गईं। वह बोलीं—तुम नासमझी कर सकते हो, मैं नहीं। कुछ तो सोचा होता कि सात समंदर पार इस दूर देश में न मेरा पीहर, न और कोई सगे-संबंधी, मैं कहां जा सकती हूं। पर मेरा क्या मुझे घर से बाहर करोगे, तो आबरू तुम्हारी जाएगी। निकल जाओ कहते तुम्हें लाज भी नहीं आई। मोहनदास करमचंद गांधी पर घड़ों पानी पड़ गया। भारतीय नारीत्व के शील और सत्त्व के सामने लोकसेवी भावी महात्मा का दर्प चूर्ण हो गया। 'आत्मकथा' में इस घटना का मार्मिक वर्णन करते हुए उन्होंने अपनी सहधर्मिणी का लोहा माना है। रंइस मेंरंचमात्र सन्देह नहीं कि साध्वी माता पुतलीबाई यदि मोहनदास करमचंद गांधी की श्रद्धास्पद धर्मगुरु थीं, तो कस्तूरबाई टक्कर की सहधर्मिणी थीं। कस्तूरबाई भारतीय पातिव्रत की जीवन्त मूर्ति थीं। गांधी जी उनकी सामर्थ्य से भली-भांति परिचित हो चुके थे और अब वह उन्हें 'फीनिक्स' के वृहत्तर परिवार का भार सौंपना चाहते थे।

'फीनिक्स' की स्थापना सन 1905 में हुई। उसी वर्ष गोखले जी के द्वारा भारत में 'सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी' की स्थापना हुई। सेवक संघ का एक ध्येय था कि "भारत में सार्वजनिक सेवा के कार्यों को नैतिकता से अनुप्राणित करने की नितान्त आवश्यकता है।" यही ध्येय गोखले जी को राजनीति में अपना गुरु मानने वाले मोहनदास करमचंद गांधी का भी था।

'फीनिक्स' की देखरेख के लिए गांधी जी कस्तूरबाई को वहां भेजना चाहते थे। सन 1906 के जूलु विद्रोह के समय गांधी जी घायल जूलु विद्रोहियों की सेवा-सुश्रूषा के लिए एक प्रवासी भारतीय टोली के साथ जूलु प्रदेश में चले गए और जोहान्सबर्ग-स्थित उनका

परिवार कस्तूरबाई के साथ 'फीनिक्स' भेज दिया गया। इस विषय में निश्चिन्त होकर, मोहनदास करमचंद गांधी ने अपनी सुश्रूषाटोली के साथ जूलु प्रदेश की ओर प्रयाण किया। इस टोली में चौबीस प्रवासी भारतीय स्वयंसेवक थे। बैरिस्टर गांधी सार्जेन्ट-मेजर और टोली के नेता बनाए गए। उन्होंने देखा कि जिसे विद्रोह का नाम दिया गया था, वास्तव में वह लगानबंदी आन्दोलन था, जिसमें कोड़े मार-मार कर जूलु लोगों को धराशायी कर दिया जाता था। उनके घाव सड़ने लगते थे।

भारतीय सुश्रूषा-टोली को गोरों के घुड़सवार दल के पीछे-पीछे रोज बीस-पचीस और कभी-कभी चालीस मील पैदल कूच करना होता था। कुचले हुए जूलु लोगों की दशा देखकर, सार्जेन्ट-मेजर गांधी का जी भर आया। गोरे सैनिक घायल जूलु लोगों को देखकर हंसते और उनकी सुश्रूषा करने से भारतीय टोली को रोकते थे। प्रजा के भूमिजन और विदेशी सैनिक शक्ति की टक्कर में घायल मानवता के प्रति सक्रिय सेवाभाव ने मोहनदास करमचंद गांधी की संवेदना को बहुत व्यापक बना दिया। मन में यह विचार जड़ पकड़ने लगा कि सेवा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। सेवा मार्ग के पथिक के लिए सम्पूर्ण वसुधा ही एक कुटुम्ब है। बैरिस्टर गांधी के सेवाभाव से प्रभावित होकर पहले उनका विरोध करनेवाले उच्च सैनिक अधिकारी उन्हें धन्यवाद देने लगे और गोरे सिपाहियों ने जूलु घायलों की सुश्रूषा में उन्हें बाधा पहुंचाना बंद कर दिया। जूलु विद्रोह की समाप्ति पर मोहन-दास करमचंद गांधी को सेना से प्रशंसा और नाताल के गवर्नर से धन्यवाद के पत्र मिले। किन्तु कहीं अधिक महत्व की उपलब्धि तो यह थी कि गांधी ने स्वयं को सर्वात्मना सेवा के प्रति समर्पित कर दिया था। उन्होंने तन-मन को आत्मा का अनुगामी बनाकर, आजीवन पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत विधिवत् ले लिया। अपनी सुख-सुविधा के लिए धन-संचय न करने का क्रम तो पहले ही आरंभ हो चुका था। किन्तु अब

जीवन बिताने का संकल्प किया, जिसके लिए धन का मोहताज
ोना पड़े। अपने आदरणीय बड़े भाई को मोहनदास करमचंद
ने लिखा—मैं जिस कार्य में संलग्न हूं, उसे मैं अपने जीवन का
वार्य उद्देश्य मानता हूं। यदि मुझे अपने इस कार्य में मौत का भी
ना करना पड़े, तो मैं शांत भाव से उसे सहूंगा। भय का भाव
मन में घर नहीं कर सकता।

सर्वोदय के सिद्धान्त का आधार लेकर, जो 'फीनिक्स' स्थापित
था, वहां गांधी जी कुछ ही दिन रह पाए थे कि जोहान्सबर्ग से
सी भारतीय भाइयों का बुलावा आया—गांधीभाई तुरन्त आ
ए।

ट्रांसवाल में प्रवासी भारतीय फिर गोरों की भेद नीति के चक्र
ंस गए। उनसे कहा गया कि वह प्रवेश के पुराने अनुमतिपत्रों की
ह नए अनुमतिपत्र लें, जिसके लिए उन्हें दसों अंगुलियों की निशानी
होगी और शिनाख्त की और भी निशानी लिखानी पड़ेगी। इस
से घरों की स्त्रियों को भी मुक्त नहीं किया गया था। कहना
ोगा कि सभ्य देशों में ऐसा सलूक सिर्फ मुजरिमों के साथ किया
ा है। नागरिकों के साथ ऐसा बर्ताव कहीं नहीं होता।

मोहनदास करमचंद गांधी के प्रयत्नों से स्त्रियों को तो इस बंदिश
क्त कर दिया गया किन्तु आठ वर्ष से ऊपर के हर पुरुष को कानूनन
य करने की सरकारी तैयारियां होने लगीं। गोरों की सरकार का
कहना था कि वैध अनुमतिपत्रों के बिना, अनेक प्रवासी भारतीय
ग्र रूप से या जाली अनुमतिपत्र बनवा कर ट्रांसवाल में घुस आए
घुसपैठ की छानबीन के लिए प्रवासी भारतीय तैयार थे। वह
छा से अपने अनुमति पत्र बदलवाने को भी तैयार थे। किन्तु कानूनी
ग्रता से वे दसों अंगुलियों की निशानी देने को प्रस्तुत न थे।
गांधी जी मुकाबले की कोई भी कारवाई करने से पहले, सदा
झौते के हर संभव उपाय करते थे। किन्तु गोरों ने प्रवासी भारतीय

को बाध्य करने के लिए आर्डिनेंस को कानून का रूप दे दिया। अब एक ही उपाय शेष था कि लंदन जाकर प्रयत्न किया जाए, जिससे उपनिवेश के इस भेदभाव भरे कानून पर राजा के हस्ताक्षर न हो पाएं। गांधी जी अपने सहयोगी हाजी सेठ उस्मान अली के साथ लंदन गए। दादाभाई नौरोजी की सहायता से उन्होंने पार्लियामेंट में सदस्यों से भेंट की, समाचारपत्रों में वक्तव्य और पत्र छपवाए और उपनिवेश मंत्री को अन्याय के प्रति सजग किया। नतीजा यह हुआ कि ट्रांसवाल सरकार को मुंह की खानी पड़ी और काले कानून पर राजा के हस्ताक्षर न हो सकेंगे, ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा की।

किन्तु इस सफलता में फूले न समाने की कोई बात नहीं थी। आगामी वर्ष में ट्रांसवाल उपनिवेश से स्वायत्त शासनप्राप्त डोमीनियन बनने को था। तब वहां की सरकार को राजा के हस्ताक्षर की कोई दरकार न रहेगी। इसलिए बला केवल एक वर्ष के लिए ही टली थी।

सन 1907 में दक्षिण अफ्रीका को स्वायत्त शासन प्राप्त हो गया। जनरल बोथा, जो भावी प्रधानमंत्री समझे जाते थे, चुनाव के भाषणों में कहने लगे कि आगामी चार वर्षों में कुली लोगों को दक्षिण अफ्रीका से निकाल बाहर किया जाएगा। ट्रांसवाल की ब्रिटिश प्रोग्रेसिव पार्टी के नेता ने इसका समर्थन किया और कहा कि जिस दिन ट्रांसवाल में से एक-एक एशियावासी को निकाल बाहर कर दिया जाएगा, वह दिन अभिनंदनयोग्य कहलाएगा। जनरल स्मट्स तो जनरल बोथा के समर्थक थे ही। उनका कथन था कि "दक्षिण अफ्रीका में एशिया के लोग कैंसर की तरह फैल गए हैं। इस घातक बीमारी को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।"

ऐसे मन्सूबे बांधकर, ट्रांसवाल के चुनाव में बोथा और स्मट्स उतरे और सफल हुए। गत वर्ष प्रवासी भारतीयों के ब्रिटेन द्वारा पक्ष समर्थन से जले-भुने तो बैठे ही थे, प्रधानमंत्री बनकर जनरल बोथा ने अपने प्रबल समर्थक जनरल स्मट्स को उपनिवेश मंत्री बनाया।

इस प्रकार एशियावासियों को 'कैंसर' कहने वाला जनरल स्मट्स एशियावासियों का भाग्यविधाता बन गया। एशियावासियों पर दुर्भाग्य के बादल मंडराने लगे। ट्रांसवाल की स्वायत सत्ताप्राप्त विधानसभा ने तुरन्त ही काला कानून पास कर दिया। लन्दन की ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप करने में अब आनाकानी की। प्रवासी भारतीयों के लिए अपने पांवों पर खड़े होने के सिवा अब और कोई उपाय न रह गया। फिर भी प्रवासी भारतवासियों के नेता, मोहनदास करमचन्द गांधी ने ट्रांसवाल सरकार से अनुरोध किया कि कानून को लागू न किया जाए। यदि कानून से बाध्य न किया गया तो प्रवासी भारतीय स्वेच्छा से नए अनुमतिपत्न ले लेंगे। किन्तु इस बार भी उनके अनुरोध को ठुकरा दिया गया। इसका यही अर्थ था कि प्रवासी भारतीयों को कानून के जोर से अपमानित करना ही ट्रांसवाल सरकार का मुख्य उद्देश्य था। अपमानित होने के लिए प्रवासी भारतीय तैयार न थे। सत्याग्रह की तैयारियां होने लगीं और पंजीकरण के अन्तिम दिन प्रिटोरिया में प्रवासी भारतवासियों की एक विशाल सभा हुई। प्रधानमंत्नी जनरल बोथा ने समझ लिया था कि कि प्रवासी भारतवासी समाज की एकता को तोड़ना ही अब एकमात्न उपाय बच गया है। प्रवासी भारतवासियों से अच्छे संबंध रखने वाले और उदार दल के संसद सदस्य मिस्टर विलियम हास्किन को प्रवासी भारतवासियों की सभा में भेजा गया। जनरल बोथा के सन्देशवाहक बनकर, मिस्टर हास्किन ने चेतावनी दी कि कानून यूरोपियन संसद सदस्यों ने लगभग सर्वसम्मति से पास किया है और दक्षिण अफ्रीका के यूरोपियन निवासी भी कानून का सर्वथा समर्थन करते हैं। इसलिए प्रवासी भारतवासियों की खैरियत इसी में है कि वह कानून की अवहेलना न करें। जनरल बोथा की सरकार की शक्ति के आगे प्रवासी भारतीय ठहर नहीं पाएंगे। सर उठाने वालों को कुचल दिया जाएगा। सरकार से टक्कर लेकर, प्रवासी भारतीय समाज पिस

जाएगा। गांधी जी ने मिस्टर हास्किन के शब्द-शब्द का अनुवाद करके उनके सम्पूर्ण भाषण का अर्थ अपने देशवासियों को समझा दिया। भारतीय समाज के 'भाई' के नाते उन्होंने देशवासियों को काले कानून से वाध्य होकर, नए सिरे से पंजीकरण कराने का परिणाम भी समझा दिया। लेकिन सभा में उस दिन सवसे प्रभावशाली भाषण मोहम्मद अहमद कछलिया का हुआ। इस व्यापारी ने आन की रक्षा के लिए हर प्रवासी से भारतीय से अनुरोध किया कि काले कानून का विरोध करे। गांधी जी के तत्कालीन सहयोगी और साथी श्री हैनरी पोलाक का कहना है कि अपनी सच्ची लगन और सर्वस्व त्याग के कारण, मोहम्मद अहमद कछलिया प्रवासी भारतीय समाज में गांधी जी के वाद सवसे अधिक सम्मानित और भरोसे के आदमी समझे जाते थे। उन्होंने साफ ऐलान कर दिया कि चाहे जान चली जाए, वह काले कानून से वाध्य होकर, अपना पंजीकरण नहीं कराएंगे। सत्याग्रह ही एकमात्र उपाय रह गया।

'सत्याग्रह' शब्द का उपयोग तव तक न किया जाता था। सत्याग्रह के अर्थ में तव तक 'पैसिव रजिस्टेंस' प्रयुक्त था। किन्तु प्रवासी भारतवासियों के प्रति सहानुभूति रखनेवाले अंग्रेजीदां लोग इसका अर्थ 'लाचारी में निर्वल का विरोध' लगाते थे। गांधी जी आत्मवल के प्रयोग पर जोर देते थे, न कि लाचारी और निर्वलता पर। वह पशुवल और भौतिक शक्ति को आत्मवल से घटिया और कमजोर मानते थे। आत्मवल का एकमात्र अस्त्र सत्य और एकमात्र शस्त्र प्रेम है। सत्य और प्रेम सवकी आत्मा में है। इनके जाग्रत होने पर, न्याय सहज सिद्ध हो जाता है। यदि अन्यायी के प्रति प्रेमभाव रखकर, सत्य पर आग्रह किया जाए, तो अन्तत: इसकी मति अन्याय का संग छोड़ देगी। पशुवल और भौतिक शक्ति के मद में अन्यायी सत्याग्रही को पीड़ा पहुंचाएगा। सत्याग्रही का धर्म है कि वह प्रेमसहित पीड़ा को सहता रहे। परिणाम अन्तत: यही होगा कि परपीड़क दुराग्रही अन्यायी

हार मानेगा और उसके अन्त:करण में सत्य की जय होगी। इस प्रकार सत्याग्रह से पापी का उद्धार और पाप का प्रतिकार अवश्यंभावी है। गांधी जी के मतानुसार ईसा मसीह आत्मबलसम्पन्न सत्याग्रही थे, न कि 'लाचारी में निर्बल का विरोध प्रकट करने वाले' निरस्त्र और शक्तिहीन। गांधी जी आत्मबल के प्रयोग को ही भारत की विशेषता मानते थे। वह मानते थे कि आत्मबल-संयुक्त सत्याग्रही की शक्ति अमोघ होती है।

यह सत्य था कि दक्षिण अफ्रीका के गोरों ने प्रवासी भारतीयों को उस देश में बुलाया और बसाया था। यह सत्य था कि दक्षिण अफ्रीका की सम्पन्नता अधिकांश में प्रवासी भारतीयों के परिश्रम से संभव हुई थी और उनके चले जाने से गोरों का कारबार ठप्प हो जाता। यह सत्य था कि प्रवासी भारतवासियों को आरम्भ में आश्वासन दिया गया था कि उनके प्रति न्यायोचित और मानवोचित व्यवहार किया जाएगा। तब यह असत्य और अन्याय नहीं था, तो क्या था कि हजारों लोगों का देश, घर-बार और कारबार छुड़वा कर, अब उन्हें कैदियों की तरह कानूनन बाध्य किया जाए कि वह दसों अंगुलियों की निशानी लगाकर, फिर प्रवेश के अनुमतिपत्र प्राप्त करें ? प्रवासी भारतीय दक्षिण अफ्रीका के शासक नहीं बनना चाहते थे। वहां उन्हें मताधिकार भी प्राप्त न था। अब असत्य और अन्याय की हद हो गई थी कि काला कानून पास करके उन्हें कैदियों की तरह पंजीकरण कराने के लिए बाध्य किया जा रहा था। स्वेच्छा से यह भी करने को तैयार थे। लेकिन काले कानून की बाध्यता का उद्देश्य तो उन्हें नीचा दिखाना था। स्वयं को निर्बल समझकर, लाचारी में हाथ बांधे विरोध प्रकट करना 'पैसिव रजिस्टेंस' का आशय समझा गया। इसलिए आत्मबल के प्रयोग के लिए दक्षिण अफ्रीका में 'सत्याग्रह' का आविष्कार हुआ। महत्व के इस भेद को समझाते हुए गांधी जी ने कहा—सत्याग्रह का सही और सीधा अर्थ आत्मबल है। यदि हम स्वयं को निर्बल और

सत्याग्रही गांधी

लाचार मानकर, हाथ वांधे विरोध प्रकट करते हैं, तो लड़ाई में हम कभी अपनी या दूसरों की दृष्टि में वलवान नहीं वन सकते। फिर जब कभी अनुकूल अवसर आएगा, हम तुरन्त अन्य उपायों से काम लेने लगेंगे। इसके विपरीत, यदि हम सत्याग्रही हैं और आत्मवल के कारण स्वयं को बलवान समझकर सत्याग्रह करते हैं, तो इसके दो परिणाम निकलते हैं। एक तो यह कि आत्मवल के भरोसे सत्या-ग्रह करते रहने से हम नित्य प्रति अधिक वली वनते जाते हैं और दूसरा यह कि आत्मवल की दिनों-दिन वृद्धि से सत्याग्रह की सफलता में भी वृद्धि होती जाती है। तब हम मौका पाकर, सत्याग्रह से मुंह नहीं मोड़ते। लाचारी में हाथ वांधकर विरोध प्रकट करने में प्रेम की कोई गुंजाइश नहीं होती।

सत्याग्रह में घृणा का भाव तो नहीं ही है, प्रेम ही सत्याग्रह की प्राण-शक्ति है।

'फीनिक्स' से प्रकाशित 'इंडियन ओपीनियन' सत्याग्रह का मुख-पत्र बन गया। प्रवासी भारतवासियों की सुविधा के लिए यह साप्ता-हिक पत्र अंग्रेजी और तीन-चार अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होता था। इसमें सत्याग्रह की नीति और व्यवहार की वातें विस्तार से कही जाती थीं, क्योंकि सत्याग्रह की लड़ाई में गुप्त और गोपनीय कुछ न था। सत्याग्रह षडयंत्र नहीं, धर्मयुद्ध है। सत्याग्रह के इस मुखपत्र को गांधी जी ने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह संग्राम के लिए अत्यन्त उपयोगी और शक्तिशाली शस्त्र' कहा है। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीय, स्थानीय गोरे शासक, देशवासी भारतीय नेता और लन्दन में ब्रिटिश साम्राज्य के कर्णधार इस पत्र को ध्यान से देखते थे।

अवसर देखकर गोरे अधिकारियों ने कुछ साधारण-से प्रवासी भारतवासियों को नोटिस देकर, मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया। उनसे कैफियत तलव की गई कि नया पंजीकरण उन्होंने क्यों नहीं कराया है और उन्हें ट्रांसवाल से क्यों न निकाल दिया जाए। उन्हें निष्कासन का आदेश दिया गया और आदेश का उल्लंघन करने के लिए जेल भेज दिया गया। गांधी जी ने चुनौती दी कि नेता की हैसियत से मुझे जेल भेजा जाए। गोरी सरकार भी समझ गई कि डरा-धमका कर वह सत्याग्रही संघ को न दवा सकेंगे। गोरी सरकार ने दमन चक्र को तेजी से घुमाना शुरु किया।

10 जनवरी सन 1908 के दिन वैरिस्टर गांधी को उसी अदालत के कठघरे में मुल्जिम की हैसियत से खड़ा किया गया, जहां वह मान-मर्यादा के साथ वैरिस्टरी किया करते थे। मजिस्ट्रेट भी शरमाया। उसने उन्हें औरों की अपेक्षा हल्की सजा दी। लेकिन सत्याग्रह के नेता मानने वाले कव थे। उन्होंने स्वयं सजा वढ़ाने का आग्रह किया। गांधी जी जेल भेज दिए गए। सत्याग्रह आंदोलन ने

और भी जोर पकड़ा। ट्रांसवाल की सरकार के विरुद्ध इंग्लैण्ड और भारत में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। ट्रांसवाल के मंत्री चिंता में पड़ गए। जिन प्रवासी भारतीयों को वह बोदा और चरित्रहीन समझते थे, उनकी दृढ़ता और नैतिक शक्ति ने गोरे शासकों को पसोपेश में डाल दिया। जनरल स्मट्स ने अपने कैदी बैरिस्टर गांधी को प्रिटोरिया जेल से जोहान्सबर्ग की जेल में भेजा, जहां उन्हें मशक्कत का काम भी दिया गया। हब्शी कैदियों के साथ रहते हुए, उन्होंने जोहान्सबर्ग की जेल में मैला भी साफ किया। किन्तु स्वेच्छा से कष्ट और असुविधा भोगते हुए भी वह दिनोंदिन अधिक धैर्यवान और प्रसन्नचित्त दिखाई दिए। और एक दिन जनरल स्मट्स ने 'ट्रांसवाल लीडर' के सम्पादक मिस्टर कार्टराइट के हाथ सन्देश भेजकर समझौते के लिए अपने पास बुला भेजा।

●

धोखा और जीवन जोखों

सन उन्नीस सौ आठ, जनवरी की वही तीस तारीख, जिस तारीख में चालीस वर्ष बाद, महात्मा गांधी का देहपात हुआ, जनरल स्मट्स से गांधीजी की भेंट की तारीख थी। जनरल स्मट्स ने समझौता करके धोखा दिया और समझौते की शर्त से असन्तुष्ट और उत्तेजित होकर, एक जोशीले पठान ने गांधी जी को लगभग मार ही डाला।

'ट्रांसवाल लीडर' के उदारमना सम्पादक श्री कार्टराइट के माध्यम से समझौते की मुख्य शर्त यह थी कि प्रवासी भारतवासी यदि स्वेच्छा से रजिस्ट्री या पंजीकरण करा लें, तो काला कानून रद्द कर दिया जाएगा। पंजीकरण की विधि भी सरकार और प्रवासी भारतीय समाज के बीच तय कर ली जाएगी। जनरल स्मट्स ने गांधी जी से मिलते ही कहा कि समझौते की शर्तें सरकार ने स्वीकार कर ली हैं और बैरिस्टर गांधी को तत्काल रिहा किया जाता है।

रिहा होने के बाद गांधीजी को अपने खर्च पर प्रिटोरिया से जोहान्सबर्ग जाना था। उन्होंने जनरल स्मट्स के सेक्रेटरी से आवश्यक रकम उधार ली और जोहान्सबर्ग पहुंचे। स्टेशन से वह सीधे ही उस स्थल पर गए, जहां सार्वजनिक सभा में सत्याग्रह की शपथ ली गई थी। मध्य रात्रि के कुछ बाद प्रवासी भारतीयों की सभा हुई, जिसमें लगभग एक हजार देशवासी उपस्थित थे। बैरिस्टर गांधी ने समझौते की बात बतलाई और सलाह दी कि हमें स्वेच्छा से पंजीकरण करा लेना चाहिए, जिससे साबित हो जाए कि ट्रांसवाल में कोई भारतीय चोरी-छिपे नहीं आया है। स्वेच्छा से पंजीकरण कराते ही काला कानून उठा लिया जाएगा।

गांधी जी ने बोलना समाप्त ही किया था कि सभा में उपस्थित एक पठान ने अपने नेता से जवाब-तलब किया—"तुम्हींने ने कहा था कि दसों अंगुलियों की निशानी देना अपमान की बात है, क्योंकि कैदियों से ही ऐसा सलूक किया जाता है? हम ऐसा हर्गिज न करेंगे, तुम्हीं ने तो यह ऐलान कराया था। तब की और अब की तुम्हारी जुबान एक नहीं है, क्यों?"

गांधी जी ने उसे समझाया कि कानून के जोर पर अगर हमें दस्त-खत करने को भी मजबूर किया जाए, तो हम राजी न होंगे। लेकिन अब मजबूरी की बात नहीं है। समझौते के बाद हालात बदल गए हैं। यह वैसी ही बात है, जैसे कोई मार-मारकर सलाम करने के लिए मजबूर करे और मैं सलाम करने से इन्कार करूं। लेकिन अपनी मर्ज़ी से किसी को अपना भाई-बिरादर समझ कर मैं सलाम कर सकता हूं। इसमें बेइज्जती की कोई बात नहीं है। बल्कि ऐसा करने में मेरी भल-मनसाहत ही जाहिर होगी।

गांधी जी की बात से पठान को सन्तोष न हुआ। वह छूटते ही बोला—"हमने सुना है कि तुमने कौम से धोखा किया है और उसे जनरल स्मट्स के हाथों पन्द्रह हजार पौण्ड में बेच दिया है। हम दसों अंगुलियों की निशानी हर्गिज न देंगे और न किसी और को ही ऐसा करने देंगे। मैं कसम खाकर कहता हूं, अल्लाह गवाह है, कि जो भी रजिस्ट्री कराने में अगुवा बनेगा, उसे मैं जीता न छोड़ूंगा।"

गांधी जी ने उसे शान्त भाव से समझाया कि जो दसों अंगुलियों की निशानी न देना चाहेंगे, उन्हें मजबूर न किया जाएगा। मैं उनकी कसम तुड़वाए बिना भी, उनकी रजिस्ट्री कराऊंगा। लेकिन निर्भय होकर, गांधी ने यह भी कहा—"मेरे दोस्त ने जान लेने की धमकी दी है। यह रवैया मुझे नापसन्द है। मैं इस बात को भी बेजा समझता हूं कि कोई शख्स अल्लाह के नाम पर किसी को मार डालने की कसम खाए। समझौते के लिए जिम्मेदार मैं हूं, इसलिए भी, और कौम के

खिदमतगार की हैसियत से भी, अपना फर्ज समझता हूं कि मैं सबसे पहले अपनी रजिस्ट्री कराऊं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि उसकी मेहरबानी से मैं अपना फर्ज पूरा कर सकूं। मुझे इसका कोई दुख न होगा कि मैं बीमारी से या और किसी तरह अपाहिज होकर मरने की जगह अपने किसी भाई के हाथ से मारा जाऊं। उस हालत में भी अगर मैं अपने दिल को अपनी जान लेने वाले की तरफ नाराजी और नफरत से अछूता रख सका, तो मेरा भला ही होगा और मुझ पर हाथ उठाने वाले को भी यकीन हो जाएगा कि मैं निर्दोष हूं।"

पठानों की गिनती प्रवासी भारतवासियों में ही होती थी। ट्रांसवाल में उनकी संख्या पचास के लगभग थी और उनमें से कुछ लोग बैरिस्टर गांधी के मुवक्किल भी थे। आंदोलन में उन्होंने उत्साह से भाग लिया था। वे सीधे, सच्चे और बहादुर थे। किन्तु वे लोग आसानी से भड़काए जा सकते थे। समझौते की शर्तों से उनका नाराज होना समझ में आ सकता है। लेकिन जो बात समझ में नहीं आती, वह यह है कि उन्होंने बैरिस्टर गांधी के पन्द्रह हजार पौण्ड पर जनरल स्मटस के हाथ बिक जाने की बात कैसे मान ली? लगता है कि किसी सत्याग्रहविरोधी कूटनीतिज्ञ ने चुपचाप यह चाल चली थी कि इधर गांधी जी समझौता करें और उधर उनकी पीठ पीछे उनके विरुद्ध प्रचार किया जाए कि उन्होंने पन्द्रह हजार पौण्ड घूंस खाकर कौम के हितों को बेच कर शर्मनाक शर्तों पर समझौता कर लिया। आन रखने वाले भोले-भाले पठानों को भड़काना बहुत मुश्किल काम न था। नेता की हड्डी-पसली तुड़वा कर, आंदोलन को तोड़ने की चाल बहुत गहरी थी और उसका परिणाम भी बहुत घातक सिद्ध होता, अगर मारने वाले से बचाने वाले के हाथ बड़े न होते।

मोहनदास करमचन्द गांधी को अपने विरुद्ध झूठे आरोप का खण्डन करने की आदत न थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि सांच को आंच नहीं आती। वह विनयशील होते हुए भी

अत्यन्त स्वाभिमानी थे। अपनी सफाई देना उन्हें रुचिकर न था।

सभा में लगभग सर्वसम्मति से समझौते की शर्तें स्वीकार कर ली गई थी। सभा विसर्जित होते ही गांधी जी जोहान्सबर्ग की जेल में चले गए और वहां से अपनी, अपने साथियों की विधिवत् रिहाई के बाद घर लौटे। स्वेच्छा से रजिस्ट्री कराने की तैयारी होने लगी और इस कार्य में सर्वप्रथम रहने के लिए, बैरिस्टर गांधी 10 फरवरी, सन 1908 के दिन सबेरे दस बजे रजिस्ट्री कराने अपने कार्यालय से निकले। उनके साथ अन्य कुछ सत्याग्रही कार्यकर्ता भी थे। जब रजिस्ट्री का दफ्तर पास आया, मीर आलम पठान ने बैरिस्टर गांधी से पूछा—"आपका क्या इरादा है?" गांधी जी ने स्नेह से उत्तर दिया—"मैं तो दसों अंगुलियों की निशानी देकर रजिस्ट्री कराऊंगा। लेकिन अगर आप चाहेंगे तो अंगूठा निशानी से ही आपकी रजिस्ट्री करा दूंगा।" उनका यह कहना था कि मीर आलम ने गांधी जी पर लाठी

उनका यह कहना था कि मीर आलम ने गांधी जी पर लाठी से वार किया। वह 'हे राम!' कहते हुए गिर पड़े।

से वार किया । वह 'हे राम!' कहते हुए गिर पड़े । पत्थर से टकरा कर माथा लहु-लुहान हो गया और पैने पत्थरों की कोर से मुंह पर जख्म लगे । मीर आलम और उसके साथियों ने लाठी चलाना जारी रखा । ईसप मियां और तम्बी नायडू ने बीच में आकर, वार अपने ऊपर लिए । शोरगुल सुनकर कुछ राहगीर भी घटनास्थल पर पहुंच गए, जिन्हें आते देख मीर आलम और उसके साथी भाग खड़े हुए । गोरों ने उनका पीछा किया, पकड़ा और पुलिस के हवाले कर दिया ।

गांधी जी को पास के एक दफ्तर में ले जाया गया । होश आते ही उन्होंने रजिस्ट्रार से कहा कि दसों अंगुलियों की उनकी निशानी तुरन्त ले ली जाए । नेता की हैसियत से सर्वप्रथम रजिस्ट्री कराने की वह प्रतिज्ञा कर चुके थे, जिसे वह जीते-जी पूरा करना चाहते थे । उस समय रजिस्ट्री करने वाले अधिकारी की आंखें भर आईं थीं । डाक्टर ने जख्मों को सिया । गांधी जी के प्रशंसक और सर्वप्रथम जीवनी लेखक रैवरैन्ड जोसेफ जे डोक नें आग्रह किया कि बैरिस्टर गांधी डोक दम्पत्ति को सेवा-सुश्रूषा का गौरव दें और उनके घर कुछ दिनों रहें । डाक्टर ने भी इसकी अनुमति दे दी, लेकिन ताकीद की कि एक सप्ताह तक पूर्ण विश्राम लें ।

गांधी जी को चैन कहां ? उन्होंने एटार्नी जनरल को तार दिलवाया कि कृपया मीर आलम और उसके साथियों को रिहा कर दिया जाए, क्योंकि वे निर्दोष हैं । एक वक्तव्य प्रवासी भारतीय समाज के नाम प्रकाशित कराया कि मेरे रक्त से सिंच कर एकता का वृक्ष और हरियाला हो । आक्रमणकारी निर्दोष हैं । जो होना था, सो हो चुका है । कुछ ही दिनों में मैं काम पर लौट आऊंगा ।

डोक परिवार के सब सदस्य आग्रह कर रहे थे कि गांधीजी विश्राम करें । "एक शर्त पर", गांधी जी ने मुस्करा कर कहा, "बालक आलिव डोक 'लीड काइंडली लाइट' भजन सुनाए ।" भजन सुनने के बाद गांधी जी आराम से सो गए । रैवरेंड डोक को कुछ मास पूर्व

की एक घटना का स्मरण आया। उन्होंने गांधी जी से भेंट होने पर तव पूछा था—अपने सिद्धांतों के लिए आप किस अंश तक वलिदान देने को प्रस्तुत हैं? "मैं चाहे जव प्राणों की आहुति देने को तैयार हूं। सत्य और अहिंसा के लिए मैं कुछ भी करने में पीछे न हटूंगा।" रैवरैंड डोक को विश्वास हो गया कि उनके अतिथि, सोते-जागते सब समय अपने प्रभु के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं।

दस दिन के बाद गांधी जी अपने सहयोगी हैनरी पोलाक के घर चले गए, जिसे लगभग एक वर्ष पूर्व अभिभावक और सहवाला वनकर गांधी जी ने ही वसवाया था। पोलाक पैसे की तंगी के कारण जव विवाह करने में असमर्थता प्रकट रहे थे, तब गांधी जी ने ही अपने सहयोगी से कहा था कि प्रेम में कमी हो तो और बात है, किन्तु धन की कमी से विवाह न करना गलत है। पोलाक विवाह के वाद वहुत दिनों गांधी जी के परिवार के अभिन्न अंग वनकर रहे। यों भी पोलाक गांधी जी के कार्यालय में ही काम करते थे।

गांधी जी जिन दिनों पोलाक दम्पति के घर आरोग्य लाभ कर रहे थे, तभी उनमें यह सामर्थ्य पैदा हुई कि वह जब चाहें कुछ देर गहरी नींद ले लें और घड़ी में स्वस्थ होकर फिर काम में लग जाएं।

गांधी जी ने फिर से अपना नियमित काम-काज शुरु किया ही था कि नाताल से सूचना मिली कि समझौते के सम्बन्ध में वहां भी प्रवासी भारतवासियों के बीच शंका फैल रही है। गांधी ने डर्बन की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुंचने पर मित्रों ने उन्हें समझाया कि सार्वजनिक सभा हुई तो 'भाई' के विरुद्ध आवाज़ उठेगी और कुछ लोग शायद हमला भी कर बैठें। गांधी जी ने कहा—"सेवक काम से आंखें कैसे चुरा सकता है? मालिक का हुक्म हो और सेवक डर के मारे हाजिर न हो, तो वह सेवक कैसा? निस्वार्थ सार्वजनिक सेवा का कार्य तलवार की धार पर चलने जैसा ही है। जनता की वाहवाही लूटना और निन्दा से कतराना, यह सेवक को शोभा नहीं देता। जीवन में

अनेक परिवर्तन होते हैं, वैसा ही लेकिन एक बड़ा परिवर्तन मौत को भी समझना चाहिए। मौत जब चाहे, आए। रही मेरी बात, तो मुझे सत्य के पथ पर चलते हुए, एक सत्याग्रही के नाते अकेले ही मौत का सामना करते हुए बहुत सुख होगा।"

गांधी जी ने आग्रह करके सार्वजनकि सभा कराई और ठीक समय पर वह सभा में उपस्थित भी हुए। समझौते के बारे में उन्होंने विस्तार से सब बातें समझाईं और प्रश्नोत्तर से लोगों का शंका समाधान भी किया। सभा समाप्त होने को ही थी कि बड़ी लाठी लिए पठान मंच की ओर लपका। उसी समय संयोग से रोशनी गुल हो गई। कार्यकर्ताओं ने गांधी जी को अपने बीच में ले लिया और पारसी रुस्तमजी ने तुरन्त पुलिस को सूचना दी। पुलिस ने गांधी जी को सुरक्षित स्थान तक पहुंचाया।

अगले दिन गांधी जी ने पठानों से मिलने का आग्रह किया। वह पठानों से मिले भी, लेकिन उनको वह अपनी बात समझाने में सफल न हो सके। पठानों के मन में यह बात घर कर गई थी कि गांधी ने कौम के साथ धोखा किया और जनरल स्मट्स से सौदा करके अपने आपको बेच दिया है। मीर आलम और उसके साथियों को सरकार ने रिहा नहीं किया था। बैरिस्टर गांधी को फौजदारी के गवाह बनाकर भले ही अदालत में पेश न किया हो, लेकिन पठानों पर मुकदमा चला और उन्हें तीन-तीन महीने की सख्त कैद की सजा भी दी गई। पठान इससे भी उत्तेजित थे।

सत्याग्रही कार्यकर्त्ताओं ने गांधी जी की एक न सुनी और उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध जारी रहा। जब वह 'फीनिक्स' में कुछ दिनों ठहरे, तब भी जैक मुदाले जैसे उस्ताद मुक्केबाज उनके साथ रहे।

'फीनिक्स' के शांत वातावरण में गांधी जी ने समझौते के समर्थन और शंकाओं के निवारण में एक लेख 'इंडियन ओपीनियन' में लिखा। सत्य की आवाज साथियों के दिलों तक पहुंची। परिणाम यह हुआ

कि प्रवासी भारतीय समाज के लगभग सभी सदस्यों ने स्वेच्छा से अंगुलियों की निशानी देकर, अपनी रजिस्ट्री करा ली। ट्रांसवाल की सरकार को भी मानना पड़ा कि "प्रवासी भारतीयों ने तो समझौते की अपनी शर्तों को पूरा कर दिखाया है।"

लेकिन ट्रांसवाल की गोरी सरकार ने अपनी शर्तों का पालन करने से इन्कार कर दिया। जनरल स्मट्स ने कह दिया कि मैंने कानून को वापस लेने की शर्त की ही न थी। गांधी जी को अचम्भा हुआ। मध्यस्थ मिस्टर कार्टराइट भी अचम्भे में पड़ गए।

मोहनदास करमचन्द गांधी ने शान्ति से इस आघात को सह लिया और सत्याग्रही सम्मेलन की बैठक बुलाई। सभा में उन्हें अनेक साथियों से यह ताना सुनना पड़ा कि भाई आप बहुत सीधे हैं और बहुत जल्दी लोगों की बातों में आ जाते हैं। गांधी जी ने शांत भाव से मुस्कराते हुए अपनी स्वाभाविक शैली में कहा—"जिसे आप मेरी सिधाई और बातों में आ जाना कहते हैं, वह मेरे स्वभाव में है। हमें मनुष्य मात्र का विश्वास करना चाहिए, मैं ऐसा मानता हूं। मैं जैसा हूं, वैसा ही रहूंगा। आप मेरे गुणग्राहक हैं, तो मेरे अवगुणों को भी आपको स्वीकार करना ही होगा।"

गांधी जी ने अपने सत्याग्रही सहयोगियों को समझाया कि जो हो गया, सो हो गया। सत्याग्रह आंदोलन फिर छिड़ सकता है, इसके लिए हमें तैयार रहना होगा। लोग साथ देंगे या नहीं, इस संशय में पड़ने से भला न होगा। हम अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहेंगे, तो और लोग भी कर्तव्य के प्रति जागरूक होंगे और आगे आएंगे।

इस बार भी संघर्ष से पूर्व वह हर शांतिपूर्ण उपाय से झगड़े को निपटाना चाहते थे। कार्टराइट और हास्किन जैसे प्रतिष्ठित यूरोपियन बीच में पड़े, लेकिन जनरल स्मट्स टस से मस न हुए। यूरोपियनों के आग्रह करने पर, जनरल स्मट्स ने टका-सा जवाब दे दिया कि जब तक ट्रांसवाल में नाममात्र को एक भी भारतीय ऐसा है,

जिसने रजिस्ट्री नहीं करा ली है, तब तक कानून रद्द नहीं किया जा सकता। यूरोपियन मित्रों ने भी जवाब दे दिया कि जनरल स्मट्स के हठ पकड़ लेने पर, उन्हें कोई भी कुछ समझा नहीं सकता। तब गांधी जी ने 'इंडियन ओपीनियन' पत्र में एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था— 'धोखा'। लेख में समझौते का विस्तार से विश्लेषण किया गया। उल्लेख किया गया कि भारतीय समाज ने शर्तों का पूर्णतः पालन किया है और अब ट्रांसवाल सरकार की बारी है जिसके लिए दस अगस्त तक का समय दिया गया। कहा गया कि सरकार ने कानून वापस न लिया तो "प्रवासी भारतवासी समाज जेल जाने के लिए निर्भीकता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत है।" इसी आशय के अनेक पत्र भी सरकार की सेवा में भेजे गए। किन्तु जनरल स्मट्स ने किसी का जवाब न दिया। गोरी सरकार ने इसे लड़ाई का ऐलान समझा और गोरे नागरिकों की त्यौरियां चढ़ गई—"अच्छा, प्रवासी भारतीयों की यह मजाल कि हमारी विधानसभा और सरकार को वे चुनौती दें?" कुछ ऐसे भी यूरोपियन थे, जिन्होंने भारतवासियों की हिम्मत की सराहना की और उन्हें बधाई दी।

10 अगस्त, सन 1908 के दिन, अवधि समाप्त होने से दो घण्टा पहले ही जोहान्सबर्ग में प्रवासी भारतीयों की सभा जुड़ी हुई थी। प्रतीक्षा थी सरकारी सूचना की। आखिर तार आया, जिसमें सरकार ने प्रवासी भारतवासियों के रुख पर दुख प्रकट किया और कानून वापस लेने के बारे में अपनी असमर्थता बताई।

समझौते के अनुसार प्राप्त नए अनुमतिपत्र हजारों की संख्या में एकत्र किए गए। कार्यक्रम था उनकी होली करने का। गांधी जी ने घोषणा की कि जो चाहें, अपने अनुमतिपत्र अब भी वापस ले सकते हैं। लेकिन सारा समाज गांधी जी के साथ था। कौम ने अपने नेता के प्रति पूर्ण विश्वास प्रकट किया। सत्याग्रह का प्रस्ताव निर्विरोध पास हुआ। हर्ष-ध्वनि के बीच, मीर आलम भीड़ को चीरता हुआ

सामने आया। वह तभी जेल से रिहा किया गया था, वह मंच पर चढ़ा और उसने गांधी जी से माफी मांगी। उसने नया अनुमतिपत्र तो निकलवाया ही नहीं था, पुराने अनुमतिपत्र को उसने नेता की ओर बढ़ाया। गांधी जी ने प्रेम से उसका हाथ अपने हाथ में लिया और आश्वासन दिया कि उसके प्रति मन में कभी कोई असन्तोष था ही नहीं।

हजारों अनुमतिपत्र भट्ठी में झोंक दिए गए। जो भारतीय हाथ खींचे, तब तक दूर खड़े थे, वह भी आगे बढ़े और अपने-अपने सर्टिफिकेट स्वाहा करने लगे। तुमुल हर्ष-ध्वनि के साथ सत्याग्रह यज्ञ का शुभारम्भ हुआ। उपस्थित एक विदेशी पत्रकार ने इस दृश्य की तुलना अमरीका के स्वातंत्र्य संग्राम में 'बोस्टन टी पार्टी' की घटना से की—"तेरह हजार निःशस्त्र प्रवासी भारतीय एक शक्तिशाली सरकार को चुनौती दे रहे थे। प्रवासी भारतीय के अस्त्र-शस्त्र हैं सत्य पर आग्रह और भगवान के न्याय में दृढ़ विश्वास। जिनके लिए मनुष्यता, नैतिकता और ईश्वरीय न्याय की व्यवस्था संसार से उठ नहीं गई है, उन्हें इन अस्त्र-शस्त्रों की सामर्थ्य में पूरा विश्वास है। किन्तु वे लोग जो इन बातों में विश्वास नहीं करते, उनके लिए एक परम शक्तिशाली सशस्त्र सरकार के सामने मुट्ठी भर भारतीयों की गिनती ही क्या है?"

सेठ मोहम्मद अहमद कछलिया को गोरे व्यापारियों ने चेतावनी दी कि सत्याग्रह आंदोलन से अलग हो जाओ या तुरन्त उधार का भुगतान करो। गांधी जी बीच में पड़े और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि कछालिया असासादार व्यापारी हैं और अपनी देनदारी की पूरी-पूरी भरपाई कर सकते हैं। लेकिन गोरे व्यापारी तो सत्याग्रही भारतीय व्यापारी को तोड़ना चाहते थे। सेठ मोहम्मद अहमद ने साफ कह दिया—"चाहे जो करो, मैं सत्याग्रह से मुंह नहीं मोड़ सकता। मेरे लिए यह धर्म, कौम की आन और अपनी इज्जत का सवाल है।" गोरे व्यापारी सेठ मोहम्मद अहमद को दिवालिया बना देने पर तुले

थे। अनेक भारतीय व्यापारी मदद देने के लिए सामने आए, लेकिन सेठ मोहम्मद अहमद ने गोरे व्यापारियों के दुराग्रह का जवाब सत्याग्रह से देने पर जोर दिया और वह लुट गए। उनकी सम्पत्ति की नीलामी से कर्जा पूरा-पूरा पट गया। लेकिन सत्याग्रही सेना में उनका पद इतना ऊंचा उठा कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय नेताओं में उनका स्थान गांधी जी के बाद था।

मुख्य प्रश्न के साथ सत्याग्रह आंदोलन की लपेट में अब प्रवेश सम्बन्धी कानून भी आ गया था। नाताल के प्रवासी भारतीयों के सत्याग्रही जत्थे ट्रांसवाल में प्रवेश करने लगे थे। सेठ दाऊद मोहम्मद और पारसी रुस्तमजी ने उनका नेतृत्व किया था। उन्हें निकाल दिया गया। लेकिन वे ट्रांसवाल में फिर घुसे। उन्हें पचास पौण्ड जुर्माने या एक मास की कड़ी कैद की सजा दी गई। उन्होंने जेल जाना मंजूर किया। ट्रांसवाल के भारतीय समाज ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया और वे नए उत्साह से सत्याग्रह आंदोलन में आगे बढ़े। गोरी सरकार के जेलखाने भरने लगे।

जनरल स्मट्स ने कुछ उदारमना यूरोपियनों के समझाने-बुझाने पर तिनक कर कहा—"आप से ज्यादा अच्छी तरह से मैं जानता हूं गांधी को। वह बहुत चालाक आदमी हैं। मैं एक इंच पीछे हटूंगा, तो वह एक कोस आगे बढ़ेंगे।" गांधी जी ने जनरल स्मट्स को चुनौती दी कि जो आपसे करते बने, करो।

गांधी जी को दूसरी बार जेल जाना पड़ा। इस बार भारतीय कैदियों के साथ बहुत ज्यादा सख्ती का बर्ताव किया गया। भारतीय व्यापारियों को लाखों की क्षति उठानी पड़ी। सैकड़ों सत्याग्रहियों के घर-बार उजड़ गए। लेकिन दिनोंदिन उनके उत्साह में आशातीत वृद्धि होती गई।

अहिंसा के इस युद्ध में जनरल स्मट्स और सत्याग्रह सेना के सेनानायक के बीच स्नेहोपहारों का लेन-देन भी होता था। जनरल

स्मट्स ने गांधी जी को जेल में कुछ पुस्तकें भेजीं। लेकिन उनके जेल जीवन की सख्ती बढ़ती ही गई। उन्हें कातिलों और अन्य डामिल कैदियों के साथ रखा गया और कड़ी मशक्कत कराई गई। उन्हें हथकड़ी-बेड़ियां पहनाईं गईं। लेकिन गांधी जी को उनके विरोधियों ने अधिकाधिक प्रसन्नचित्त और धीरोदात्त देखा।

इंग्लैण्ड और भारत में सत्याग्रह आंदोलन के प्रति सहानुभूति दिनोंदिन बढ़ने लगी। हैनरी पोलाक को प्रचार कार्य के लिए भारत भेजा गया, जहां वह गोखले जी के निर्देश पर कार्य करते रहे। इंग्लैण्ड में सर भावनगरी, लाला लाजपतराय, वीर सावरकर, दादा साहिब खापडे, श्री बिपिनचन्द्र पाल और डा० आनन्द कुमारस्वामी ने गांधी जी तथा भारतीय सत्याग्रहियों के विरुद्ध अमानुषिक बर्ताव के विरुद्ध आवाज उठाई। भारत में कांग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन में दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के प्रति आत्मीयता और सहानुभूति का प्रस्ताव पास किया, जिसमें गोरी सरकार की कठोर दमन नीति की कड़े शब्दों में निन्दा की गई।

गांधी जी सन 1908 के अन्त में जेल से रिहा हुए। कस्तूरबाई की सख्त बीमारी में उन्हें तुरन्त नाताल जाना पड़ा, जहां डाक्टर से मतभेद हुआ। डाक्टर हठ पकड़ गया कि या तो गोमांस का शोरबा लेने को कस्तूरबाई राजी हों या उनको ले जाओ। गांधी जी ने अधमरी अपनी जीवनसंगिनी को गोद में उठाकर गाड़ी में लिटाया और रात्रि के गहन अंधकार में उन्हें 'फीनिक्स' ले गए और अपनी लगन, आस्था, सेवा और आस्तिकता के बल पर कस्तूरबाई को आरोग्य की मंजिल तक पहुंचाया। एक दिन पति-पत्नी में कुछ अवधि के लिए दाल और नमक छोड़ने के प्रस्ताव पर मतभेद हो गया। कस्तूरबाई ने उत्तेजित होकर पति से कह दिया—"क्या तुम छोड़ सकते हो?" उत्तर मिला—"तुम छोड़ो या न छोड़ो, मैंने इसी क्षण से छोड़ दिया।" कस्तूरबाई कहने को तो कह गई। लेकिन अपने पति के स्वभाव को

वह जानती थी। बहुत विनती की कि गांधी जी एक दिन को भी दाल और नमक न छोड़ें। वह बीमारी में दाल और नमक न लेंगी, कस्तूरबाई ने वचन दिया। हम दोनों ही यह व्रत निभाएंगे--गांधी जी ने हँसकर कहा। कहना न होगा कि गांधी जी ने अपनी सहधर्मिणी को अपनी प्राकृतिक चिकित्सा और देख रेख से शीघ्र ही नीरोग और स्वस्थ बना दिया।

●

कर्मवीर की कार्यपूर्ति

कस्तूरबाई के नीरोग और स्वस्थ होते ही, मोहनदास करमचन्द गांधी 'फीनिक्स' से जोहान्सबर्ग की दिशा में चल पड़े। ट्रांसवाल प्रांत की सीमा पर उन्हें रोका गया। सत्याग्रही नेता ने न अनुमति-पत्र प्रस्तुत किया और न दसों अंगुलियों की निशानी देना ही स्वीकार किया। उन्हें हद बाहर किया गया, वह फिर लौटे। इस बार उन्हें जोहान्सबर्ग तक जाने दिया गया। लेकिन चालीस दिन बाद ट्रांसवाल के सीमान्त नगर फोक्सरस्ट में सात अन्य सत्याग्रहियों के साथ उन पर मुकदमा चलाया गया। सजा सुनाई गई कि या तो पचास पौण्ड जुर्माना भरें या तीन महीने की सख्त सजा भोगें। सत्याग्रही नेता ने कहा—एशियावासियों के इस सत्याग्रह आंदोलन में मुझे ही प्रमुख अपराधी समझा जाना चाहिए। इसलिए अदालत से मेरी मांग है कि मुझे अधिक-से-अधिक सजा दी जाए।"

जुर्माना न दे कर, गांधी जेल गए। प्रिटोरिया जेल में सत्याग्रह के अनुशासनप्रिय नेता ने हर कड़ी मशक्कत की और संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, तमिल और अंग्रेजी की तीस पुस्तकों का अध्ययन किया। इस पुस्तकों में मनुस्मृति, पातंजल योगदर्शन, उपनिषद्, गीता और बाइबल जैसे ग्रंथ तो थे ही, टाल्सटाय, इमर्सन, थारो और कार्लाइल जैसे पाश्चात्य मनीषियों की कृतियां भी थीं। तमिलभाषी अपने सहयोगी सत्याग्रहियों के प्रति अपनी आत्मीयता प्रकट करने के लिए तमिल भाषा और साहित्य का अध्ययन करना उनके नेता ने अपना कर्तव्य समझा। थारो के शब्दों को दोहराते हुए नेता ने कहा—"किसी भी काले कानून को तोड़ कर जो जेल जाते हैं, वह जेल की चारदीवारी में बन्द रहते हुए भी उन लोगों की अपेक्षा अधिक

स्वतंत्र हैं, जो काले कानूनों को मान कर जेल के बाहर जीवन बिताते हैं।"

24 मई, सन 1909 के दिन जेल से बाहर आते ही, गांधी फिर सत्याग्रह संग्राम में जुट गए। उन दिनों वह प्रतिदिन चार घंटा से ज्यादा न सो पाते थे। लोकसेवा में पूरी तरह से समर्पित होने से उनके तन-मन में असीम शक्ति आ गई थी। इसी बीच उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रिटिश सरकार से सम्पूर्ण दक्षिण अफ्रीका के स्वायत्त शासन की प्राप्ति के लिए जनरल बोथा और जनरल स्मट्स लन्दन पहुंच रहे हैं। लन्दन में संवैधानिक मोर्चे पर लड़ने के लिए गांधी ने तुरन्त एक प्रतिनिधि मण्डल का विलायत भेजा जाना अनिवार्य समझा। सेठ हाजी हबीब को साथ ले कर, गांधी को विलायत जाना पड़ा। संयोग की बात थी कि दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीय प्रजा के ये दोनों प्रतिनिधि पोरबन्दर में ही पैदा हुए थे। 10 जुलाई, सन 1909 को दोनों प्रतिनिधि लन्दन पहुंचे।

तपे हुए लोकसेवक सत्याग्रही नेता और समझौते के लिए उत्सुक प्रवासी भारतीय व्यापारी सेठ हाजी हबीब मेमन में त्यागवृत्ति, तपस्या की सामर्थ्य और सत्याग्रह के प्रति दृढ़ निष्ठा की दृष्टि से अन्तर था। बातचीत के दौरान जहाज पर ही गांधी जी ने अपने साथी से कहा था : "सच बात तो यह है कि जहाज पर प्रथम श्रेणी के यात्री की इस आरामदेह जिंदगी से मुझे मेहनत-मशक्कत का जेल जीवन ज्यादा अच्छा लगता है। यहां हमारी सेवा-टहल ऐसी होती है, मानों हम गोद के बच्चे हों। खानपान की इफरात है। चाकरी करने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि हमें हाथ हिलाने की भी जरूरत नहीं पड़ती। मैं तो बिना कुछ किए हाथों को निरन्तर धो-पोंछ कर, आईने-सा साफ रखते-रखते ऊब गया हूं। प्रिटोरिया जेल में मेहनत-मशक्कत करने वाले अपने हाथ मुझे बहुत अच्छे लगते थे। सबसे बड़ा दुख तो मुझे यह है कि यहां मैं उतनी गहरी श्रद्धा भक्ति, निष्ठा

और समर्पण भावना से ईश्वर प्रार्थना करने में असमर्थ हूं। यह अक्षरश: सत्य है। जहां शान-शौकत, तड़क-भड़क, ऐश और आराम की बहुतायत होती है, वहां कोई भी मनुष्य ईश्वर का विनम्र और निष्ठावान सेवक बन कर नहीं रह सकता।"

ब्रिटिश अफसरशाही पर प्रवासी भारतवासियों के प्रतिनिधि मण्डल का विशेष प्रभाव न पड़ा। दक्षिण अफ्रीका के गोरे शासकों के प्रतिनिधि जनरल बोथा और जनरल स्मट्स वहां पहले से ही डटे हुए थे। गांधी जी ने अत्यधिक परिश्रम किया। वह अनेक पत्र सम्पादकों और ब्रिटिश संसद सदस्यों से मिले। लेकिन परिणाम कुछ न निकला। गांधी जी ने असलियत को जाना और माना : "विशिष्ट समझे जाने वाले इन लोगों से मैं जितना मिलता हूं, उतना ही स्पष्ट होता जाता है कि इस तरह मिलने-जुलने से कुछ होना-जाना नहीं। जिनके हाथ में शक्ति और सत्ता है, वह शुद्ध न्याए को देख ही नहीं पाते। उन्हें तो अपनी शक्ति और सत्ता को बनाए रखने और बढ़ाने की ही धुन लगी रहती है। शुद्ध और सच्चे न्याय का प्रश्न होता, तो मामला कभी का निपट जाता। इधर दिन-भर की भरसक दौड़-धूप और उधर अधिक-से-अधिक किसी एक या दो विशिष्ट व्यक्तियों से भेंट। इस तरह से समय और धन का अपव्यय करना सत्याग्रही को शोभा नहीं देता। जेल जाना और जेल जीवन के कष्ट सहना इससे कहीं अच्छा है। कभी सफलता हाथ लगी तो उसका श्रेय जेल जाने वाले सत्याग्रहियों के कष्ट सहन को होगा, न कि किसी प्रतिनिधि मण्डल को। अगर हम असफल रहे, तो उसका कारण यही हो सकता है कि कष्ट सहने की हमारी सामर्थ्य में कोई कमी रह गई थी।

और एक दिन ब्रिटेन के उपनिवेश मंत्री लार्ड एम्टहिल ने प्रतिनिधि मण्डल के निवेदन के उत्तर में साफ-साफ कह दिया : "जनरल बोथा आपको थोड़ी-बहुत रियायत देने को तैयार हैं। लेकिन एशियाटिक कानून और प्रवेश निषेध कानून को हटाया नहीं जा सकता। रंग-

भेद की नीति भी ज्यों की त्यों बनी रहेगी, जो उस संघ राज्य के विधान का अंग है। जनरल स्मट्स भी इससे सहमत हैं। थोड़ी-बहुत रियायत से अधिक कुछ आपको नहीं दिया जा सकता। इससे अधिक आपकी किसी भी मांग का यही नतीजा निकलेगा कि आप और आपके देशवासी बड़ी विपत्ति में पड़ेंगे।"

सेठ हाजी हबीब डिग गए। उन्होंने गुजराती भाषा में कहा कि जन और धन की दृष्टि से वह वर्ग, जिसका मैं प्रतिनिधि हूं, बहुसंख्यक है। मैं नहीं चाहता कि मेरे लोग और विपत्ति में पड़ें। अपने व्यापारी सहयोगी के कथन का गांधी ने अक्षरश: अनुवाद किया और अपनी सत्याग्रही सेना की ओर से साफ-साफ कह सुनाया: "मेरे सहयोगी प्रतिनिधि ने बिल्कुल ठीक कहा है कि उनका वर्ग जन और धन की दृष्टि से अधिक सबल है। मैं जिन प्रवासी भारतवासियों का प्रतिनिधि हूं, वे अपेक्षाकृत निर्धन और संख्या में कम हैं। लेकिन वे अपने निश्चय पर आमरण दृढ़ हैं। वे केवल राहत और रियायत के लिए ही नहीं, एक सिद्धान्त के लिए भी लड़ रहे हैं। हमें जनरल बोथा की शक्ति का पूरा-पूरा ज्ञान है। लेकिन उससे अधिक सम्मान हमें अपनी प्रतिज्ञा का है। इसलिए हम अपनी प्रतिज्ञा के पालन में बड़ी-से-बड़ी विपत्ति का सामना करने को तैयार हैं। हमने ईश्वर का नाम लेकर प्रतिज्ञा की है। इसलिए हम धैर्य के साथ यह विश्वास संजोए हुए हैं कि ईश्वर से हमें प्रतिज्ञा पालन की शक्ति अवश्य मिलेगी।"

गांधी जी को अपनी इस यात्रा में चार मास तक लन्दन प्रवास करना पड़ा। इन्हीं दिनों टाल्सटाय से उनका पत्र व्यवहार आरम्भ हुआ। लन्दन प्रवासी कई एक उग्र क्रांतिकारियों से भी लन्दन में उनकी भेंट हुई। उनकी देशभक्ति और बहादुरी के कायल होते हुए भी गांधी जी उनकी राजनीति से पूर्णत: असहमत रहे। भारतीय क्रांतिकारियों की उग्र हिंसात्मक राजनीति में गांधी जी इटली और आयरलैण्ड की पाश्चात्य रीति-नीति की प्रेरणा और प्रभाव को पसन्द

न करते थे। उनका विचार था कि भारतीय प्रकृति और स्वभाव के अनुसार सार्वजनिक आंदोलन का आधार और मौलिक विचार अहिंसात्मक सत्याग्रह के रूप में ही संभव है। पश्चिम की आधुनिक मशीनी सभ्यता को गांधी जी ने मानव जाति के लिए भयंकर रूप से अनिष्टकर पाया। व्यापारी शोषण के उद्देश्य से संगठित मशीनी पूंजीवाद, उससे विकसित होनेवाला साम्राज्यवाद और परस्पर प्रतिस्पर्धी साम्राज्यों का युद्धवाद मानवता का घोर अनिष्ट कर रहे हैं, गांधी जी ने इस यथार्थता को भली-भांति समझ लिया था। उन्होंने यह भी जान लिया था कि सत्याग्रह के मार्ग से स्वतंत्रता की मंजिल पर पहुंचा हुआ भारत ही विश्व को कल्याणकारी मार्ग दिखा सकेगा। सत्याग्रह से जिस भारतीय स्वराज्य की प्राप्ति होगी, उसकी कल्पना गांधी जी के मन में घर कर गई। उन्होंने लन्दन से दक्षिण अफ्रीका की अपनी वापसी समुद्र यात्रा के दौरान अपनी इस उदात्त कल्पना को 'हिन्द स्वराज' नाम की पुस्तिका में लिपिबद्ध किया। गांधी जी के जीवन-दर्शन और उनकी विचारधारा को समझने के लिए प्रश्नोत्तर शैली में लिखी हुई इस छोटी-सी पुस्तिका का अध्ययन अनिवार्य है।

अपने एक मित्र को पत्र द्वारा 'हिन्द स्वराज' का सारांश समझाते हुए गांधी जी ने जो सूत्र लिखे थे, उन्हें इस प्रकार अर्थाया जा सकता है :—

(एक) पूर्व और पश्चिम में बुनियादी भेद मानना भूल है, यानी विश्व भर की मानवता की समस्याएं, समाधान, आदर्श और सिद्धांत समान हो सकते हैं। अभेद की नीति के आधार पर सम्पूर्ण विश्व-मानवता का समान रूप से कल्याण सम्भव है।

(दो) जिस सभ्यता को हम पाश्चात्य या यूरोपियन सभ्यता नाम से पुकारते हैं, वह अर्थकरी यंत्रसाध्य भौतिक आधुनिक सभ्यता है, जो यूरोप के देशों में पनपी, लेकिन जिसे जापान-जैसा पूर्व का देश भी अपना सकता है। यह सभ्यता कहीं भी जड़ पकड़ सकती

है। इसलिए उसे मात्र पश्चिमी या यूरोपीय कहना भ्रामक है।

(तीन) जब यूरोप में इस आधुनिक सभ्यता का उदय न हुआ था, वहां के और पूर्व के लोगों में बहुत-कुछ समानता थी। आज भी भारतवासी और आधुनिक सभ्यता से असहमत यूरोपवासी बहुत सहज रूप में घुलमिल जाते हैं। आधुनिक सभ्यता में पले हुए विविध देशवासी परस्पर प्रतिस्पर्धी बन जाते हैं, सहयोगी और मित्र नहीं।

(चार) भारत में अंग्रेज़ी राज भारत पर अंग्रेज़ जनता का राज नहीं है, बल्कि वह आधुनिक सभ्यता का राज है। रेल, तार, टेलीफोन और अन्य वह सब आधुनिक उपकरण, जिन्हें आधुनिक सभ्यता की महान उपलब्धियां माना जाता है, आधुनिक राजतंत्र के साधन हैं।

(पांच) बम्बई, कलकत्ता तथा अन्य आधुनिक भारतीय नगर वास्तव में भारतीय दासता और भारतीय जनता के शोषण के केन्द्र हैं। इनहीं केन्द्रों से आधुनिक सभ्यता का विष भारत की नसों में फैलता है। ये नगर भारत के शरीर में प्लेग की गिल्टियों की तरह उभरे हैं।

(छह) अगर भविष्य में कभी अंग्रेज़ी राज की जगह, आधुनिक सभ्यता पर आधारित स्वराज भी स्थापित हो जाए, तो उससे स्थिति में सुधार न होगा। लाभ केवल इतना हो सकता है कि जो धन आज खिंच-खिंच कर इंग्लैण्ड चला जाता है, वह भारत में ही रहे। लेकिन उस हालत में भी भारत यूरोप या अमरीका के नीचे का अधिक-से-अधिक दूसरे या छठवें नम्बर का देश ही बन सकता है।

(सात) पश्चिम और पूर्व का मिलना तभी संभव है, जब यूरोप आधुनिक सभ्यता का परित्याग कर दे। पूर्व और पश्चिम का

मिलन पूर्व द्वारा आधुनिक सभ्यता को अपना लेने से भी सं
है। लेकिन उस हालत में मिलन प्रतिद्वंद्विता, प्रतिस्पर्धा और
या अस्थायी संधि में ही संभव है। जो हाल आज इंग्लैण्ड
जर्मनी का है, वही कल आधुनिक सभ्यता वाले पूर्व और पश्चि
का होगा।

(आठ) विश्व कल्याण की कामना से प्रेरित स्वराज
स्थापना पहले व्यक्ति के हृदय या उसके अपने आप में ही हो
चाहिए। अपने आप को जीतने वाले लोग ही देश में स्व
की स्थापना कर सकते हैं। इस व्यक्तिगत और देश
स्वराज की स्थापना ही मनुष्य का पहला कर्तव्य है। विश्व
उपदेश देना या विश्व भर में ऐसे स्वराज की स्थापना का बी
उठाना किसी भी व्यक्ति या संस्था का दंभ ही माना जाएग
प्रचार और प्रसार के आधुनिक साधनों का उतावली से उपय
करने लगना भी इस विषय में अहितकर ही सिद्ध होग
स्वराज संबंधी सच्ची क्रांति पहले अपने आप में, फिर अपनों
कर लेने के बाद ही, विश्व को बदला जा सकता है।

(नौ) आम तौर पर तो यही देखने में आया है कि भौति
सुख-सुविधा में अभिवृद्धि होने से नैतिक उन्नति का मार्ग कि
भी दिशा में प्रशस्त नहीं होता। इसलिए भौतिक सुख-सुवि
की भूख बढ़ाने वाली आधुनिक सभ्यता मानव के नैतिक उत्थान
बाधक सिद्ध हुई है।

(दस) आधुनिक चिकित्सा पद्धति लोभ-लालच और पैसे
भूख पर पनपी है। आधुनिक अस्पतालों को भगवान की देन न
शैतान की ईजाद समझना चाहिए। इनमें सार्वजनिक स्वास्थ्य
रक्षण नहीं, भक्षण होता है।

(ग्यारह) भारत में आधुनिक सभ्यता के प्रवेश और प्रसार
जो विचार फैले हैं, उन्हें भुलाना आवश्यक है। इस दौर में डा

और वकील बैरिस्टर जैसे नए वर्ग बने हैं, उन्हें मिटा देना होगा। भारत में ऊंचे वर्गो के लोगों को किसान की तरह रहने का अभ्यास करना चाहिए।

(बारह) भारत में मशीन से बने हुए कपड़े का उपयोग न होना चाहिए। मशीन चाहे इग्लैंड की हो, चाहे भारत की अपनी, उसे समान रूप से त्याग देना चाहिए।

(तेरह) प्राचीन काल के मनीषियों ने समाज में समझ-बूझकर ही ऐसी मर्यादाएं बांधी थीं कि मनुष्य भौतिकता की मृगतृष्णा में बहुत दूर तक न भटक सके। भारत में पांच हजार बरस पहले का सीधा-सादा हल चलाकर, किसान ऐसा सुख, संतोष और शांति का जीवन जी सकता है, जो यूरोप में आधुनिक सभ्यता की बदौलत आज दुर्लभ हो गया है।

(चौदह) भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति इक्के-दुक्के लोगों को मारने से या अन्य हिंसात्मक आन्दोलनों से नहीं मिल सकती। स्वयं को सुधारने और सच्चे अर्थ में भारतीय बन कर ही भारत-वासी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। स्वतंत्र भारत में अंग्रेज भी रह सकते हैं। लेकिन भारतीय जनता के स्वामी नहीं, सेवक बन कर।

'हिन्द स्वराज' पुस्तिका मूलतः गुजराती भाषा में लिखी गई थी। बम्बई सरकार ने सन उन्नीस सौ दस के मार्च महीने में इसे जब्त कर दिया। गुजराती संस्करण के जब्त होने पर, गांधी जी ने पुस्तिका का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया और कहा 'हिन्द स्वराज' में व्यक्त हुए विचार यद्यपि मेरे अपने हैं, किन्तु मैंने टाल्सटाय, रस्किन, थारो, इमर्सन तथा अन्य अर्वाचीन मनीषियों और प्राचीन भारतीय विचारकों और दार्शनिकों से प्रेरणा ग्रहण की है। पिछले कई वर्षों से मैं टाल्सटाय के विचारों से प्रभावित होता रहा हूं।

पुस्तक पढ़ कर टाल्सटाय ने गांधी जी को लिखा—"मैंने आपकी पुस्तक को बड़ी रुचि से पढ़ा है, क्योंकि पुस्तक के मुख्य विषय सत्याग्रह को मैं केवल भारत के लिए ही नहीं, संपूर्ण मानवता के हित में अत्यन्त महत्व का मानता हूं।"

दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार के काले कानूनों और दमन के काले कारनामों की कठिन कसौटी पर चढ़ कर, सत्याग्रह खरे सोने की तरह निखर रहा था। गांधी जी के नेतृत्व में पांच सौ सत्याग्रही स्वयंसेवकों की सेना अपनी सात्विक शक्ति के बल पर निरन्तर जूझ रही थी। मोहनदास करमचंद गाधी के विषय में उन दिनों गोखले जी ने भारतीय नेताओं से कहा था: "अडिग निर्भीक गांधी असीम नैतिक शक्ति के भंडार हैं। वह उस मिट्टी से बने हुए हैं, जिससे विश्व की महान् वीरात्माओं और हुतात्माओं का निर्माण होता रहा है।"

अपने सत्याग्रह आन्दोलन में गांधी जी ने जैसे दक्षिण अफ्रीका के हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाइयों को एक कर दिया था, वैसे ही भारत में भी सत्याग्रह के समर्थन में हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई सब एकमत हो गए थे। सबने अनुभव किया था कि दक्षिण अफ्रीका में अपने सत्याग्रह आन्दोलन से मोहनदास करमचंद गांधी ने देश की नाक ऊंची की है। सब भारतवासियों ने भेदभाव भुलाकर, सत्याग्रह सहायता कोष में चंदा दिया था।

मोहनदास करमचंद गांधी का नाम इंडियन नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए भी प्रस्तावित किया गया। यह प्रस्ताव सम्मान-सूचक था। वैसे सब जानते थे कि गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह संग्राम को अधूरा छोड़कर स्वदेश न लौटेंगे। संग्राम गहरा रहा था। दक्षिण अफ्रीका की सरकार के दमन चक्र के कारण सैकड़ों प्रवासी भारतवासियों के घर-बार उजड़ चुके थे। सैकड़ों सत्याग्रही स्वयंसेवकों के परिवार बेघर हो गए थे। स्थिति इतनी गंभीर थी कि उनके

नेता को 'फीनिक्स' के अलावा और एक विशाल सत्याग्रही शिविर की स्थापना का कार्य अनिवार्य प्रतीत हुआ। इस प्रकार गांधी जी के सहयोग और मित्र श्री कैनिलबैक की जायदाद पर जोहान्सबर्ग से इक्कीस मील दूर, 'टाल्सटाय फार्म' नामक सत्याग्रह आश्रम की स्थापना 30 मई, सन 1910 के दिन हुई। आश्रम में खेती, बागवानी और कई तरह की दस्तकारी की शिक्षा दी जाती थी। बच्चों की शिक्षा, आश्रमवासियों की स्वास्थ्य-रक्षा और आश्रम की सफाई का काम स्वयं गांधी जी ने अपने जिम्मे लिया था। गांधी जी के यूरोपियन सहयोगी और मित्रों ने उन दिनों उन्हें 'महाभंगी' की उपाधि से विभूषित किया था। गांधी ने टाल्सटाय फार्म में ही चप्पल-जूते बनाने की कला सीखी थी।

'फीनिक्स' और 'टाल्सटाय फार्म' सत्याग्रह शिविर भी थे। इस नाते वहां सत्याग्रही स्वयंसेवकों का प्रशिक्षण भी होता था। सत्याग्रह की लड़ाई बराबर जारी थी। 20 नवम्बर, सन 1910 के दिन अपनी मृत्यु के कुछ ही दिनों पूर्व टाल्सटाय ने मोहनदास गांधी को लिखा था कि मैं तो अब अधिक दिन न रहूंगा, लेकिन ट्रांसवाल के सत्याग्रह संग्राम का महत्व विश्व-मानवता के इतिहास में सदा बना रहेगा।

'इंडियन ओपिनियन' के 27 मई, सन 1911 के अंक में सत्याग्रह संग्राम के सेना नायक गांधी ने सूचना दी कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने घुटने टेक दिए हैं और यूनियन में एशियावासियों के प्रवेश पर प्रतिबंध हटा लेने का निश्चय कर लिया है। लेकिन उन्होंने अपने सत्याग्रही सैनिकों को चेतावनी भी दी कि इसे केवल अस्थायी संधि ही समझा जाए। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार को भी आगाह किया कि अगर जरूरी हुआ, तो सत्याग्रह संग्राम फिर छिड़ सकता है।

आगामी वर्ष गोखले जी दक्षिण अफ्रीका आए और वहां की गोरी सरकार से बातचीत करके, उन्होंने गांधी जी से कहा, "गांधी, तुम्हारा कार्य यहां पूरा हो गया है। यहां की सरकार तुम्हारी सब मांगों को पूरा करने का वादा करती है। अब तुम्हें स्वदेश लौट चलना है।"

किन्तु गांधी जी दक्षिण अफ्रीका के गोरे शासकों को अधिक जानते थे। वही हुआ जो गांधी जी ने सोचा था। गोखले जी के जाते ही दक्षिण अफ्रीकों के गोरे शासक मुकर गए। गोरों ने कहा कि हमने 'कुली किंग' यानी श्री गोखले को कोई वचन नहीं दिया है।

सन 1913 के मार्च महीने की चौदह तारीख के दिन दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीय समाज पर एक भीषण कानूनी प्रहार हुआ। हसन ईसप नाम के एक भारतीय व्यापारी की यह अर्जी कि उसकी पत्नी बाई मरियम के प्रवेश निषेध की सरकारी आज्ञा को तुरन्त रद्द कर दिया जाए, हाईकोर्ट द्वारा खारिज कर दी गई। बाई मरियम, जो अपने पति के साथ पहली बार दक्षिण अफ्रीका आई थी, दक्षिण अफ्रीका की सरकार की नज़रों में प्रवेश की हकदार न थी। कारण? उसकी शादी दक्षिण अफ्रीका के कानून के अनुसार रजिस्टर्ड शादी न थी। प्रवासी भारतीय समाज में तहलका मच गया। हिन्दू और मुसलमान रीति-रस्म से हुई शादियां अवैध मानी गईं, तो प्रवासी भारतीय नारियों की आबरू मिट्टी में मिल जाएगी। अवैध पत्नियों की संतान भी कानूनन अवैध ही करार दी जाएगी। इन आशंकाओं ने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीय समाज को एक ही झटके में झकझोर दिया।

इस जातीय अपमान के साथ ही एक और आघात हुआ। एक नया प्रवेश कानून पास हुआ जिससे प्रवासी भारतवासियों की स्थिति और भी बदतर होती दिखाई दी। गांधी जी ने गोरी सरकार को समझाने-बुझाने का भरसक प्रयत्न किया। लेकिन नतीजा कुछ

न निकला। आखिर 15 सितम्बर, सन 1913 के दिन 'फीनिक्स' से अहिंसक सत्याग्रही स्वयंसेवकों का पहला जत्था युद्ध क्षेत्र में उतरा। कूच शुरू हुआ। इस वार प्रवासी भारतीय स्त्रियां भी सत्याग्रह संग्राम में भाग लेने के लिए आगे आईं। इनका नेतृत्व कर रहीं थी कस्तूरबाई गांधी।

सत्याग्रह संग्राम में भारतीय स्त्रियों के भाग लेने से लड़ाई का नक्शा ही वदल गया। दक्षिण भारत की कुछ मजदूर स्त्रियां खानों में काम करने वाले दक्षिण भारतीय मजदूरों की वस्ती में गईं और उनसे कहा—"या तो चूड़ियां पहनकर गोरों की गुलामी करो, या भारत माता के सम्मान की रक्षा के लिए सत्याग्रह संग्राम में उतरो।" गैरतमंद भारतीय मजदूरों ने तुरन्त हड़ताल कर दी। इस प्रकार 17 अक्तूवर, सन 1913 के दिन एकाएक अप्रत्याशित रूप से सत्याग्रह सेना में तीन हजार प्रवासी भारतीय मजदूर भी शामिल हो गए।

सत्याग्रह की उमड़ती हुई नदी को देखकर, गोरी सरकार घबराई और उसने सत्याग्रही स्वयंसवकों को तुरन्त जेल भेज दिया। स्त्रियों में कुछ ऐसी भी थीं जिनकी गोद में दुधमुंहे वच्चे थे। इसकी प्रतिक्रिया तत्काल हुई। दो हजार अन्य प्रवासी भारतीय मजदूरों ने भी हड़ताल कर दी और वे भी सत्याग्रह सेना में मिल गए।

गांधी जी ने सत्याग्रही सेना की कमान संभालते हुए ऐलान किया कि कूच की तैयारी वही लोग करें जो शांति से कष्ट सहने को तैयार हों। कष्ट सहने के आदी प्रवासी भारतीय मजदूर प्रवेश निषेध का काला कानून तोड़ने के लिए कमर कसे तैयार थे। नेता ने अंतिम चेतावनी दी कि जो हड़ताली काम पर लौटना चाहें या अपने माल-असवाव की देखभाल के लिए रुकना चाहें, वे खुशी से पीछे हट जाएं। लेकिन सत्याग्रही सेना की संख्या घटने की जगह वढ़ती ही गई।

छह हजार प्रवासी भारतीय मजदूरों का कारवां 28 अक्तूबर, सन 1913 की भोर वेला में न्यूकासिल से निकला। छत्तीस मील दूर चार्ल्सटाउन में पहला पड़ाव पड़ा। केवल स्त्रियों और बच्चों के सिर पर छत की छांव थी। पुरुषों ने खुले मैदान में विश्राम किया। भोजन-पानी के प्रवन्ध का भार स्वयं गांधी जी ने संभाला था। पड़ाव पर दाल-चावल और एक शाक-सब्जी का प्रवन्ध था। कूच के वक्त खाने-खिलाने का आंखों-देखा हाल एक अंग्रेज़ पत्रकार ने इस प्रकार दिया था: "मैंने देखा कि मिस्टर गांधी एक वदबूदार अहाते के पिछवाड़े, कच्ची लकड़ी की बड़ी मेज के सहारे खड़े अचरज में डालने वाली फुर्ती और तेज रफ्तार से डवल रोटियों के तीन इंच मोटे टुकड़े काट रहे थे।

कतार में खड़े हुए सत्याग्रही वारी-वारी से अपना हिस्सा लेते और आगे वढ़ जाते।

वह पतलून-कमीज पहने हुए थे। उनके पास ही डवल रोटियों से भरे वारह बोरे रखे हुए थे। मेज पर उनकी कुहनी के पास शक्कर

से भरा हुआ वर्तन था। वह रोटी के टुकड़ों पर शक्कर रखकर बांट रहे थे। कतार में खड़े हुए सत्याग्रही वारी-वारी से अपना हिस्सा लेते और आगे वढ़ जाते थे। सत्याग्रही टुकड़ियों में वंटकर, अहाते में आते थे। साथ ही मिस्टर गांधी मुझे कूच का नक्शा भी समझाते जाते थे। वह वहुत शुद्ध और सुसंस्कृत अंग्रेज़ी में वोल रहे थे।

गोद के वच्चों वाली स्त्रियों की हिम्मत और सहनशक्ति कल्पनातीत थी। कूच में एक सन्याग्रही स्वयंसेविका का वच्चा सर्दी-गर्मी की चपेट में आकर मर गया। एक का वच्चा नदी पार करते हुए धार में वह गया। पुत्र-शोक में भी मां ने कहा—"जो गया, उसकी याद करके झिरने से क्या होगा? जाने वाला तो आएगा नहीं। सोच करने से क्या हाथ लगेगा? जो गया, सो गया। जो हैं, हमें तो उनके लिए लड़ना है।"

ट्रांसवाल प्रान्त में प्रवेश करने के लिए छह नवम्वर, सन उन्नीस सौ तेरह के दिन और 2037 पुरुषों, 127 स्त्रियों और 57 वच्चों को चुना गया। ईश्वर की प्रार्थना करके सवेरे साढ़े छह वजे कूच आरम्भ हुआ। सत्याग्रही सेना ने ट्रांसवाल में प्रवेश करते समय ऐसा उत्साह दिखाया कि सशस्त्र पुलिस सवार अचकचा गए। वह अपने नेता का संकेत पाने तक धैर्य से उस पार खड़े न रह सके और छोटी नदी को पार कर, एकाएक सीमा पार कर ट्रांसवाल में धंस वैठे। लेकिन कुछ ही देर में नेता ने उन्हें अनुशासित और मर्यादित कर दिया। ट्रांसवाल के सीमांतनगर फोकरस्ट के गोरे नागरिक 'आक्रामक' भारतीयों पर गोली चलाने की धमकी दे चुके थे। उन्होंने गांधी जी के सहयोगी और मित्र कैलिनवैक के शांति-अनुरोध को भी ठुकरा दिया था। लेकिन सत्याग्रही सेना पर गोली चलाने की हिम्मत न पुलिस को हुई और न गोरे नागरिकों को। 'सण्डे पोस्ट' पत्र के संवाददाता

ने कूच का आंखों देखा हाल इस प्रकार लिखा था "गांधी जी के पीछे-पीछे चलने वाले इन तीर्थ यात्रियों के दल विचित्र प्रतीत होते हैं। देखने में ये लोग दुबले-पतले और भूखे-टूटे-से लगते हैं। लेकिन रुखे-सूखे और अल्प-स्वल्प राशन पर निर्वाह करते हुए जिस बहादुरी से यात्रा कर रहे हैं, उससे सिद्ध होता है कि इनमें बल-कस बहुत है। तीन-चौथाई लोग बाकायदा कतार बनाकर चलते हैं। एक-चौथाई लोग दो-तीन मील पिछड़कर, छोटी-छोटी टुकड़ियों में आगे बढ़ते हैं। गांधी के प्रति इनके मन में अपार श्रद्धा है।"

बाल-बच्चों वाली जो स्त्रियां थक कर टूट जातीं, उनको भारतीय व्यापारियों के घरों में ठहरा दिया जाता, इस भरोसे पर कि उन्हें अंततः 'टाल्सटाय फार्म' में पहुंचा दिया जाएगा। दवा-दारू का साधारण प्रबंध था। सब मिलाकर अढ़ाई सौ पौंड रोज का खर्चा था। श्री गोखले ने दो हजार पौंड प्रति मास भेजने का वचन दिया था।

9 नवम्बर, सन 1913 के दिन अधबट में गांधी जी को जेल में बंद कर दिया गया। दक्षिण अफ्रीका में यह उनकी तीसरी जेल यात्रा थी। अगले दिन कूच करने वाले दो हजार बेघर मजदूरों को ट्रांसवाल से खदेड़ा गया। "गांधीभाई को बुलाओ" वह चिल्लाए और पसर कर बैठ गए। लेकिन कैलिनबैक और कछलिया ने उपनायकों की हैसियत से समझा-बुझा कर उन्हें मनाया। असीम कष्ट सहकर उन्हें नाताल वापस जाना पड़ा, जहां उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया। लेकिन दमन चक्र की प्रतिक्रिया शासकों के प्रतिकूल भारत, इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका के कुछ गोरे नागरिकों ने प्रवासी भारतीय सत्याग्रहियों के पक्ष में आवाज बुलन्द की, और गांधी जी को डेढ़ महीना बाद रिहा कर दिया गया।

सत्याग्रही नेता ने फिर कूच की तैयारी शुरू कर दी। इसी समय दक्षिण अफ्रीका में गोरे मजदूरों ने हिंसात्मक हड़ताल कर दी। गांधी जी विरोधी पर कुसमय और कुठौर वार न करते थे। उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन अस्थायी रूप से रोक दिया। उनकी इस भद्रता और भलमनसाहत से जनरल स्मट्स पर घड़ों पानी पड़ गया। जनरल स्मट्स ने गांधी जी के धर्मयुद्ध नीति की सराहना की।

21 जनवरी, सन 1914 के दिन जनरल स्मट्स और सत्याग्रह के सेनानी मोहनदास करमचंद गांधी में अस्थायी संधि हुई। सत्याग्रही कैदियों को धीरे-धीरे रिहा किया जाने लगा। रिहा होने वाले सत्याग्रहियों में सोलह वर्ष की भारतीय कन्या, कुमारी वल्लीअम्मा मुदालियर भी थी। वह बहुत बीमार थी। गांधी जी उस बालिका से मिले। पूछा—"वल्लीअम्मा, जेल जाने से तुम्हारी यह हालत हुई है। तुम्हें जेल जाने का पछतावा तो नहीं होता?" वह बोली—"पछतावा! मैं तो फिर जेल जाने को तैयार हूं। करें वे लोग मुझे गिरफ्तार।" गांधी जी ने गंभीर होकर कहा—"लेकिन बीमारी में जेल जाकर तुम मर गई तो?" वल्लीअम्मा ने शांत भाव से कहा—"मुझे मरने का सोच न होगा। मातृभूमि के लिए मरना कौन न चाहेगा?" कुछ ही दिनों में वल्लीअम्मा परलोक सिधारी। गांधी जी ने लिखा: "जब तक मातृभूमि है, वल्लीअम्मा का नाम सत्याग्रह आंदोलन के इतिहास में अमर रहेगा।"

सत्याग्रह के सामने दक्षिण अफ्रीका की सरकार को झुकना पड़ा। काले कानून रद्द कर दिए गए। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीय भाइयों ने 'भाई' का जय-जयकार किया, तो गांधी जी ने सत्याग्रह के शहीद हरबंतसिंह, नारायणस्वामी, नागप्पा और वीरकन्या वल्लीअम्मा को ही विजय का श्रेय दिया, जो "सहज विश्वास के साथ, और वाहवाही की कामना से मुक्त, मेरी पीठ पर रहे।"

गांधी जी की विजय पर अपनी टिप्पणी में प्रोफेसर गि
मरे ने लिखा था : "सत्ताधारियों को सावधान होकर सीख
चाहिए कि ऐसे व्यक्ति का सामना करना कठिन है, जिसे इ
के भोग,धन-दौलत, सुख-सुविधा की रंचमात्र परवाह नहीं है औ
सत्य पर आरूढ़ रहने का दृढ़ निश्चय कर लेता है। उससे लड़ना
नाक होता है। लड़ाई में वह छका देता है। उसके शरीर पर
हुआ जा सकता है। लेकिन उसकी आत्मा को नहीं जीत
सकता।"

योद्धा वह, जिसकी सराहना शत्रु भी करे। जनरल स
ने बरसों बाद गांधी जी के सम्बन्ध में कहा था : "मेरे भा
बदा था कि मैं उस व्यक्ति का विरोधी बना, जिसके प्रति वि
के दिनों में भी मेरे मन में आदर का सर्वोच्च स्थान था। मेरे
विरोधी के व्यक्तिगत सद्भाव का अंत न था। जेल में
लिए उन्होंने चप्पल-जोड़ी बनाई और रिहा होने पर मुझे
की। अच्छे दिनों में मैंने उन चप्पलों को बरसों पहना है
मन-ही-मन कहा है कि क्या मैं उस महान व्यक्ति की
के योग्य हूं ?"

बिदाई और स्वागत

दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीय बिरादरी को नया जीवन देकर, बिरादरी के भाई और सत्याग्रह संग्राम के नेता मोहनदास करमचंद गांधी ने मातृभूमि भारत लौट जाने का इरादा किया। उन्हीं दिनों गांधी जी के सहयोगी और मित्र हेनरी पोलाक भी सपत्नीक इंग्लैंड लौट जाना चाहते थे। पोलाक दंपत्ति से गांधी जी ने कहा—आप लोग कुछ दिनों यहां टिके रहने का वादा करें, तो ही मैं स्वदेश जा सकता हूं, क्योंकि प्रवासी भारतवासियों के हितों की देखभाल और सरकार के रवैये पर देखरेख रखने के लिए हम दोनों में से किसी एक के कुछ दिनों यहां रहने की अभी आवश्यकता है।

पोलाक कुछ दिनों रुके रहने को राजी हो गए। पोलाक ने इस प्रसंग में लिखा है—"यह अनुमान का विषय है कि यदि अपने पूर्वनिर्णय के अनुसार हम पति-पत्नी दक्षिण अफ्रीका से प्रस्थान कर जाते और गांधी जी को वहां रुके रहना पड़ता, तो भारत के भावी इतिहास में क्या घटनाएं घटतीं और क्या न घटतीं।"

दक्षिण अफ्रीका से गांधी जी के प्रस्थान का दिन ज्यों-ज्यों निकट आता गया, उनके विगत इक्कीस वर्षों के सहयोगी और मित्र अपने भाई और नेता को घेर कर उत्तरोत्तर अधिक संख्या में जमा होने लगे। बिदाई समारोह एक पखवारे तक चलते रहे, जिनमें अनेक यूरोपियनों ने भी भाग लिया। बिदाई की वेला में प्रवासी भारतवासी अपने भाई के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते भी डरते हैं, कृतज्ञतावश कुछ देना तो दूर रहा। गांधी जी के प्रथम जीवनीकार, मित्र और सहयोगी रेवरेंड डोक ने लिखा है: "गांधी

को पैसे का लोभ रंचमात्र नहीं है। उसके देशवासी खीझ कर सकते हैं कि भाई ने तो हमसे कभी कुछ न लेने की जैसे कसम खा रखी है। हमने उन्हें अपना प्रतिनिधि बना कर इंग्लैण्ड भेजते वक्त जो रकम खर्चे के लिए दी थी, वापस लौटकर वह रकम भी उन्होंने हमें ज्यों-की-त्यों लौटा दी। जो कुछ भेंट में हमने दिया, उसे उन्होंने दान-खाते में जमा करा दिया। भाई सदा फकीर ही रहेंगे, क्योंकि पैसे से उनका अपना कोई वास्ता ही नहीं है।" रेवरेंड डोक कहते हैं कि गांधी जी के देशवासी अपने भाई और नेता को देखकर अचम्भा करते हैं (कि है और कोई ऐसा माई का लाल!)। वह ऐसे और किसी निःस्वार्थ व्यक्ति की कल्पना ही नहीं कर सकते और उनके प्यार में भाई के प्रति अभिमान की गहरी भावना है।

सात बरस पहले के यानी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के आरंभिक दिनों के अपने संस्मरण में रेवरेंड डोक ने लिखा है कि सत्याग्रह आन्दोलन की सबसे प्रबल शक्ति का स्रोत आन्दोलन के महान नेता के व्यक्तित्व में निहित है। गांधी के जेल जाने का ऐसा प्रभाव होता है कि उनके देशवासियों में तुरन्त सर्वस्व बलिदान कर देने की भावना जाग उठती है। अपने नेता के पीछे-पीछे वे सब भी जेल जाने को निकल पड़ते हैं और यह देखकर पुलिस बड़े चक्कर में पड़ जाती है। जेल मुजरिमों के लिए है और जेल जाना शर्म की बात है, गांधी जी ने इस भावना को बदल दिया है। सत्याग्रह आन्दोलन में अपने माल-असबाब और सम्पत्ति की बर्बादी से इन लोगों को दुःख नहीं, आनंद होता है। जेलयात्री नेता की अनुपस्थिति में भी देशवासियों पर नेता का प्रभाव और अनुयायियों का मनोबल ज्यों का त्यों बना रहता है। उनमें से अनेक जन यही सोचते रहते हैं कि भाई होते, तो इस स्थिति में क्या करते, वह हमसे क्या चाहते, क्या कहते।

सत्याग्रही नेता की जेलयात्रा के बाद रेवरेंड डोक ने किसी साग-भाजी बेचने वाले प्रवासी भारतीय से पूछा—भला बताओ तो अब तुम क्या करोगे? साग-भाजी बेचने वाले प्रवासी भारतीय ने हँसकर उत्तर दिया—हम क्या जानें? हम तो गांधी-भाई को जानते हैं। भाई कहेंगे सो हम करेंगे। वह कहेंगे जेल जाओ, तो हम जेल जाएंगे। रेवरेंड डोक ने लिखा है कि गांधीजी अगर कहते कि जान दे दो, तो उनके कहने पर जान देने वालों की संख्या भी कम न होती।

सत्याग्रह के अपने संस्मरणों में रेवरेंड डोक ने लिखा है कि अपने प्रमुख कार्यकर्ता सत्याग्रही तंबी नायड की जेल यात्रा के बाद एक दिन गांधी जी तंबी नायडू की बीमार और बेसहारा पत्नी से मिलने गए और उस अवसर पर उन्होंने मुझे भी अपने साथ ले लिया। रास्ते में एक मौलवी और इमाम साहब भी हमारे साथ हो लिए। हमारे साथ एक यहूदी सज्जन भी थे। इस प्रकार एक दुखियारी हिन्दू स्त्री को सान्त्वना देने के लिए दो मुसलमान, एक यहूदी, एक ईसाई और एक हिन्दू उसके द्वार पर गए। अपने बड़े लड़के का सहारा लेकर वह स्त्री खड़ी-खड़ी रो रही थी। कुछ ही दिनों में वह फिर मां बनने वाली थी। हम सबने उसे धीरज बंधाया और भगवान से उसके कल्याण के लिए प्रार्थना की। गांधी जी ने सत्याग्रह की शक्ति से भाषा, देश, धर्म और नस्ल के भेदभाव को मिटा दिया था।

और अब नेता की विदा वेला में विजयी वीर सत्याग्रही तंबी नायडू का सात बरस का छोटा बेटा भी शामिल था। नन्हें नायडू को देखकर, रेवरेंड डोक को मोहनदास करमचंद गांधी के मुख से सुने हुए उनके बाल्यकाल के संस्मरण याद आए हों तो अचरज न होगा। भेंट-वार्ता में गांधी जी ने रेवरेंड डोक को अपने जन्मस्थान पोरबंदर के बारे में बड़े प्यार से बताया था कि मुलायम सफेद पत्थर

से बने उस 'शुभ्र नगर' को सुदामापुरी भी कहते हैं और वहां के लोग सदा से ही समुद्र पार जाते हैं। तीस-चालीस बरस पहले तक वहां बने हुए जहाज अदन और जंजीबार तक बराबर जाते आते थे।

रेवरेंड डोक ने भेंट-वार्ता में मोहनदास करमचन्द गांधी के मन की थाह ली तो पाया कि अपने देश, नगर, समाज और पूर्वजों के प्रति वहां अपार श्रद्धा है। दादा और पिता तो श्रद्धास्पंद हैं ही, किन्तु सर्वाधिक प्रेम भाव माता की स्मृति के प्रति संजोया हुआ है। रेवरेंड डोक ने लिखा है—माता की बात आते ही उनकी वाणी और भी मधुर हो जाती है और आंखों में स्नेह की ज्योति जाग उठती है। उनकी माता का व्यक्तित्व निस्सन्देह बहुत मधुर रहा होगा।

और अमर होकर वही माता मोहनदास करमचन्द गांधी के मन में शाश्वत भारतमाता बन गई थीं। और भारतमाता की सेवा के लिए मोहनदास करमचन्द गांधी अपने जीवन के इक्कीस-बाईस बरस दक्षिण अफ्रीका की कर्मभूमि में बिताकर, अब स्वदेश जा रहे थे। तभी श्री गोखले का सन्देश मिला कि लंदन में मिलो कि हम दोनों साथ-साथ भारत लौटें।

फीनिक्स आश्रम के सत्याग्रही परिवार को भारत भेजकर गांधी जी 18 जुलाई, सन 1914 के दिन गोखले जी से मिलने के लिए लंदन की ओर रवाना हुए। जहाज लंदन पहुंचा भी न था कि महायुद्ध छिड़ गया। युद्ध के कारण गोखले जी पेरिस में फंस गए और उनकी प्रतीक्षा में गांधी जी लंदन में रुके रहे। ठाली बैठना कर्मवीर के लिए संभव न था। इसलिए देश-काल का विचार करते हुए, गांधी जी ने उस परिस्थिति में अपना कर्त्तव्य स्थिर किया। इंग्लैण्ड के आपत्काल में, इंग्लैण्ड के मित्र और साम्राज्य के प्रजाजन की हैसियत से गांधी जी ने एक भारतीय

एम्बुलेंस टुकड़ी तैयार करने का फैसला किया। लंदन-प्रवासी भारतीय छात्रों में से कुछ ने इसका विरोध किया, तो गांधी जी ने कहा कि हम जहां रहें, वहां के लोगों की सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है। विशेषकर आपत्काल में तो इस कर्त्तव्य से मुंह नहीं मोड़ना चाहिए। युद्ध में हथियार उठाना अहिंसक सत्याग्रही के लिए संभव न था। लेकिन युद्ध में घायल सैनिक की सेवा-टहल करना अनिवार्य धर्म था।

उन दिनों गांधी जी का स्वास्थ्य अच्छा न था। दक्षिण अफ्रीका में तीन वार जेल यात्रा तो की ही थी, तीन वार अनशन भी कर चुके थे—दो वार आश्रम में दुराचार के विरुद्ध और एक वार दिवंगत सत्याग्रही सैनिकों की स्मृति में। दक्षिण अफ्रीका के 'टाल्स्टाय फार्म' नामक अपने दूसरे सत्याग्रह शिविर में रहते हुए, गांधी जी दूध का भी त्याग कर चुके थे। परिणाम यह हुआ कि घोर परिश्रम और जलवायु के कारण गांधी जी के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा। उनकी पसलियों में सूजन आ गई। वाध्य होकर, उन्हें डाक्टरी आदेश से लंदन छोड़ना पड़ा।

इंग्लैण्ड से मातृभूमि की ओर प्रस्थान करते समय गांधी जी को अपने मित्र और सहयोगी श्री कैलिनवैक से विछुड़ना पड़ा। महायुद्ध में भिड़े हुए अंग्रेज और जर्मन राष्ट्र परस्पर शत्रु थे और कैलिनवैक जर्मन थे। इसलिए इंग्लैंड की सरकार और भारत के वायसराय ने उनके भारत जाने की अनुमति नहीं दी, यद्यपि हर कोई जानता था कि कैलिनवैक सत्य और अहिंसा के पुजारी थे।

गांधी जी ने भारत की ओर सपत्नीक प्रयाण किया और समुद्री यात्रा में उनका स्वास्थ्य वहुत जल्दी सुधर गया। प्रस्थान के दिन, 19 दिसम्वर, सन 1914 से भारत पहुंचने के दिन, 9 जनवरी, सन 1915 यानी तीन सप्ताह की समुद्री यात्रा में गांधी जी प्लूरिसी की वीमारी से मुक्त हो गए। जलवायु का परिवर्तन

तो अनुकूल सिद्ध हुआ ही, मातृभूमि के दर्शन का चाव और उत्साह भी आरोग्य लाभ की दिशा में अवश्य ही सहायक सिद्ध हुआ होगा।

जैसे इष्टदेवी के मंदिर में प्रवेश करने के लिए कोई यथोचित पोशाक पहने, वैसे ही मातृभूमि पहुंचने पर गांधी जी ने स्वदेशी पोशाक धोती, अंगरखा और पगड़ी धारण की, जिसे हम काठियावाड़ी पोशाक कह सकते हैं। जहाज पर ही उनका भव्य स्वागत हुआ। बम्बई के गण्यमान्य राजनीतिक नेता और विशिष्ट नागरिकों ने कर्मवीर मोहनदास करमचन्द गांधी की अगवानी की। जहाज अपोलो बंदर पर लगा, जहां उन दिनों इंग्लैंड के राजघराने के महामहिम व्यक्ति, वायसराय तथा अत्यन्त विशिष्ट भारतीय ही उतरते थे। स्वागत समारोह अपोलो बंदर पर ही होना था, किन्तु युद्धकालीन परिस्थिति में सरकार ने आयोजन की अनुमति न दी। समारोह तीसरे दिन पोर्टर भवन में हुआ, जहां बम्बई के बेताज के बादशाह फीरोजशाह मेहता ने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों के विजेता नेता गांधी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

पेटिट भवन और समारोह की शान-शौकत देखकर गांधी जी का मन प्रफुल्लित नहीं हुआ। बम्बई शहर उन्हें भारत का टुकड़ा नहीं लगा। अभिनंदन का उत्तर देते हुए गांधी जी ने साफ-साफ कह दिया कि दक्षिण अफ्रीका से भारत आते समय सोचा तो यह था कि वहां से यहां मेरा मन अधिक रमेगा। लेकिन पिछले तीन दिनों में बम्बई को देखकर यही लगता है कि दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के बीच हम ज्यादा सुखी थे। सच्चे अर्थों में भारत के वीर सपूत थे। बम्बई आकर तो अजनबीपन का अनुभव होता है।

सच है कि उन दिनों अंग्रेजियत के रंग में रंगा हुआ बम्बई शहर लंदन से होड़ लेने में ही अपनी बड़ाई समझता था। गुजराती

समाज ने भी अलग से एक अभिनंदन समारोह का आयोजन किया, जिसमें श्री मोहम्मद अली जिन्ना ने भी स्वागत भाषण किया था। गांधी जी ने अपने उत्तर में गुजराती भाषा का उपयोग किया और इस बात की आलोचना की कि गुजराती समाज के समारोह में भी कारवाई अंग्रेजी के माध्यम से हुई।

बम्बई के तत्कालीन गवर्नर लार्ड विलिंग्डन ने गोखले जी के माध्यम से गांधी जी से भेंट करने की इच्छा प्रगट की। गवर्नर ने भेंट में कहा—आप मुझ से जी-चाहे जब मिल सकते हैं। आपको भरोसा दिलाता हूं, मेरी सरकार की ओर से जान-बूझकर कोई गलत कदम नहीं उठाया जाएगा। आप से भी मैं यही मुझसे चाहता हूं कि सरकार के प्रति कोई कारवाई करने से पहले आप मिल जरूर लें।

गांधी ने उत्तर दिया— आपको वचन देने में मुझे क्या बाधा हो सकती है? सत्याग्रही की हैसियत से मेरा तो यह नियम है ही कि कोई भी कारवाई करने से पहले, मैं प्रतिपक्षी के दृष्टिकोण को अच्छीं तरह से समझ लूं और जहां तक संभव हो, प्रतिपक्षी से सहमत हो सकूं। कौन जानता था कि भविष्य में गवर्नर लार्ड विलिंग्डन कभी भारत के वायसराय भी बनेंगे और उनसे भारत के भावी महानेता महात्मा गांधी का घनघोर धर्मयुद्ध होगा?

गांधी जी पूना पहुंचे और गोखले जी से मिले। गोखले जी का सान्निध्य गांधी जी को गंगा माता की गोद के समान सुखद और पवित्र लगता था। गोखले जी ने अनुरोध किया कि फीनिक्स आश्रमवासी सत्याग्रही सेवकों के लिए आश्रम बनाने का खर्चा गांधी जी गोखले जी से लें।

सत्याग्रही सेवकों की टोली दक्षिण अफ्रीका से भारत पहुंच कर कुछ दिनों तो स्वामी श्रद्धानंद जी के गुरुकुल कांगड़ी में रही और फिर गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन में आ रही।

गांधी जी शांतिनिकेतन गए, जहां उनका भव्य स्वागत हुआ। वहीं यह दुखद समाचार मिला कि गोखले जी नहीं रहे। गांधी जी ने शोक सभा में कहा—एकमात्र गोखले जी को मैंने भारत में अपना आदर्श नेता माना था। शोक में गांधी जी ने एक वर्ष तक नंगे पैर रहने का व्रत लिया।

गोखले जी का आदेश था कि गांधीजी एक वर्ष तक देश की राजनीतिक हलचल में भाग न लें, वरन् देश-दर्शन करें और अपना मत स्थिर करने से पहले देश की समस्याओं का सम्यक् अध्ययन कर लें। गांधी जी ने इस आदेश का पालन किया।

गांधी जी ने देश का दौरा शुरू किया। उन दिनों बर्मा भी भारत में ही शामिल था। गांधी जी पूना से कलकत्ता और कलकत्ता से रंगून गए। लौटकर वह फिर शांतिनिकेतन गए। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट करने के बाद उन्हें महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानंद जी) से मिलने जाना था। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के पास ही तो स्थित है जहां कुंभ मेला लगा था। सत्याग्रही सेवकों की टोली के साथ गांधी जी भी कुंभ मेला में सेवा कार्य करते रहे। हरिद्वार से ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला जाते समय उन्हें एक सन्यासी मिले। उन्होंने आग्रह किया कि एक हिन्दू के नाते गांधी जी को शिखा-सूत्र धारण करना चाहिए। गांधी जी ने कहा कि शिखा धारण करना मुझे स्वीकार है, किन्तु सूत्र (जनेऊ) मैं तब तक न धारण करूंगा, जब तक करोड़ों हिन्दू इसके अधिकार से वंचित रहेंगे।

हिन्दू समाज और भारतीय जनता की दशा देखकर गांधी जी का हृदय बहुत दुखी हुआ। ऋषियों का यह महान देश आज कैसी दुर्दशा में पड़ा जी रहा है, इस विचार ने गांधी जी का हृदय हिला दिया। उन्होंने हरिद्वार में व्रत लिया कि दिनभर में पांच व्यंजनों से अधिक भोजन में न लूंगा और सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करूंगा।

हरिद्वार से गांधी जी सपत्नीक मद्रास पहुंचे, जहां 21 अप्रैल, सन 1915 के दिन उनका सोत्साह अभिनंदन हुआ। अभिनंदन भाषण में श्री नटेसन ने कहा—हम सबकी मातृभूमि इस भारत देश की सेवा करने वालों की विशाल सूची में कोई ऐसा नाम नहीं है जो आपके नाम के साथ रखा जा सके।

गांधीजी ने उत्तर दिया—आपने जिन शब्दों में हमारी सराहना की है, यदि हम उनके दशमांश के भी अधिकारी समझे जाएं, तो आप उनके लिए किन शब्दों का प्रयोग करेंगे जिन्होंने सत्याग्रह में अपनी जान देकर दक्षिण अफ्रीका में अपनी मातृभूमि की सेवा में अपने कर्त्तव्य पालन की पराकाष्ठा कर दी है। भला नागप्पन और नारायणस्वामी जैसे सत्रह-अठारह बरस के उन नौजवानों के लिए आप किस भाषा का प्रयोग करेंगे, जिन्होंने मातृभूमि का गौरव रखने के लिए हर तरह का कष्ट भोगा, हर तरह का दुःख और हर संभव अपमान सहा। वल्लीअम्मा, सोलह बरस की उस नन्ही बालिका के लिए आप किन शब्दों का प्रयोग करेंगे जो मेरित्जबर्ग जेल से मुट्ठी भर हड्डियों का ढांचा लेकर, ज्वर में तपती हुई निकली और महीना भर वही बीमारी भोगती हुई परलोक सिधार गई। आप कहते हैं कि उन वीर बालक-बालिकाओं को मैंने प्रेरणा दी। मैं यह नहीं मानता। सच तो यह है कि किसी भी पुरस्कार की आशा के बिना श्रद्धा से काम करने वाले सीधे-सादे उन निष्ठावान लोगों ने मुझे प्रेरणा देकर ऊपर उठाया।

गांधी जी ने दक्षिण भारत में विस्तार से यात्रा की। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन में गोरी सरकार की गोली खाकर दिवंगत हुए अपने दो वीर सहयोगियों के घर भी वह गए, जहां शहीदों की विधवाओं को उन्होंने धीर बंधाया और सान्त्वना दी। दक्षिण भारत में हाथकरघे का काम देखकर, उन्हें स्वदेशी वस्त्र के उत्पादन के प्रति आशा बंधी।

बंगलोर में उनकी गाड़ी को पुरुषों ने खींचा। गांधी जी ने जनता को समझाया कि यह रीति बुरी है। सेवकों को यों सिर चढ़ाकर, उन्हें बिगाड़ना अच्छा नहीं है। नेल्लूर में उन्होंने स्पष्टत: कहा कि दक्षिण अफ्रीका में किए हुए उनके कामों की प्रशंसा का राग अब बंद हो जाना चाहिए। गांधी जी को अपने देश की दशा देखकर जो दु:ख होता था, वह दक्षिण अफ्रीका में अपने काम की प्रशंसा सुनकर, कई गुना बढ़ जाता था। उन्हें अब एक धुन थी कि राष्ट्र के चरित्र का नए रूप में निर्माण हो। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए भारतीय राष्ट्र को अपने कर्त्तव्यों को भली-भांति समझ लेना होगा। कर्त्तव्यपालन से ही अधिकारप्राप्ति संभव है, गांधी जी का यह स्पष्ट मत था।

मद्रास के अपने दौरे में गांधी जी का मन स्वदेशी के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हुआ। तन पर की पोशाक ही नहीं, मन के संस्कार और विचार तथा पारस्परिक भारतीय व्यवहार की भाषा भी स्वदेशी हो, गांधी जी का मत था।

'वन्दे मातरम्' राष्ट्रगीत की भारतमाता की ऊंची आदर्श कल्पना और देश की असली बुरी हालत का अंतर गांधी जी को बहुत खलता था और वह इस व्यवधान को दूर करना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझते थे। कर्त्तव्य-पूर्ति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए गांधी जी को एक साधना केन्द्र स्थापित करना अनिवार्य जान पड़ा। 25 मई, सन 1915 के दिन अहमदाबाद के निकट कोचरब नामक स्थान में गांधी जी ने भारत में अपने पहले सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की।

धर्म, सम्प्रदाय, जाति और वर्ग के आधार पर भेदभाव के बिना, मानवता की सेवा करने के लिए सत्याग्रह का व्रत लेने वाला कोई भी व्यक्ति आश्रम में प्रवेश पा सकता था। छूआछूत की संकुचित भावना से गांधी जी का हृदय बाल्यकाल से ही मुक्त था। सत्य

का साक्षात्कार करने लेने के बाद तो छुआछूत का प्रश्न उठता ही न था।

कोचरब आश्रम में कुछ ही महीनों बाद एक अछूत परिवार का प्रवेश हुआ। परिणाम यह निकला, आर्थिक सहायता देनेवाले दानी-मानी सहृदयों ने एकदम हाथ खींच लिया। गांधी जी को सामाजिक बहिष्कार की धमकियां दी गईं। लेकिन गांधी जी अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहे। अपने सब आश्रमवासियों के साथ उन्होंने अहमदाबाद की भंगी बस्ती में रहने और मेहनत-मजदूरी से अपना काम चलाने का इरादा किया। और एक दिन आश्रम की धनराशि पूरी तरह चुक गई। उसी दिन एक गुमनाम व्यक्ति आश्रम में आया और तेरह हजार रुपये देकर, जैसे आया था, चला गया। इस प्रकार आगामी एक साल का प्रबन्ध हो गया। कोचरब आश्रम की प्रवृत्तियां दिनोंदिन बढ़ती गईं। प्रमुख थी कपड़े की बुनाई, लेकिन कताई के लिए चर्खे का प्रवेश अभी होना था। संयोगवश पुरानी बड़ौदा रियासत के एक छोटे-से गांव बीजापुर में एक पुराना चर्खा मिल गया, जिसे झाड़-पोंछ कर आश्रम में लाया गया। बस, महात्मा गांधी को स्वराज्य प्राप्ति के लिए जैसे सुदर्शन-चक्र की ही प्राप्ति हुई।

इसी वर्ष गांधी जी को ब्रिटेन के राजा और भारत के सम्राट के जन्मदिवस पर साम्राज्य के प्रति सेवाओं के लिए 'कैसरेहिन्द' का पदक प्राप्त हुआ। कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर को इस अवसर पर 'सर' की उपाधि दी गई थी।

स्वर्गीय गोखले जी के आदेशानुसार गांधी जी एक वर्ष तक राजनीतिक मामलों से अलग ही रहे। उनके प्रयत्नों का उद्देश्य स्वदेशी के प्रचार-प्रसार, अछूतोद्धार और भारतीय जनता को कर्त्तव्यपालन के प्रति प्रेरित और उत्साहित करने तक ही रहा। किन्तु सन उन्नीस सौ पन्द्रह का वर्ष बीता और सन उन्नीस सौ

सोलह के दूसरे महीने की चौथी तारीख को गांधी जी काशी विश्व-विद्यालय के उद्घाटन समारोह में भाग लेने के लिए वाराणसी पहुंचे। काशी विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन-मोहन मालवीय गांधी जी के आतिथेय थे।

△

खरी बात और अनूठा व्यक्तित्व

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में गांधी जी की खरी-खरी बात और अनूठे व्यक्तित्व के कारण सभा मंडप में बड़ी हड़बड़ी मच गई। ऐसे अवसरों पर अधिकतर रस्म अदायगी के भाषण किए जाते हैं। लेकिन गांधी जी भाषण देने मंच पर पहुंचे तो ठेठ बात कहने के लिए। दरभंगा के महाराज सभापतित्व में आयोजित सभा म मंच पर भारत के अनेक राजे-महाराजे विराजमान थे, जिनके शरीर, कीमती पोशाक और बहुमूल्य रत्न-जटित आभूषणों से सुशोभित थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में उन्होंने पुष्कल आर्थिक सहायता प्रदान की थी और इस अवसर पर भारतीय राजे-महाराजों के राज-राजेश्वर आंग्ल सम्राट के प्रतिनिधि वायसराय महोदय भी उपस्थित थे। ऐसी परिस्थिति में सभामंच की सजधज और चमक-दमक की सहज ही कल्पना की जा सकती है। इस पृष्ठभूमि में एक कर्मठ सत्याग्रही, आश्रमवासी बुनकर और और एक ठेठ भारतीय किसान के पहनावे वाले भूतपूर्व बैरिस्टर और
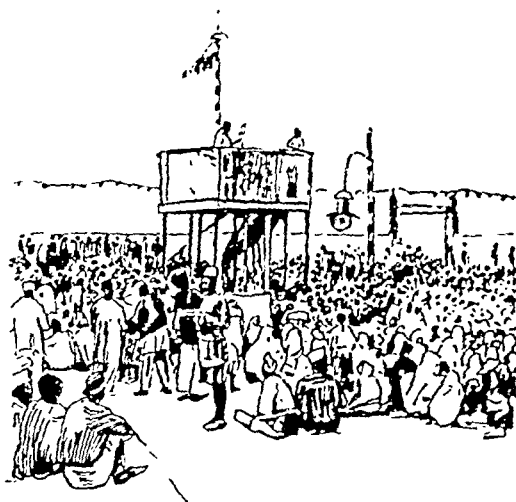
गांधीजी का एक सार्वजनिक भाषण

प्रवासी भारतीय विजेता नेता का मंच पर पदार्पण निस्सन्देह कुछ अनूठेपन के साथ हुआ होगा ।

गांधी जी ने देश की गरीबी का जिक्र करते हुए राजाओं की शान-शौकत की आलोचना की । उन्हें तो ठेठ बात कहनी थी । नतीजा यह हुआ कि सभा-संचालिका श्रीमती एनी बेसेंट ने "बस, बहुत हुआ । कृपया भाषण बंद कीजिए" कहकर गांधी जी को भाषण करने से रोका और विद्यार्थी और सामान्य नागरिक श्रोताओं ने "कहे जाइए" कहकर उन्हें प्रोत्साहित किया । नए दिन के आने पर बुझते हुए चांद-सितारों की तरह मंच पर के राजे-महाराजे सभा त्याग कर चले गए और अन्ततः किन्तु भाषण की समाप्ति से पहले ही सभापति दरभंगा नरेश अपने आसन से उठ गए । विद्यार्थी, सामान्य नागरिक, श्रोता और आतिथेय मालवीय जी गांधी जी के साथ रहे ।

अंग्रेजी सरकार के अधिकारियों का भाव व्यक्त करने के लिए स्थानीय पुलिस कमिश्नर ने उसी रात गांधी जी को बनारस छोड़ने का हुक्म दिया । मालवीय जी ने बीच में पड़कर निष्कासन आदेश को रुकवाया । लेकिन गांधी जी ने दिन निकलते ही काशी से प्रस्थान कर दिया ।

आखिर गांधी जी की बात का सारांश क्या था ? सर्वप्रथम तो विलम्ब से पहुंचने के कारण क्षमा याचना और साथ ही नगर में में जगह-जगह और विशेषकर समारोह के प्रवेशद्वार पर सरकारी या पुलिस के प्रवन्ध की कठोरता और गैरसरकारी प्रबंधकों की ढील और दीर्घसूत्रता की शिकायत । उन्हें सरकारी पुलिस राज और गैर-सरकारी ढील-ढाल से स्वाभाविक अरुचि थी । अंग्रेजों के बीच रहने के अपने अनुभव के कारण उन्हें इन बातों का अभ्यास न था । इस विषय में यदि कहा जाए कि गांधी जी ठेठ भारतीय किसान की पोशाक में ठेठ लोकतंत्री अंग्रेज थे, तो अन्यथा न होगा ।

भाषण का दूसरा अंश अंग्रेजी में लेक्चर झाड़नेवाले तत्कालीन नेताओं की रीति के सम्बन्ध में था । गांधी जी न अंग्रेजी माध्यम के पक्ष

में थे, न वक्तृता प्रदर्शन के। कुछ महीने पहले की बम्बई कांग्रेस के अपने अनुभव का हवाला देते हुए गांधी जी ने सिद्ध कर दिया कि सार्वजनिक सभाओं में अंग्रेजी भाषण सुनकर श्रोताओं के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। हिन्दी के माध्यम से कही गई बातों को लोग अच्छी तरह से समझ लेते हैं। अहिंदी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी से काम चल सकता है, तो काशी में क्यों नहीं ?

भाषा के प्रश्न को और उभार कर, गांधी जी ने शिक्षा के प्रसार-प्रचार और भारतीय प्रतिभा के विकास के लिए भारतीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिन्दी को उचित और अनिवार्य सिद्ध किया।

गांधी जी ने चेतावनी दी कि स्वराज शब्दों से नहीं, आत्म-सुधार और राष्ट्रीय अनुशासन से मिलेगा। भारतीय नगरों में मंदिरों, गलियों और बस्तियों की गंदगी की चर्चा करते हुए, गांधी जी ने कहा : "हमें गंदगी में रहते हुए देखकर कोई भी बाहरी व्यक्ति हमारे नागरिक विवेक और राष्ट्रीय चरित्र को अच्छा न कहेगा। प्राचीन भारतीय गौरव और भारत की आध्यात्मिक विभूति के अनुरूप ही हमें अपने और अपने देश के जीवन की नई रचना करनी चाहिए। हमारे नगरों में साफ-सुथरी छावनी और पुरानी बस्ती के बीच का भेद-भाव नहीं रहना चाहिए।

अंग्रेजी पढ़े-लिखे सूट-बूटधारी व्यक्ति जिनमें विद्यार्थी भी शामिल हैं, जनता को अलग ठेलकर, सुख-सुविधा के स्थान हथिया लेते हैं, गांधी जी ने इसकी आलोचना की। पढ़े-लिखे लोगों को तो अपने आचरण और व्यवहार से जनता को नवजीवन का सन्देश देना चाहिए।

गांधी जी ने इस विडम्बना की ओर भी संकेत किया कि कल समारोह में सभापति एक महाराजा साहब ने हीरे-जवाहरात में लदे-फंदे होते हुए भी जनता की गरीबी की बात कही। राजा-महाराजाओं

के प्रति गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उनके जवाहरात और महल सब किसान की सौगात और पसीने की कमाई हैं। इसलिए "भारत की मुक्ति और हमारा कल्याण किसान के हाथों में है। वकील-बैरिस्टर, डाक्टर और अमीर जमींदार और तालुक्केदार भारत के भाग्यविधायक नहीं हैं।"

वायसराय महोदय की सुरक्षा के लिए काशी नगर को खुफिया और खुली वर्दीदार पुलिस के शिकंजे में कस देने की आवश्यकता पर गांधी जी ने खेद प्रकट किया। शासक और शासितों के बीच सन्देह, भय और शंका के वातावरण पर दुःख प्रकट करते हुए, गांधी जी ने आशा व्यक्त की कि भारतवर्ष अंग्रेजी साम्राज्य का प्रसन्न और सुखी सदस्य बन सके, क्योंकि इसी में दोनों का कल्याण है।

उन्होंने यह भी कहा कि अफसरों को बिगाड़ने में नागरिकों का भी हाथ होता है। क्या कारण है कि जो अंग्रेज अफसर स्वेज के उस पार भलामानस होता है,यहां आकर कुछ दिनों में अभद्र हो जाता है? गांधी जी यह कह ही रह थे कि अंग्रेज राष्ट्र और उनका साम्राज्य स्वतंत्रताप्रेम है, किन्तु स्वतंत्रता का मूल्य समझने वाले योग्य राष्ट्र को ही स्वतंत्रता प्राप्त होती है, जैसे दक्षिण अफ्रीका में बोअर और अंग्रेज, जो कल लड़े भी और आज मित्र हैं· · · , इतने में मंच पर खलबली मची, गांधी जी टोके गए और श्रोताओं द्वारा प्रोत्साहित किए किए। खरी बात पूरी न हुई, जो भारत के भावी महानेता महात्मा गांधी की कथनी और करनी की अलिखित भूमिका ही थी।

काशी विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह के मंच पर रंग में भंग भले ही हुआ हो, किन्तु भारतीय राजनीति का रंगमंच भारत के भावी महानेता के लिए धीरे-धीरे अनुकूल रीति से सज रहा था। सन सोलह की लखनऊ कांग्रेस में हिन्दू-मुस्लिम एकता अभूतपूर्व रूप में दृढ हो गई थी। पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री मोहम्मद अली जिन्ना और लोकमान्य तिलक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को ऐसे ढंग से

प्रस्तावित और अनुमोदित किया था कि सन अठारह सौ सतावन के बाद पहली बार सन उन्नीस सौ सोलह में भारत के हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर और एक होकर देश को आजाद करने का संकल्प कर दिखाया था। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी इस दिशा में पहले ही पहल कर चुके थे। इसलिए हिन्दू-मुस्लिम एकता से वह प्रसन्न थे ही।

प्रसन्नता की बात यह भी थी कि नौ वर्ष के बाद, सन उन्नीस सौ सोलह की कांग्रेस में नरम दल और गरम दल के बीच भी एकता हो गई थी। देश के राजनीतिक जीवन में अभूतपूर्व उत्साह दिखाई देता था। चारों और आशा बलवती हो रही थी कि महायुद्ध के उपरान्त देश औपनिवेशिक स्वराज प्राप्त कर लेगा और ब्रिटिश साम्राज्य में भारत कनाडा की भांति भाईचारे के सिद्धांत पर बराबरी का दर्जा प्राप्त करेगा।

ऐसी स्थिति में गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों की बची हुई एक समस्या को सुलझाने के प्रति प्रयत्न आरम्भ किया। बची हुई समस्या थी कि भारत सरकार गिरमिटिया भारतीय मजदूरों की भर्ती एकदम बन्द कर दे, ताकि भविष्य में उनके लिए गुलामी की आशंका ही न रहे। वायसराय ने इस विषय में पहले तो टालबाजी की। लेकिन इस विषय में केन्द्रीय (इम्पीरियल) कौंसिल में महामना मालवीय जी के प्रयत्नों और गांधी जी की अखिल भारतीय आन्दोलन की धमकी के आगे वायसराय को झुकना पड़ा, और भारतीय गिर-मिटिया मजदूरों की भर्ती पर रोक लगा दी गई।

गिरमिटिया मजदूरों के उद्धारक गांधी जी के प्रयत्नों से प्रेरणा प्राप्त कर, बिहार के राजकुमार शुक्ल उनके पास आए कि वहां नील की खेती में फंसे हुए किसानों को भी गुलामी से मुक्ति मिले। दक्षिण अफ्रीका में गोरे मालिकों की भांति, बिहार के चम्पारन जिले में भी गोरे जमींदार वहां के गरीब किसानों को गुलाम बनाए

हुए थे। गुलामी के विरुद्ध आन्दोलन करने में राजकुमार शुक्ल अपना सर्वस्व स्वाहा करके, अलख जगाते घूमते थे। उन्हें एकमात्र गांधी जी से ही यह आशा थी कि वह गरीबी और गुलामी के दलदल में फंसे हुए चम्पारन के किसानों का उद्धार कर सकेंगे। राजकुमार शुक्ल ने गांधी जी को बार-बार घेरा।

सन सोलह की लखनऊ कांग्रेस इस विषय में एक प्रस्ताव पास कर चुकी थी। लेकिन प्रस्ताव पास करना एक बात है और उस पर कार्रवाई करना दूसरी बात। सक्रिय उपायों का अभ्यास तत्कालीन नेताओं को न था। चम्पारन के किसानों के बीच में रहकर, सक्रिय उपाय करने का भार गांधी जी पर पड़ा। यही उनके व्यक्तित्व का अनूठापन था। उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व में एक अद्भुत समानता थी।

गांधी जी 10 अप्रैल, सन 1917 के दिन पटना पहुंचे जहां से उन्होंने मुजफ्फरपुर होते हुए चम्पारन जिले के देहात में प्रवेश किया। गोरे निलहा साहबों के कान खड़े हुए। सरकारी तंत्र भी गोरे जमींदारों का पक्षपाती बना। सत्याग्रह आन्दोलन की नौबत आई ही थी कि सरकार झुक गई और उसने एक जांच कमीशन की नियुक्ति की। गांधी जी भी कमीशन के सदस्य नियुक्त किए गए। जांच कमीशन की रिपोर्ट में सुझाव दिया गया कि नील की खेती में गुलामी करने वाले किसानों की दुरवस्था को तुरन्त सुधारा जाए। बिहार के इस वन्य देहाती क्षेत्र में अद्भुत जागृति हुई। किसानों को आखिर विश्वास हुआ कि भारत में कोई उनका भी धनी-धोरी है।

गांधी जी की कार्यप्रणाली की एक झांकी लेना भी जरूरी है। पहले तो देहात का दौरा। पंद्रह अप्रैल को गांधी जी दो स्थानीय कार्यकर्ताओं के साथ दोपहर की रेलगाड़ी से मोतीहारी को रवाना हुए। रास्ते के हर स्टेशन पर किसानों की भीड़ उमड़ती रही, जो ठिकाने पर पहुंचते-पहुंचते बहुत अधिक बढ़ गई। अगले सवेरे नौ बजे मोतीहारी से जसौली पट्टी की ओर हाथी की सवारी

करनी पड़ी, क्योंकि झील और दलदल के उस क्षेत्र के लिए वही सर्वो-त्तम उपाय था। रास्ते में साइकिल सवार एक थानेदार ने सूचना दी कि गांधी जी को कलक्टर साहब ने सलाम भेजा है। हाथी से बैलगाड़ी की सवारी की बारी आई। पक्की सड़क पर आते ही गांधी जी को थानेदार ने बैलगाड़ी से इक्के में बिठलाया। कुछ दूर जाने के बाद सामने से डिप्टी पुलिस सुप्रिटेंडेंट साहब टमटम में आते दिखाई दिए। गांधी जी को टमटम में बिठाया गया। रास्ते में कमिश्नर का हुक्म दिखलाया गया कि गांधी जी चम्पारन जिला छोड़कर फौरन बाहर चले जाएं।

मजिस्ट्रेट की अदालत में गांधी जी ने कहा—"मैं अदालत के समय को बर्बाद नहीं करना चाहता। मैं हुक्म नहीं मानना चाहता। अपना अपराध स्वीकार करता हूं।"

मजिस्ट्रेट महोदय बोले—"अगर आप जिले से बाहर जाना स्वीकार करें और वचन दें कि इधर वापस न लौटेंगे, तो आपके खिलाफ मुकदमा नहीं चलाया जाएगा।"

गांधी जी ने उत्तर दिया—"यह नहीं हो सकता। इस अवसर पर यहां से जाने और फिर वापस न आने का तो सवाल ही नहीं उठता। मैं तो जेल से बाहर निकलने के बाद भी चम्पारन में बस जाने का इरादा कर रहा हूं।"

मजिस्ट्रेट चक्कर में पड़ गए कि क्या करें क्या न करें। मुकदमा स्थगित कर दिया और अपराधी से जमानत देने के लिए कहा गया। गांधी जी ने कहा—"मेरा कोई जामिन नहीं है।" हारकर मजिस्ट्रेट ने अपराधी की ही जमानत पर चार दिन के लिए उन्हें मुक्त रखा। चार दिन के बाद प्रातःकाल मजिस्ट्रेट ने अपराधी को लिखित सूचना दी कि लेफ्टिनेंट गवर्नर ने उनके विरुद्ध मुकदमे को उठा लिया है।

उत्पीड़ित किसानों के बयान सवेरे साढ़े छह से शाम को साढ़े छह बजे तक दर्ज किए जाते थे। हर बयान की प्रामाणिकता के

विषय में सावधानी से पूरी छानबीन की जाती थी। चार हजार किसानों के बयान पूरी छानबीन के साथ दर्ज किए गए थे, जिनके आधार पर गांधी जी ने उनकी दुर्दशा का विवरण अपनी रिपोर्ट में दिया। सरकार को जांच समिति नियुक्त करनी पड़ी और चम्पारन के आंचल से नील का दाग धुल गया। इसके बाद गांधी जी ने उस
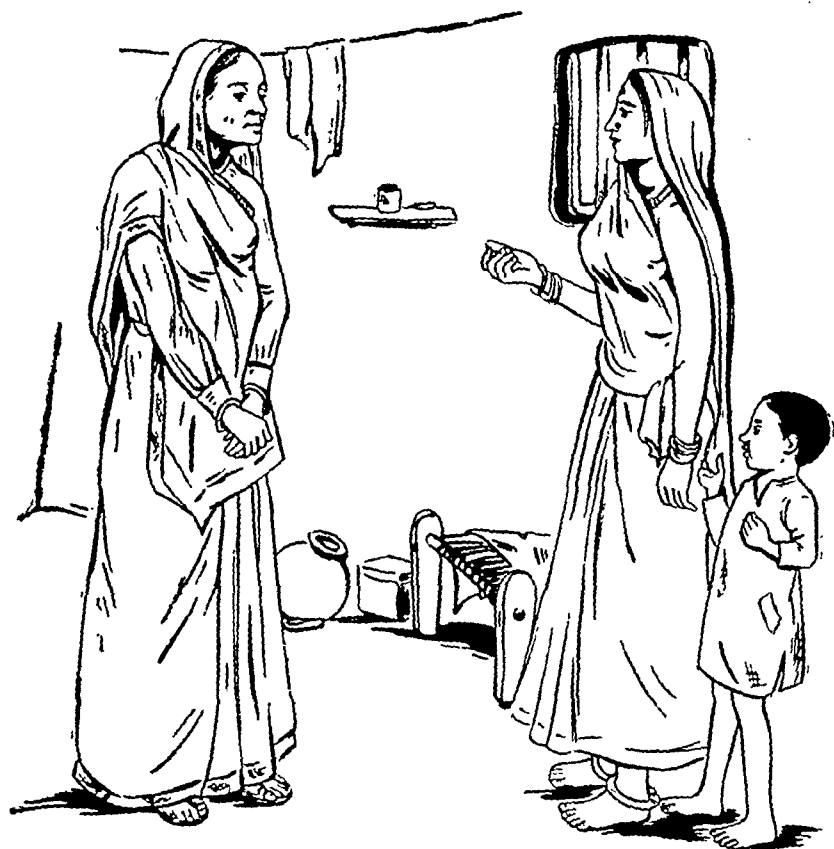
एक स्त्री कस्तूरबाई को अपनी झोपड़ी में ले गई। उसने कहा—"देखिए, बहन, न यहां कोई बक्स, न अलमारी। न कपड़े-लत्तों की कहीं कोई गठरी बांध रखी है, न कोई कपड़ा अलगनी पर पड़ा है। यही एक धोती है मेरे पास। मैं क्या पहनूं और क्या धोऊं?"

देहात में विद्यालय खुलवाए और समाज सुधार और ग्राम सुधार का रचनात्मक कार्य आरम्भ कराया।

गांधी जी से एक दिन अपनी सहधर्मिणी ने कहा कि गांव की स्त्रियों से साफ-सुथरे कपड़े पहनने को समझाए। एक स्त्री कस्तूरबाई को अपनी झोंपड़ी में ले गई। उसने कहा—"देखिए, बहन, न यहां कोई बक्स, न अलमारी। न कपड़े-लत्तों की कहीं कोई गठरी बांध रखी है, न कोई कपड़ा अलगनी पर पड़ा है। यही एक धोती है मेरे पास। मैं क्या पहनूं और क्या धोऊं?" गांधी जी को अनुभव हुआ कि चरखा, करघा और खेती की पूरकी देहाती दस्तकारी से ही गांव की गरीबी दूर हो सकती है। चम्पारन में गांधी जी का कार्य उनके भावी महत्कार्य के लिए पूर्वाभ्यास के समान था।

आगामी वर्ष, यानी सन उन्नीस सौ अठारह में गांधी जी को हड़ताली मिल मजदूरों के नेतृत्व का भार उठाना पड़ा। चम्पारन के किसानों के उद्धारक के लिए मजदूरों का नेतृत्व एक पूरक कार्यक्रम के समान था। स्मरणीय है कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन में गांधी जी का साथ हजारों प्रवासी भारतीय मजदूरों ने दिया था। यह भी कहा जा सकता है कि वहां गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता का श्रेय भी वहां के प्रवासी भारतीय मजदूरों को ही था, जिन्होंने खानों और खलिहानों में हड़ताल करके, सत्याग्रही सेना के रूप में उस महान् कूच में भाग लिया था, जिसके गांधी जी नेता थे।

अहमदाबाद के हड़ताली मिल मजदूरों ने गांधी जी के नेतृत्व में प्रतिज्ञा की कि वह शांति और अहिंसा से आन्दोलन करेंगे, किसी के सामने हाथ न पसारेगें बल्कि हड़ताल के दिनों में अपने पेट-पालन के लिए अन्य किसी प्रकार की मेहनत मजदूरी करने के लिए तैयार रहेंगे। पंचायत में मजदूरों के प्रतिनिधि थे गांधी जी, वल्लभभाई पटेल और शंकरलाल बैंकर।

हालांकि गांधी जी के आश्रम को, जो उन दिनों कोचरब से साबरमती आ गया था, धनी-मानी मिल-मालिकों से भी आर्थिक सहायता मिलती थी, फिर भी गांधी जी हड़ताली मजदूरों का ही पक्ष ले रहे थे। हड़ताल एक पखवाड़े तो उत्साह से चलती रही। किन्तु तीसरे सप्ताह में भूखे हड़ताली मजदूरों का जोश ठंडा पड़ने लगा। गांधी जी ने स्थिति को समझा। उन्होंने कहा—"बीस दिन तो निकल गए हैं। लेकिन अब भूख और मिल-मालिकों के कारकुनों की कानाफूसी का असर मजदूरों में कमजोरी पैदा करने लगा है।"

मजदूर आपस में कहने लगे थे कि गांधी जी के लिए 'जान जाए पर आन न जाए, कहना आसान है, लेकिन हम मजदूरों को तो किसी-न-किसी तरह पेट पालना है। कुछ मजदूरों ने अधीर होकर खुल्लमखुल्ला कहना शुरू कर दिया कि हम निरुपाय भूखों मर रहे हैं। बस, गांधी जी को तुरन्त उपाय सूझ गया। वह बोले—"हम सब साथ-साथ भूखों मरेंगें।"

गांधी जी भूख हड़ताल करेंगे, यह जानकर मजदूर हिल गए। उन्होंने लाख विनती की कि गांधी जी भूख हड़ताल न करें। लेकिन गांधी जी अपने संकल्प पर अडिग रहे। गांधी जी के अनशन का तीसरा दिन बीतते हड़ताली मिल-मजदूरों और अड़े हुए मिल-मालिकों में समझौता हो गया। समझौते की खुशी में मालिकों ने मजदूरों के बीच मिठाई बांटी। स्मरण है कि मिल-मालिकों के नेता अम्बालाल साराभाई की अपनी ही बहन हड़ताल के दिनों में बराबर मजदूरों के पक्ष में थी। यह सब गांधी जी के अनूठे व्यक्तित्व के कारण ही संभव हो सकता था।

इस अनूठे व्यक्तित्व और चम्पारन कांड में गांधी जी की कार्यक्षमता से चिढ़कर ही मोतीहारी की नील की कोठी के अंग्रेज मैनेजर श्री अर्विन ने 'पाइनियर' पत्र में सम्पादक के नाम लिखा

था : "मैं भी मानता हूं कि मिस्टर गांधी बुरे आदमी नहीं हैं। पर वह झक्की किस्म के अड़ियल सिद्धान्तवादी हैं। उन्हें दक्षिण अफ्रीका में थोड़ी-बहुत सफलता क्या मिली कि उनको गुमान हो गया है और वह मान बैठे हैं उन्हें भगवान ने दुनिया की हर बुराई को दूर करने का ठेका दे दिया है।"

गांधी जी स्वयं को ईश्वर के ठेकेदार नही, विनम्र और अथक सेवक ही समझते थे। भारतीय प्रथा का ऐसा भाव अवश्य था कि गांधी जी जनता के दुख दूर कर सकते हैं। इसी आशा-विश्वास से गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों ने गांधी जी की पुकार की।

खेड़ा जिले में उस साल फसल मारी गई थी। अकाल की-सी हालत थी। किसान लगान की माफी चाहते थे। ऐसा कायदा भी था कि फसल सामान्य की एक-चौथाई से कम हो तो लगान वसूल नहीं किया जाएगा। लेकिन सरकारी अफसरों का कहना था कि फसल एक-चौथाई से कम नहीं है, जबकि सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी के नरमदली सदस्य भी फसल को चौथाई से कम बता चुके थे। लेकिन सरकारी अफसर तो अड़े हुए थे कि फसल चौथाई से अधिक है (चाहे वह सवा चार आने भर ही क्यों न हो)। गांधी जी ने स्वयं देहात का दौरा किया और सरकार से आधे लगान की माफी पर समझौते की बात चलाई। लेकिन सरकार ने उनकी बात नहीं मानी। अहमदाबाद में हड़ताल की समाप्ति के एक सप्ताह बाद ही खेड़ा जिले में सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ गया। कमिश्नर ने गांधी जी की निन्दा की कि युद्ध-काल में गांधी जी ने गड़बड़ी पैदा करने की ठानी है। गांधी जी ने जवाब दिया—"सत्याग्रह आन्दोलन को आपने बुलावा दिया है।"

सत्याग्रह आन्दोलन चार महीने चला। सरकार ने लगान न देने वाले किसानों के खेत छीन लिए। गांधी जी ने आदेश दिया कि खेतों में नाममात्र की फसल खड़ी है, उसे सत्याग्रही किसान काट कर अपने घर ले जाएं। किसान सत्याग्रही जेल में डाल दिए गए। जेल-

यात्री किसानों का प्रजा ने जय-जयकार किया। सत्याग्रही किसानों के जय-जयकार से अदालतों के अहाते और जेल के दरवाजे गूंजने लगे। लेकिन एक दिन एकाएक सरकार झुक गई। समझौता हुआ। सत्याग्रही जेलयात्री रिहा हुए। अपने जय-जयकार को शांत कराकर, अभिनंदित विजेता नेता ने कहा—"जनता के सेवक का अभिनंदन-सम्मान से भला क्या वास्ता? जिसने लोकसेवा को अपना धर्म बना लिया हो, उसे मान-सम्मान की भूख नहीं होनी चाहिए। मुझे सम्मानित करने की सबसे अच्छी रीति यही होगी कि आप मरा कहा मानें और मेरे सिद्धान्तों पर अमल करें।"

शत्रु-मित्र का भेद गांधी की दृष्टि में था ही नहीं। सत्य पर वह आग्रह करते थे, लेकिन प्रेम के साथ। गांधी जी ने प्रेम के साथ तत्कालीन वायसराय को लिखा कि चंपारन हो या खेड़ा, उन्होंने जहां भी सत्याग्रह किया, केवल इस उद्देश्य से कि इंग्लैण्ड के साम्राज्य का फैला हुआ आंचल सर्वत्र उज्ज्वल रहे। भारत को भी यदि उस आंचल में रहना है तो स्वच्छ, स्वतन्त्र, स्वाभिमानी, गौरवशाली देश के रूप में ही रहना चाहिए। वह भाईचारे या मित्रता के संबंधों से भारत और इंग्लैंड को जोड़ना चाहते थे। सन उन्नीस सौ अठारह में जब महायुद्ध में इंग्लैंड संकट में पड़ गया, तो गांधी जी ने युद्ध के लिए रंगरूट भरती करने का भी बीड़ा उठाया। लोकमान्य तिलक ने युद्धोपरान्त स्वराज की शर्त लगाई, किन्तु गांधी जी बिना शर्त मदद देने के पक्षपाती थे। फिर भी अपने देश के प्रतिनिधि, ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक और मित्र की हैसियत से गांधी जी ने वायसराय को समझाया कि भारत की जनता को युद्धोपरान्त स्वराज का आश्वासन और भारतीय मुसलमानों की भावना का ध्यान रखते हुए, तुर्की के प्रति न्याय और सद्-भाव का भरोसा भी दिया जाए। भविष्य में खिलाफत के प्रश्न की ओर गांधी जी ने इस प्रकार पहले ही वायसराय को सचेत कर दिया था।

रंगरूट भरती करने के काम में गांधी जी को असफलता का मुंह देखना पड़ा। इस कार्य के लिए यों तो बहुत अनुकूल क्षेत्र चुना था, यानी खेड़ा जिला, जहां कुछ दिनों पहले ही विजेता नेता के रूप में उनका जय-जयकार हुआ था। किन्तु कृतज्ञ जनता ने रंगरूट भरती करने वाले गांधी जी को सत्याग्रही नेता के रूप में न पहचाना। सत्याग्रही नेता के झण्डे के नीचे रोज हजारों सिपाही आनन-फानन में जमा हो जाते थे। रंगरूट भरती करने वाले गांधी जी की कोई न सुनता था। सत्याग्रही कार्यकर्त्ताओं को ग्रामीण मुफ्त सवारी देते थे, उनके खाने-पीने का प्रबंध करते थे, जगह-जगह उनकी आवभगत करते थे। अब न सवारी मिलती थी, न कहीं आवभगत होती थी। गांधी जी धुन के पक्के थे। वह स्वयं तो अपने आश्रमवासी कार्यकर्त्ताओं के साथ रंगरूट भरती कराने के काम में जुटे ही रहे, उन्होंने श्रीमती बेसेंट और श्री जिन्ना को भी भारत भर में सैनिक भरती के पक्ष में जोरदार वक्तव्य देने के लिए पत्र लिखे।

प्रतिकूल वातावरण, विषम जलवायु और जेठ-आषाढ़ के महीनों में अल्प-स्वल्प साधनों से देहातों में दौरा करते-करते, और अपनी गलत खुराक के कारण भी, गांधी जी बहुत बीमार पड़ गए। देहात से नड़ियाड़ पहुंचते-पहुंचते पेचिश की उनकी बीमारी इतनी बढ़ गई कि चौबीस घण्टे में उन्हें तीस से चालीस तक दस्त होने लगे। उन्हें साबरमती आश्रम में पहुंचाया गया, जहां एक दिन वह मरणासन्न हो गए। डाक्टर बुलाए गए। गांधी जी ऐसा मानने लगे थे कि उनकी मृत्यु सन्निकट है। संभव है ईश्वर की इच्छा न थी कि गांधी जी महायुद्ध के लिए रंगरूट भरती करने का काम करें। इसी युद्ध के आरम्भ में लंदन में एम्बूलेंस टोली बनाने के सिलसिले में भी गांधी जी प्लूरिसी की बीमारी से पीड़ित हुए थे।

सन 1918 में अपनी बीमारी से उबरने के लिए ही, गांधी जी ने बाध्य होकर अपनी सहधर्मिणी के आग्रह से बकरी का दूध लेना

स्वीकार किया था। लगभग बारह वर्ष पूर्व गांधी जी ने दूध छोड़ा था, तब उनके मन में गाय-भैंस के ही दूध की बात थी। बकरी का दूध तब उनके ध्यान में न था। इसलिए गांधी जी से बकरी के दूध के लिए ना कहते न बना। इस प्रसंग में गांधी जी ने कहा है—"मैं जीना चाहता था, इसलिए मैंने शब्दों की आड़ में अपनी प्रतिज्ञा का इस रूप में पालन करना स्वीकार किया।"

सन उन्नीस सौ अठारह के नवम्बर मास में महायुद्ध समाप्त हो गया। भारत में स्वराज पाने की आशा सर्वत्र बलवती थी। उधर संकट से उबरे हुए विजयी ब्रिटेन के राजनेता, भारत में अंग्रेजी अधिकारी और अंग्रेज व्यापारी विजय पाकर गर्वीले बन गए थे। भारत में प्रभुता का मद तो उनके मन में था ही, विजयोन्माद उन्हें दिनोंदिन अधिक मदमत बना रहा था। नतीजा यह हुआ कि भारत की आशा को अंग्रेजी सरकार ने दुराशा में बदलना चाहा। अंग्रेजी सरकार का कभी एतबार नहीं करना चाहिए, भारतीय मानस की यह गांठ दिनोंदिन और भी मजबूत हो रही थी। भारत के मन में यह प्रश्न उठने लगे थे कि क्या हुआ ब्रिटेन के प्रधानमंत्री के वचन का? क्या हुआ भारत मंत्री मौंटेग्यू और वायसराय चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट का, जिसके आधार पर भारत स्वराज की मंजिल में एक ऊंची सीढ़ी पर चढ़ने वाला था? भारत मानों दुःस्वप्न से जाग कर आंखें तरेर रहा था। रोम्यां रोलां के शब्दों में "यह जागृति बड़ी भयंकर थी। सन् उन्नीस सौ अठारह के अंत में ब्रिटेन संकट से उबर चुका था। युद्ध में भारत की सेवा और सहयोग की बात भुला दी गई थी। शांति संधि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद अंग्रेजी सरकार को भारत की तुष्टि के दिखावे की आवश्यकता नहीं रह गई थी। स्वतंत्रता की आशा दिलाकर, वचन-पालन करने की जगह, अंग्रेजी सरकार भारतीय प्रजा की रही-सही स्वतंत्रता का भी अपहरण करने पर तुल गई थी। दिल्ली की शाही विधान समिति में रोलैट बिल पेश करके, सरकार

ने मानों उस भारत को विश्वास के अयोग्य घोषित कर दिया, जिसने इंग्लैण्ड का साथ देकर राजभक्ति का हर संभव सबूत दिया था। यह भारत का घोर अपमान था। रोलैट बिल की मंशा युद्धकालीन रक्षा कानून को बनाए रखना था, जिसके अनुसार खुफिया पुलिस का राज, हर तरह की पाबंदी और शासन की निरंकुशता ज्यों की त्यों बनी रहेंगी। युद्ध की स्थिति में प्रजा की जो घेराबंदी की गई, उसे सदा के लिए प्रजा की दासता का रूप दिया जा रहा था। यही कठोर वास्तविकता थी, जिसके विरुद्ध भारत में एकमत से भीषण प्रतिक्रिया हुई। राजद्रोह का आन्दोलन शुरू हुआ। गांधी इसके नेता बने। रोम्यां रोलां कहते हैं कि "राजद्रोह का यह आन्दोलन वास्तव में 28 फरवरी, सन 1919 के दिन आरम्भ हुआ।"

चौबीस फरवरी को साबरमती आश्रम में सत्याग्रही की प्रतिज्ञा तैयार की गई जो संभवत: अट्ठाईस फरवरी को प्रकाशित हुई। प्रतिज्ञाबद्ध सत्याग्रही बम्बई में गांधी जी की सरकार द्वारा जब्त की हुई पुस्तकें खुलेआम बेचने लगे। गांधी जी सत्याग्रह आन्दोलन की रूपरेखा बनाने के लिए चिन्तन कर रहे थे कि 19 मार्च, सन 1919 को रात गए गांधी जी को स्वप्न में यह विचार आया कि भारत भर में पूर्ण हड़ताल की घोषणा करो। भोर हुए उन्होंने श्री राजगोपालाचारी से कहा—"कल रात मुझे यह विचार स्वप्न में आया कि हमें भारत भर में पूर्ण हड़ताल के लिए देशवासियों से अपील करनी चाहिए। स्वराज की लड़ाई धर्मयुद्ध है। इसलिए मुझे तो यही उचित लगता है कि इसका आरम्भ आत्मशुद्धि से होना चाहिए। हड़ताल के दिन सब भारतवासी सामान्य काम-धन्धे से हाथ खींचकर चौबीस घंटे का अनशन और ईश्वर प्रार्थना करें।"

देशव्यापी हड़ताल का दिन पहले तीस मार्च और फिर छह अप्रैल सन् उन्नीस सौ उन्नीस घोषित किया गया। देशव्यापी हड़ताल हुई। वि-सेन्ट शीन ने महात्मा गांधी की जीवनी में लिखा है: "हड़ताल

को देखकर, हर व्यक्ति और स्वयं गांधी जी भी अचम्भे में पड़ गए। बड़े शहरों में सब काम ठप्प हो गया। बैंक काम न कर सके। जहाज से न माल उतारा गया, न उन पर माल चढ़ाया गया। यातायात के साधन बेकार हो गए। डाकसेवा बंद रही। भारत में अखिल देश-व्यापी पूर्ण हड़तालने किंकर्तव्यविमूढ़ अंग्रेजी सरकार और हर किसी को सिद्ध कर दिखाया कि देश में एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव हो गया है।"

इस नई शक्ति ने ही गांधी जी को अप्रत्याशित गति से ब्रिटिश साम्राज्य के राजभक्त नागरिक से विद्रोही महात्मा और नवभारत का भावी राष्ट्रपिता बना दिया।

मर्माहत आत्मा और विद्रोही महात्मा

सत्याग्रह आन्दोलन में पहले नौ शहीद दिल्ली में हुए। छह अप्रैल की जगह, वहां एक सप्ताह पूर्व तीस मार्च को ही पूर्ण हड़ताल हुई थी और पुलिस के हुक्म के खिलाफ हजारों का जुलूस निकला था। हिन्दू-मुसलमानों की एकता का प्रमाण था कि दिल्ली की जामा मस्जिद में उस दिन आर्य समाज के प्रमुख नेता श्रद्धानन्द ने एक विशाल सभा में भाषण किया था। सभा से पहले पुलिस जुलूस पर गोली चला चुकी थी, जिसमें चार मुसलमान और पांच हिन्दू मारे गए थे। सरकार ने सेना भी बुला ली थी और स्वामी श्रद्धानन्द ने सैनिकों की संगीनों के सामने शान्त भाव से अपना सीना खोल दिया था। गैरिक वस्त्रधारी उस शान्तवदन ऊंचे चौड़े संन्यासी को संगीनों का सामना करते देख, जनता ने भारतमाता के जय-जयकार से गगन गुंजा दिया था। इन घटनाओं के बाद भी चालीस हजार शान्त और निर्भय नागरिकों की सभा हुई और स्वामी श्रद्धानन्द ने उसमें भाषण किया। राजधानी के इस समाचार से देश भर में नया उत्साह लहर लेने लगा था।

गांधी जी बम्बई में थे। छह अप्रैल को श्रीमती नायडू और गांधी जी ने मोटर में बैठकर फेरी लगाई और जब्त किताबें बेचीं। सरकार से पंजीकरण कराए बगैर एक कानूनी साप्ताहिक पत्र 'सत्याग्रह' की प्रतियां भी एक-एक पैसे में बेची गईं। सम्पादक का नाम दिया गया था मोहनदास करमचन्द गांधी। यह साप्ताहिक हर सोमवार को प्रकाशित होता था।

दिल्ली के बुलावे पर गांधी जी सात अप्रैल को दिल्ली के लिए रवाना हुए। मथुरा पहुंचकर, उन्हें ऐसी खबर मिली कि उनकी

गिरफ्तारी की सम्भावना है । सुनकर गांधी जी बहुत प्रसन्न हुए । गुलाम देश में सच्ची आजादी तो गिरफ्तारी के बाद ही शुरू होती है । मथुरा और दिल्ली के बीच पलवल स्टेशन पर गांधी जी को गाड़ी से उतार लिया था । पलवल उन दिनों पंजाब के सूबे में था । पंजाब पुलिस ने उन्हें रात भर मथुरा में रोका और मालगाड़ी में बिठाकर, उन्हें सवाई माधोपुर तक पहुंचाया, जहां से पंजाब पुलिस के अधिकारी मिस्टर वार्उरिंग उन्हें मेल गाड़ी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बिठाकर सूरत तक ले गए । वहां उन्हें बम्बई की पुलिस को सौंप दिया गया ।

गांधी जी की गिरफ्तारी की खबर से सारे देश में आग लग गई । वह बम्बई पहुंचे ही थे कि उन्हें बिफरी हुई भारी भीड़ को शान्त करने के लिए बम्बई के पायधुनी इलाके में पहुंचना पड़ा। गांधी जी को देखकर लोग खुशी से फूले न समाए और वन्दे मातरम् और अल्लाहो अकबर के जनघोष से गगन गूंज उठा । जुलूस अब्दुर्रहमान स्ट्रीट से गुजरता हुआ फोर्ट की ओर बढ़ा । गांधी जी की मोटरगाड़ी आगे निकल गई । हथियारबंद घुड़सवार पुलिस जुलूस पर टूट पड़ी । गांधी जी पुलिस उच्चाधिकारी से शिकायत करने गए ।

पुलिस कमिश्नर ने पुलिस का पक्ष लिया और कहा—"मुझे आपके इरादों के बारे में शक और शुबहा नहीं है । लेकिन लोग उन्हें कैसे समझेंगे ?" थोड़ी-सी बहस के बाद पुलिस कमिश्नर ने पूछा —"अगर हालात ऐसे हों कि आपकी भी धारणा यह हो कि लोगों ने आपकी बात को ठीक-ठीक नहीं समझा है, बल्कि आपके आदेश का उल्टा अर्थ लगाया है, तो आप क्या करेंगे ?" गांधी जी ने उत्तर दिया—"मैं सत्याग्रह आन्दोलन को बंद कर दूंगा ।"

चौपाटी पर विशाल सभा में गांधी जी ने हिंसात्मक उपद्रव के लिए जनता की भर्त्सना की । उन्होंने कहा कि शान्ति भंग करना और मर्यादा को तोड़ना सत्याग्रह नहीं है, "यह दुराग्रह से भी बुरा है।" दुराग्रह के विरुद्ध स्वयं सत्याग्रह करने की

चेतावनी भी गांधी जी ने दी, जिसका रूप आमरण अनशन ही हो सकता है।

अहमदाबाद पहुंचकर गांधी जी ने उत्तेजित जनता को शान्त किया। सत्याग्रह के नाम पर हुई हिंसा और अराजकता की उन्होंने घोर निन्दा की—"भाइयो, पिछले दिनों जो घटनाएं हुई हैं, उनसे अहमदाबाद पर कलंक लग गया है। यह सब मेरे नाम पर हुआ है, इसलिए मेरा सर शर्म से झुक गया है। उपद्रव करने वालों ने मेरा नाम ऊंचा नहीं किया, बल्कि मेरी इज्जत को मिट्टी में मिला दिया है। मेरे सीने में तलवार भोंक दी जाती, तो मुझे इतना कष्ट न होता, जितना इन बातों से हुआ है।"

पश्चाताप में गांधी जी ने तीन दिन के अनशन की घोषणा की और आदेश दिया कि अन्य सब आन्दोलनकारी भी एक दिन उपवास करें। गांधी जी के भाषण के बाद अहमदाबाद शान्त हो गया। सेना शहर से हटा ली गई। मिल-मजदूरों की हड़ताल भी शान्तिपूर्वक समाप्त हो गई। लोगों को पश्चाताप हुआ कि उनके कारण गांधी जी मर्माहत हुए और उन्हें तीन दिन का अनशन करना पड़ा।

लेकिन बम्बई और अहमदाबाद में जनता का अपराध अमृतसर में सरकारी दमन नीति की तुलना में पासंग बराबर न थे। वहां तीस मार्च और छह अप्रैल को शान्तिपूर्ण ढंग से आन्दोलन हुआ। नौ अप्रैल को पंजाब में लाहौर और अमृतसर के हिन्दू-मुसलमानों ने मिलकर रामनवमी का त्यौहार मनाया था। लेकिन पंजाब के गवर्नर ने हिन्दू-मुसलमानों के नेता डाक्टर सत्यपाल और डाक्टर किचलू को दस अप्रैल को मुंह-अंधेरे गिरफ्तार करा लिया। यह सुनकर अमृतसर की जनता बिफर गई। नेताओं को रिहा कराने के लिए एक विशाल जुलूस डिप्टी कमिश्नर के बंगले की ओर चला। शान्त जुलूस पर सरकारी अफसरों ने दो बार गोलियां चलाईं। जुलूस में बहुत-से लोग मारे गए। उत्तेजित जनता ने दफ्तरों में काम करने वाले पांच-छह

अंग्रेजों को मार डाला। शहर में सेना बुला ली गई। अगले दिन शहीदों की शान्तिपूर्ण शव-यात्राएं निकलीं। पंजाब के लेफ्टिनेण्ट सर माइकेल ओ' डायर और सेना के कमाण्डर डायर ने अमृतसर को सबक सिखाने की ठानी। बारह अप्रैल को शहर में बहुत-से लोगों को गिरफ्तार किया गया। तेरह अप्रैल को बैसाखी के त्यौहार के दिन नागरिकों ने जलियांवाला बाग में बैसाखी के मेले के साथ-साथ एक सभा भी की। जनरल डायर ने मौका देखकर, बिना किसी पूर्वसूचना के, बख्तरबंद सैनिक गाड़ियों के साथ जलियांवाला बाग को घेर लिया। बिना किसी ऐलान के जनरल डायर ने सेना को गोली चलाने का हुक्म दिया। जब तक गोला-बारूद चुक न गया, गोलियां चलती रहीं। सर वैलेंटाइन शिरोल ने इस भीषण हत्याकाण्ड का वर्णन किया
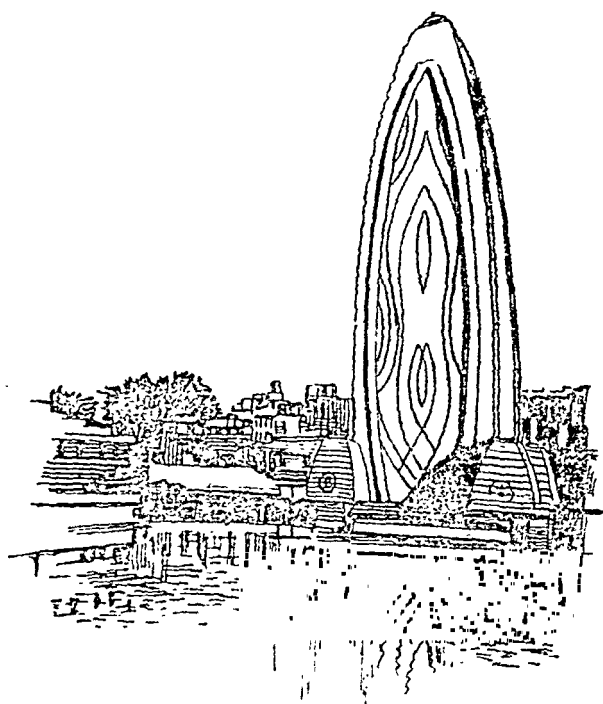
शहीद स्मारक, जलियांवालाबाग

है :"इस विभीषिका की भीषणता को वही समझ सकता है, जिसने जलियांवाला बाग को एक बार अपनी नजर से देखा हो। चारों ओर हिन्दुस्तानी बस्ती के मकानों की दीवारों से घिरे हुए इस मैदान का संकरा मुहाना भीड़-भाड़ से भरी हुई गलियों की ओर है। मैंने उसी संकरी गली से प्रवेश किया, जिससे जनरल डायर ने लगभग पचास राइफलधारी सैनिकों के साथ इस 'बाग' में प्रवेश किया था। मैं भी उसी ऊंची जगह पर आ खड़ा हुआ, जहां खड़े होकर जनरल डायर ने बिना किसी चेतावनी या ऐलान के सौ गज की दूरी पर खचाखच भरी हुई सभा पर गोली चलाने का हुक्म दिया था। लोगों की भारी भीड़ नीची सतह पर थी। ज्यादातर लोग मुहाने से दूर, एक मंच के पास बैठे थे। मंच से भाषण हो रहा था। जनरल डायर के अनुमान के अनुसार सभा में छह हजार लोग थे। अन्य लोगों का अंदाजा है कि दस हजार से अधिक लोग रहे होंगे। शायद ही किसी के पास कोई हथियार रहा हो। उनके पास बचाव का कोई साधन न था। आतंकित भीड़ तुरन्त तितर-बितर होने लगी, लेकिन दस मिनट तक निर्दयतापूर्वक निरन्तर गोलियां बरसती रहीं। चीत्कार करती हुई खचाखच भीड़ पर सोलह सौ पचास राउण्ड फायर किए गए। चूहेदानी में फंसे हुए चूहों की तरह लोग बाहर निकलने के लिए बेचैनी से निकास खोज रहे थे या गोलियों से बचने के लिए चित पड़े थे। जनरल डायर लोगों को झुण्ड दिखा-दिखाकर गोलियां दगवा रहे थे। जनरल डायर के कथनानुसार गोलियां निशाने पर ठीक पड़ीं। दस मिनट तक गोलियां चलवा कर, यानी गोला-बारूद लगभग चुक जाने के बाद जनरल डायर अपने सैनिकों के साथ जैसे आए थे, चले गए। बहुत हुज्जत के बाद सरकार ने कबूल किया है कि जनरल डायर के गोलीकाण्ड से तीन सौ उनासी व्यक्ति मारे गए और दो सौ घायल हुए। धराशायी घायलों के लिए क्या हुक्म दिया गया, यह पूछे जाने पर जनरल डायर ने कहा कहा कि उनके बारे में माथापच्ची करना मेरा काम नहीं था।"

जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड का पर्यायवाची बन गया। लेकिन जब पंजाब के और कई शहरों में ही क्या, पंजाब भर में अंग्रेजी सरकार का दमन चक्र इसी शर्मनाक ढंग से चलता रहा, तो पंजाब हत्याकाण्ड अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय विद्रोह का प्रबल कारण बन गया।

वायसराय की अनुमति से गवर्नर ने पंजाब में फौजी कानून (मार्शल ला) लागू कर दिया था। सर पी० एस० अय्यर ने पंजाब में अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की : "जलियांवाला बाग में सैंकड़ों को गोलीबार से भून दिया गया। जनरल डायर ने न चेतावनी दी, न लोगों को बाहर निकलने दिया। इधर-उधर भागते हुए लोगों को बेरहमी से भून डाला और खून में लथपथ सैंकड़ों घायलों को यों ही पड़ा छोड़ दिया। पुरुषों को खुलेआम नंगा करके, उन पर कोड़े बरसाए गए। हाजिरी देने के लिए हजारों विद्यार्थियों को रोज सोलह मील चलने को मजबूर किया गया। पांच-पांच सौ विद्यार्थी और प्राध्यापक गिरफ्तार कर लिए गए। पांच से सात बरस के बच्चों की जबरन परेड कराई गई और अंग्रेजी झण्डे को सलाम कराया गया। फौजी कानून के इश्तहार दीवारों पर से हटाए या फाड़े न जाएं, इसके लिए मकान-मालिकों को जिम्मेदार और जोखिमदार ठहराया गया। बरातों को फेर कर, बरातियों को कोड़ों से पीटा गया। डाक को खोल-खोलकर बांटा गया। बादशाही मस्जिद को डेढ़ महीने तक बंद कर दिया गया। कारण बताए बिना चाहे जिसे जेल में ठूंस दिया गया, जिनमें ऐसे भी लोग थे जिन्होंने सरकार की सेवा की थी। इस्लामिया स्कूल के छह विद्यार्थियों की सिर्फ इसलिए पिटाई की गई कि वे बहुत बड़े दिखते थे। लोगों को गिरफ्तार करके, बड़े-बड़े पिंजड़ों में बंद किया गया कि उनकी नुमायश की जाए। अत्याचार के नए-नए ढंग निकाले गए। लोगों को जमीन पर रेंगने के लिए मजबूर किया गया। अनेक लोगों को एक ही रस्से में बांधकर, पन्द्रह-पन्द्रह घण्टों तक खुले हुए ट्रक में खड़े करके

घुमाया गया। हिन्दू-मुसलमानों की बढ़ती हुई एकता से चिढ़कर, उन्हें जोड़े से हथकड़ियां पहनाई गईं। बस्तियों में बिजली-पानी बंद किया गया। हाजिरी देने के लिए लोगों को मजबूर करने के लिए घर के लोगों को जमानत के बतौर हवालात में बन्द किया गया। मकानों को उजाड़ा और तोड़ा गया। हिन्दुस्तानी बस्तियों में घरों से बिजली के पंखे हटाकर अंग्रेजों को दिए गए। उनकी मोटरगाड़ियां छीन ली गईं। फौजी कानून की अवधि समाप्त होने से पहले ही धड़ाधड़ बेशुमार गिरफ्तारियां और नजरबंदियां की गईं। और भी बहुत कुछ हुआ, जिसका पूरा-पूरा विवरण देना असम्भव है।"

पंजाब हत्याकाण्ड से साफ जाहिर था कि अंग्रेजों के सिर पर खून चढ़ गया था। परिणाम में भारतीय जनता की आंखों में भी खून उतर आया था। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गांधी जी को लिखा कि आप ही स्थिति को संभाल सकते हैं, आप ही क्रोध को अक्रोध से और वैर को प्रीति से जीत सकते हैं। गांधी जी स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि हिंसा और प्रतिहिंसा के दुश्चक्र में वातावरण इतना दूषित हो गया है कि सत्याग्रह आन्दोलन देशव्यापी रक्तपात और अग्नि-वर्षा का बहाना बन जाएगा। गांधी जी की मर्माहत आत्मा यह देखकर, कराह उठी कि नड़ियाड़ और खेड़ा जिले के गांवों में भी सत्याग्रह और गांधी जी के नाम पर हिंसा-प्रतिहिंसा और उपद्रव-अराजकता की आग फैल गई है। गांधी जी ने समय से पहले सत्याग्रह शुरू करने की अपनी भारी भूल को स्वीकार किया। "मेरी बड़ी भूल हिमालय के आकार की है," उन्होंने कहा। अठारह अप्रैल को गांधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन को बंद करने की घोषणा की : "ऐसा नहीं कि मुझे सत्याग्रह आन्दोलन को वर्तमान में स्थगित करते हुए, मुझे गहरा दुख नहीं हो रहा है।"

30 मई, सन 1919 के दिन कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सर' की उपाधि लौटा दी। मर्माहत होकर महात्मा गांधी ने

जुलाई में स्थगित सत्याग्रह को समाप्त ही कर देने की घोषणा कर दी: "अगर कहा जाए कि मेरे सत्याग्रह आन्दोलन ने आग भड़काने में एक दियासलाई का काम किया है, तो रोलैट कानून पास करने के बाद उसके आधार पर शासन चलाने की अपनी जिद्द से अंग्रेजी सरकार ने भारतभर में एक हजार दियासलाइयां जलाकर बिखेरी हैं। हत्याग्रह की परिस्थिति कभी पैदा ही न हो, इसके लिए सरकार को चाहिए कि उस दमन कानून को वापस ले।"

पंजाब हत्याकाण्ड और विशेषकर जलियांवाला बाग में गोली-काण्ड की जांच के लिए कांग्रेस ने जांच समिति बनाई। स्वामी श्रद्धानन्द, पण्डित मोतीलाल नेहरू और महामना मालवीय जी इसके सदस्य थे। सरकार ने भी हंटर कमेटी की नियुक्ति की। गांधी जी को अक्तूबर में पंजाब प्रवेश की अनुमति न मिली।

जलियांवाला बाग की दुर्घटना ने सद्भावनापूर्ण मित्र देश भारत को इंग्लैण्ड का शत्रु बना दिया था। भारत में एकमात्र शक्तिशाली नेता ऐसा था, जो दोनों देशों को फिर परस्पर मित्र बना सकता था। लेकिन महात्मा गांधी को जानकर भी अंग्रेजी सरकार अनजान बनी रही। प्रभुता के मत, तथाकथित विजेता जाति के गर्व, राजनीतिक हथकण्डों की आदत और आर्थिक लाभ के लोभ में अंग्रेजी शासक अपनी चतुराई में अन्धे बने रहे और अन्ततः उन्होंने मानवता की मूर्ति महात्मा गांधी को राजद्रोही बना दिया। इंग्लैण्ड और भारत का जो संघर्ष भविष्य में अट्ठाईस वर्षों तक जारी रहा, जलियांवाला बाग की दुर्घटना से शुरू हुआ।

महात्मा गांधी को सत्रह अक्तूबर के बाद पंजाब जाने की अनुमति मिली। पंजाब में उनका जैसा स्वागत और जय-जयकार हुआ, उसकी कल्पना भी गांधी जी को न थी। दस अप्रैल को जब उन्हें पंजाब प्रवेश से रोका गया था, तब गांधी जी ने कहा था—"मुझे वहां कौन जानता है?"

महात्मा गांधी का पंजाब में यह पहला दौरा था। खून के आंसू रोने वाली पंजाब की आहत और अपमानित प्रजा ने महात्मा गांधी के रूप में अपने खोए हुए आत्मविश्वास को पुनः पा लिया। सिक्ख, हिन्दू और मुसलमान प्रजा को नए प्राण मिले और गांधी जी के जय-जयकार से पंजाब गूंज उठा। लाहौर की विशाल मुसलमान बस्ती में गांधी जी का आगमन नवजीवन के समान हुआ। पंजाब की प्रजा पर अपने प्रभाव को देखकर गांधी जी भी दंग रह गए और पंजाब के प्रति उनका दायित्व-बोध बहुत अधिक बढ़ गया। अपनी व्यथा कथा सुनाने के लिए गांधी जी के सामने रोज हजारों लोगों का तांता लगा रहता। गांधी जी ने लाहौर में रहते हुए, जलियांवाला बाग और पंजाब पर सरकारी अत्याचार की जांच शुरू कर दी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने जांच का काम गांधी जी को ही सौंप दिया। कांग्रेस जांच समिति की रिपोर्ट गांधी जी को ही लिखनी पड़ी। गांधी जी ने यह काम हाथ में लिया ही था कि दिल्ली की मुस्लिम कांफ्रेंस (आल इण्डिया खिलाफत कांफ्रेंस) की ओर से अध्यक्ष बनने को बुलाया आया। गांधी जी को भारतीय मुसलमानों से गहरी सहानुभूति थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता को वह सत्याग्रह की सफलता के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझते थे, जैसा कि भारत लौटने के पूर्व उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कहा भी था। वहां प्रवासी भारतीय मुसलमानों के वह सर्वाधिक विश्वासपात्र थे।

तुर्की देश के सुल्तान सब मुसलमानों के खलीफा या बड़े प्रधान माने जाते थे। महायुद्ध में जर्मनी के मित्र देश तुर्की की पराजय हुई थी। भारतीय मुसलमानों को आशंका थी कि तुर्की के साथ ब्रिटेन अन्याय-पूर्ण व्यवहार करेगा। इसी आशंका से (आशंका सही सिद्ध हुई) खलीफा के पक्ष में और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत आन्दोलन शुरू किया था। ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ होने से आन्दोलन का नाम खिलाफत नहीं पड़ता। खलीफा से सम्बन्धित होने के कारण ही आन्दोलन को खिलाफत का नाम दिया गया था।

खिलाफत कांग्रेस में स्वामी श्रद्धानन्द भी शामिल हुए थे। मौलानाओं के साथ वह और कई-एक और भी हिन्दू थे। गांधी जी को यह अच्छा लगा। गांधी जी का मन रखने के लिए मुसलमान नेताओं ने गोरक्षा को भी कार्यक्रम का अंग बनाने का प्रस्ताव किया था। गांधी जी ने कहा कि मुसलमानों का साथ देने के लिए हिन्दुओं को भी गोरक्षा सम्बन्धी शर्त न लगानी जाहिए। भाई-भाई के बीच सहयोग और एकता बिना किसी शर्त के हो, यही उचित है।

गांधी जी को कांफ्रेंस में आने और अध्यक्ष पद संभालने के लिए धन्यवाद देते हुए, मौलाना अब्दुल बारी ने कहा —"गोरक्षा के सवाल पर गांधी जी चाहे जो कहें, और जो कुछ उन्होंने कहा है, उसके बारे में उनकी और हिन्दू भाईयों की नेकनीयती की तारीफ करनी चाहिए, लेकिन हम मुसलमानों की इज्जत का तकाजा है कि हम अपने हिन्दू भाईयों के सहयोग को कभी न भूलें। मैं तो कहूंगा कि खिलाफत के सवाल पर हिन्दु हमारा साथ दें या न दें, हमें गोकुशी से फौरन हाथ खींच लेना चाहिए, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान एक ही मादरेहिन्द की औलाद हैं।"

खिलाफत के प्रश्न पर हिन्दू-मुस्लिम एकता से गांधी जी के जीवन की साध पूरी हो रही थी। लेकिन खिलाफत आन्दोलन का कार्यक्रम क्या हो? कोरी बातों से आन्दोलन नहीं चलता। मौलाना हसरत मौहानी ने जोरदार शब्दों में गांधी जी से इस सवाल का जवाब मांगा। गांधी जी के मुंह से एक ही शब्द निकला — "असहयोग।"

अंग्रेजी सरकार से असहयोग और भारतवासियों का आपस में सहयोग—इस मन्त्र में आन्दोलन का पूरा कार्यक्रम समाया हुआ था। अंग्रेजी सरकार से असहयोग करने का अर्थ था कि सात समंदर पार के मुट्ठी भर अंग्रेज शासक तैंतीस करोड़ की आबादी वाले इस विशाल देश पर राज नहीं कर सकते। अंग्रेजी राज हिन्दुस्तानियों

के सहयोग पर ही तो टिका था। हिन्दुस्तानियों की आपस की फूट परस्पर सहयोग से गई और अंग्रेजी सरकार से सहयोग करना उन्होंने छोड़ा कि देश को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में देर न लगेगी।

अंग्रेजी सरकार से असहयोग का अर्थ था विदेशी का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों से इस्तीफा, अदालतों, कोर्ट-कचहरियों और मुकदमेबाजी से मुंह फेर लेना, सरकारी स्कूल-कालेजों का त्याग और अन्त में लगानबंदी। आपस के सहयोग का अर्थ था हर क्षेत्र में स्वदेशी को अपनाया। स्वदेशी का अर्थ था स्वदेश और स्वदेश के हर व्यक्ति और हर वस्तु से प्रेम। स्वदेशी का अर्थ था स्वभाषा से प्रेम। स्वदेशी का अर्थ था स्वावलम्बन। स्वदेशी का अर्थ था स्वराज। 'स्व' यानी आप सुधर गया तो सारा संसार सुधर गया।

सिद्धान्त बहुत सीधा-सादा था, जैसे कि हर क्रान्तिकारी का सिद्धान्त होता है। लेकिन इस क्रान्तिकारी सिद्धान्त का मन, वचन, कर्म से पालन करना उतना सरल नहीं था। गांधी जी इस बात को जानते थे। इसलिए वह असहयोग आन्दोलन शुरू करने की जल्दी में न थे। असहयोग आन्दोलन में लोगों को कितना बलिदान करना पड़ेगा, लोग इसे पूरी तरह समझते न थे। जोश बहुत था, लेकिन होश की कमी थी। इसीलिए गांधी जी ने दिसम्बर, सन् उन्नीस सौ उन्नीस की अमृतसर कांग्रेस में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के अनुसार प्रस्तावित शासन सुधार कानून को स्वीकार करने का सुझाव दिया। बहुत वाद-विवाद और आनाकानी के बाद कांग्रेस ने गांधी जी के सुझाव को मान लिया। कांग्रेस के इस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक भी उपस्थित थे। अधिवेशन में यह उनकी अन्तिम उपस्थिति थी। मौलाना मोहम्मदअली छिंदवाला जेल से सीधे आए थे। अधिवेशन में उनका अपूर्व स्वागत हुआ था। इन सब बड़े नेताओं की उपस्थिति में अपने शान्ति प्रस्ताव को स्वीकार करा लेना, गांधी जी के राजनीतिक प्रभाव का द्योतक था।

लेकिन ब्रिटिश सरकार का रुख ऐसा न था, जिससे समझौते की आशा बंधे। जलियांवाला बाग और पंजाब हत्याकांड के बारे में भारत सरकार ने लीपापोती ही नहीं की, हत्यारे जनरल डायर को भारत के खजाने से पेंशन भी बांध दी। डायर से इस्तीफा ले लेना ही समुचित दण्ड समझा गया। इतना ही नहीं, हत्यारे जनरल डायर को आर्थिक सहायता देने के लिए चन्दा भी जमा किया गया। डायर के प्रति इंगलैण्ड के लोगों की सहानुभूति का भारतीयों के ऊपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। रौलेट एक्ट को रद्द नहीं किया गया। यह गांधी जी की आशा के विपरीत हुआ। भारत सरकार द्वारा नियुक्त हण्टर कमेटी की रिपोर्ट से जलियांवाला बाग और पंजाब हत्याकाण्ड से क्रुद्ध-क्षुब्ध भारतवासियों को तीव्र निराशा हुई। इस विषय में कांग्रेस की रिपोर्ट, जिसे स्वयं गांधी जी ने लिखा था, कुछ और ही कहती थी। लेकिन भारत सरकार ने उसे जब्त कर लिया। अंग्रेज़ी सरकार की ओर से गांधीजी का जी खट्टा हो गया। ब्रिटिश शासकों का उन्हें भरोसा न रहा। और उधर भारतीय मुसलमानों पर गांधी जी का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ रहा था। भारतीय जनता के मन में गांधी जी के अनूठे व्यक्तित्व की गहरी छाप थी। स्वयं गांधी जी भी अपने सबसे प्रिय स्वप्न, हिन्दू-मुस्लिम एकता को सच हुआ देख रहे थे। भारतीय राजनीति में विद्रोही महात्मा का पदार्पण हो रहा था।

भारतीय मुसलमानों का प्रतिनिधि मण्डल वायसराय से मिला। लेकिन विलायत जाकर इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री से मिल सकने की सुविधा के अतिरिक्त और कोई सन्तोषप्रद उत्तर वायसराय से न मिल सका। भारतीय मुसलमानों के प्रतिनिधि बनकर मौलाना मोहम्मद अली के हाथ कुछ न लगा। तुर्कों के प्रति कठोर सन्धि की शर्तों की आशंका में खिलाफत कमेटी ने 19 मार्च, सन 1920 के दिन देश व्यापी विरोध दिवस मनाया, जिसमें हिन्दुओं ने उन्हें पूर्ण सहयोग

दिया। चौदह मई को तुर्की से सन्धि की शर्तें भारत सरकार के विशेष गजट में छप गईं। भारतीय मुसलमानों की आशंकाएं सच निकलीं। खिलाफत कमेटी की बैठक अट्ठाइस मई को हुई। कमेटी ने असहयोग प्रस्ताव पास कर दिया। गांधी जी इस समय भारतीय मुसलमानों के सर्वमान्य नेता थे।

गांधी जी ने होम रूल का अध्यक्ष बनना भी स्वीकार कर लिया था। श्रीमती बेसेण्ट ने त्यागपत्र दे दिया था। कांग्रेस में खिलाफत के प्रश्न पर एक राय न थी। लोकमान्य तिलक खिलाफत के प्रश्न पर असहयोग आन्दोलन चलाने के पक्ष में न थे। लेकिन गांधी जी के राजनीतिक प्रभाव का सूर्य तप रहा था और इसमें सन्देह था कि भविष्य में भारत का कोई राजनीतिक नेता गांधी जी के विरोध में टिक सकेगा।

अपने साप्ताहिक पत्र 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' के माध्यम से गांधी जी हिन्दू-मुस्लिम एकता, स्वदेशी और महान सहनशक्ति के पक्ष में जन-मानस को तैयार करते रहे। उन्होंने लिखा: "दुख और कष्ट की आग तप में कर, शुद्ध हुए बिना कोई भी देश उन्नति नहीं कर सका है। माता कष्ट सहन करती है तो बालक का जन्म और पालन होता है। गेहूं का पौधा लहलहाता है, क्योंकि बीज स्वयं को मिट्टी में मिला देता है। मृत्यु ही जीवन की जननी है। क्या भारत को कष्ट सहन करके शुद्ध हुए बिना आजादी पा लेना सम्भव है?"

आत्मशुद्धि के लिए कष्ट सहन का अर्थ था अहिंसात्मक सत्याग्रह: "हमारे लिए अचम्भे की बात है और शर्म की भी कि एक लाख अंग्रेज पैंतीस करोड़ हिन्दुस्तानियों पर राज करते रहें।" हमारी आपस की फूट ही हमारी गुलामी की बड़ी वजह हो सकती थी। और अब हिन्दु-मुस्लिम एकता से आजादी की राह में रुकावट की कोई आशंका न थी। खिलाफत आन्दोलन में भारतीय मुसलमानों का नेतृत्व ग्रहण करते हुए गांधी जी ने शायद यही सोचा होगा।

लेकिन खिलाफत आन्दोलन का आधार मजबूत नहीं था। तुर्की के सुल्तान से अरब तो असन्तुष्ट थे ही, स्वयं तुर्की देश में भी कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में राष्ट्रवादी प्रगतिशील तुर्क अपने पिछड़े हुए सुल्तानी शासन के विरुद्ध संगठित हो रहे थे। तुर्की के सुल्तान सम्पूर्ण मुस्लिम समाज और संसार के सब मुस्लिम राज्यों के प्रमुख हों, विश्व भर के मुसलमानों को यह मंजूर न था। भारतीय मुसलमानों की मुस्लिम अन्तर्राष्ट्रीयता, जो खिलाफत आन्दोलन की जननी थी, वास्तव में अन्य देशों की राष्ट्रीय भावना से मेल न खाती थी। जो उत्साही भारतीय मुसलमान अंग्रेज़ी सरकार के मातहत भारत को छोड़कर, अन्य मुस्लिम देशों में गए, उनका न वहां स्वागत हुआ, न सत्कार, बल्कि उन्हें वहां से बुरी तरह खदेड़ दिया गया।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय मुसलमानों को लाने का श्रेय गांधी जी को ही था। मौलाना अबुल कलाम आजाद, हकीम अजमलखां और डाक्टर अंसारी खिलाफत आन्दोलन के बाद भी राष्ट्रीय आन्दोलन में टिके रहे। श्री आसफअली के बारे में भी यही बात थी।

मुसलमानों को राष्ट्रीय अन्दोलन में लाने के बाद, गांधी जी ने कांग्रेस को असहयोग के पक्ष में करने का अभियान शुरू किया। होम रूल लीग के सभापति बन कर गांधीजी ने उसे 'स्वराज सभा' का नाम दिया और स्वराज के लिए कांग्रेस को तैयार करने के बाद, स्वराज सभा को कांग्रेस में ही मिल जाने दिया।

खिलाफत और असहयोग के प्रश्न पर विचार करने के लिए कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन सन 1920 के सितम्बर मास में हुआ। लोकमान्य तिलक एक मास पूर्व दिवंगत हो चुके थे। नरम दल के लोगों ने कांग्रेस छोड़ दी थी। लेकिन कांग्रेस के अधिवेशन में देश के अनेक मान्य नेता सम्मिलित हुए थे। पण्डित मोतीलाल नेहरू को छोड़कर, अन्य सब बड़े नेताओं ने गांधी जी का विरोध किया। विरोधियों में पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय और

देशवन्धु चित्तरंजनदास भी थे। फिर भी विषय निर्वाच में गांधी का प्रस्ताव थोड़े-से बहुमत से पास हो गय खुले अधिवेशन में गांधी जी के प्रस्ताव के विपक्ष में चौरासी मत-संख्या थी और पक्ष में एक हजार आठ सौ स्पष्ट था कि असहयोग द्वारा स्वराज प्राप्ति के पक्ष में आव करने वाले सामान्य सदस्य गांधी जी को अपना नेता मा

कलकत्ता के विशेष अधिवेशन के निर्णय का नागपुर अधिवेशन में विचार होना था। नागपुर का कांग्रेस ऐतिहासिक था। यह अधिवेशन भारत के भौगोलिक केन्द्र नगर में सन 1920 के अन्तिम मास में हुआ था सदस्यों के हृदय में अपूर्व उत्साह था। देश कौंसिलों के च नवम्बर में बहिष्कार कर चुका था। कांग्रेस भारतीय जनता निधि संस्था बन रही थी। गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय का अहिंसक आन्दोलन शुरू हो रहा था, जिसे गांधी धर्मयु में देखते थे। भारत की राजनीति में नीति-धर्म और जन प्रवेश हो रहा था। एक प्रकार से यह नवभारत में नई क्र सूत्रपात था।

देशवन्धु चित्तरंजन दास, श्री विपिनचन्द्र पाल, लाला लाज महामना मालवीय जी और श्री मोहम्मदअली जिन्ना ने गांधी असहयोग प्रस्ताव का विरोध आरम्भ में तो किया, किन्तु दे वन्धु चित्तरंजन दास और लाला जी ने ही खुले अधिवेशन जीका प्रस्ताव प्रस्तुत किया। कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने सर्व से गांधी जी के असहयोग सम्बन्धी कार्यक्रम को स्वीकार उपस्थित प्रतिनिधियों की संख्या चौदह हजार से ऊपर थी हजार से अधिक मुसलमान थे।

इस क्रान्तिकारी वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस का नया भी स्वीकृत हुआ, जिसके अन्तर्गत

सदस्य बन सकते थे। कांग्रेस अब उच्च मध्यवर्ग के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भाषणकर्ता नेताओं की संस्था न रह गई थी, वरन् सारे राष्ट्र की केन्द्रीय सक्रिय संस्था बन गई थी। महात्मा गांधी ने नेताओं को लोकसेवक और सामान्यजन को राष्ट्र के सक्रिय कार्यकर्ता बना दिया था। सामान्य जनता को यह कहने का अवसर न था, कि "कोउ नृप होहि हमें का हानी"। सामान्यजन, जो सदियों से अनाथ थे, देख रहे थे कि उनकी मर्माहत आत्मा अब विद्रोही महात्मा के रूप में साकार और सक्रिय थी।

महात्मा गांधी की जय

1 अगस्त, सन 1920 के दिन असहयोग आन्दोलन शुरू होने को था। वायसराय को पत्र लिखकर, महात्मा गांधी कैसरे हिन्द तथा बोअर युद्ध और जोअर विद्रोह के बाद मिले हुए पदक लौटा चुके थे। कांग्रेस के विशेष और वार्षिक अधिवेशन तब तक हुए न थे। इसका अर्थ था कि गांधीजी ने कांग्रेस के सहयोग के बिना भी असहयोग आन्दोलन छेड़ने की ठान ली थी। किन्तु जिस दिन आन्दोलन शुरू होने वाला था, उसकी पहली रात को लोकमान्य तिलक का देहावसान हो गया। 1 अगस्त, सन 1920 के दिन लोकमान्य की अंत्येष्टि हुई। अर्थी को कंधा देने वालों में गांधी जी भी थे। असहयोग आन्दोलन उस दिन आरम्भ नहीं हुआ। बाद में कांग्रेस ने भी गांधी जी के कार्यक्रम और नेतृत्व को स्वीकार कर लिया। सन उन्नीस सौ इक्कीस आरम्भ हुआ।

इस बीच अंग्रेज़ी सरकार ने भी भारतीयों के मानस को अपने अनुकूल बनाने के प्रयत्न शुरू कर दिए। राजघराने के वरिष्ट सदस्य ड्यूक आफ कनाट को ब्रिटिश सम्राट के सद्‌भावना सन्देश के साथ भारत भेजा गया। सम्राट ने कहा कि भारत को 'साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज' प्राप्त होगा। लेकिन भारतीय प्रजा का मन अंग्रेज़ी राज की ओर से खट्टा हो गया था।

असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए विद्यार्थियों ने सरकारी और अर्धसरकारी विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को त्याग दिया। देश के कोने-कोने में राष्ट्रीय विद्यालयों और विद्यापीठों की स्थापना होने लगी। वकीलों ने अदालतों में जाना छोड़ दिया और अनेक विशिष्ट नागरिकों ने अंग्रेज़ी सरकार की

उपाधियों और पदकों को लौटा दिया। भारत में अंग्रेजी राज से सहयोग करने वाले खुशामदी भारतीय जनता की उपेक्षा के पात्र बन गए।

जनता के बीच महात्मा गांधी भगवान के अवतार बन गए। परदानशीन मुस्लिम महिलाओं की सभा में गांधी जी को बुलाया जाता। मुस्लिम नेता वहां जाते आंखों पर पट्टी बांधकर और गांधी जी के लिए वह कहते कि महात्मा जी की और बात है, वह खुदा के पाक बन्दे हैं।

भारत के सात लाख गांवों में लगभग शत प्रतिशत लोगों का यह विश्वास था कि गांधी जी राम और कृष्ण की भांति भारतमाता को मुक्त करने के लिए ही आए हैं। भारत की विशाल भूमि का शायद ही कोई आंचल था, जहां गांधी जी नहीं गए या उनका सन्देश नहीं पहुंचा। गांधी जी के सन्देश की तुलना मोहन की बांसुरी और उनके चर्खे की तुलना सुदर्शन चक्र से की जाती थी। महात्मा गांधी ने लाख बार कहा कि मैं अवतारी पुरुष नहीं, एक सत्यभक्त लोकसेवी हूं। लेकिन भारतीय जनता उन्हें साक्षात् दिव्य पुरुष मानती थी। इस विषय की एक छोटी-सी घटना है।

सन 1921 में गांधी जी अली बन्धुओं तथा अपने सहायकों और स्थानीय लोकसेवकों के साथ बिहार प्रान्त के गांवों का दौरा कर रहे थे। एक छोटी-सी देहाती बस्ती से कुछ दूर निकल कर जंगल में मोटर गाड़ी एकाएक खराब हो गई। हल्की बूंदा-बांदी हो रही थी। दल के किसी कार्यकर्त्ता ने देखा कि पास के पेड़ के नीचे एक बुढ़िया चुपचाप खड़ी जैसे किसी की बाट देख रही थी। कार्यकर्त्ता का ध्यान उस ओर गया, तो बुढ़िया ने पूछा—भइया, महात्मा गांधी इधर से निकलने वाले हैं क्या ? कार्यकर्त्ता क्या उत्तर देता, पूछ बैठा—महात्मा जी से कुछ काम है, बुढ़िया माई ? वह बोली—मैं उनके दर्शन करने के लिए सवेरे से ही यहां खड़ी हूं। मेरी

उमर एक सौ चार वरस की है । मैं सव तीरथ कर चुकी हूं। दो मंदिर वनवा चुकी हूं। अव वस यही एक साध है कि महात्मा गांधी को एक वार इन आंखों मे देख लूं। जैसे राम और कृष्ण का, वैसे ही भारत में उनका अवतार हुआ है। कार्यकर्त्ता गांधी जी के पास गया। कुछ लोग उधर आए। एक कार्यकर्त्ता ने हँस कर पूछा—बुढ़िया माई, तुमने जिन्हें कभी देखा नहीं, उन्हें पहचान कैसे सकोगी भला ? कहना न होगा कि बुढ़िया ने बहुतों के बीच एक महात्मा गांधी को पहचाना ? उनके दर्शन किए और चली गई। बुढ़िया के जाने से पहले

बुढ़िया ने वहुतों के वीच एक महात्मा गांधी को पहचाना, उनके दर्शन किए और चली गई।

गांधी जी ने ग्रामवासिनी भारत माता की प्रतीक उस बुढ़िया से दो-चार शब्द भी कहे। कौन जाने बुढ़िया ने गांधी जी के शब्दों को सुना या नहीं किन्तु साध पूरी होने का सन्तोष उसके मुख पर था। इस बीच

मोटर गाड़ी भी दुरुस्त हो गई थी। गांधी जी ने अपने साथियों को अवतारवाद और चमत्कारवाद के विरुद्ध समझाया। किन्तु फिर भी कुछ लोग अचम्भे में पड़े रहे कि ऐसा भी क्या संयोग कि मोटर को उतनी ही देर को, वहीं और उसी समय बिगड़ना था।

गांधी जी बार-बार समझाते रहे कि मैं न महात्मा हूं, न अवतारी पुरुष, न पुरुषोतम। लेकिन भारतीय मानस तो दिव्य काव्य और देवगाथाओं की खुराक पर पला है। वह तो कवियों और पौराणिक कथाकारों का अनुगामी बनकर, वास्तविकता को कल्पना के अपने अद्‌भुत सांचे में ढाल देता है। भारतीय मानस कल्पना के कल्पवृक्ष की छांह में बैठने का आदी है। फिर यदि कल्पवृक्ष भी अपने सहस्त्र पात्रों की जीभ से यह कहे कि मैं कल्पवृक्ष नहीं, बबूल हूं, तो भारतीय मानस उसकी बात न मानेगा।

गांधी जी ने करोड़ों के भार को अपने कंधों पर उठा लिया था, यह सच है। लेकिन यह भी सच है कि अपनी आदत से मजबूर भारतीय जनसमुदाय ने भी सदियों की अपनी दुदर्शा का बोझ स्वयं भी महात्मा गांधी को सौंप दिया था। गांधी जी को पूर्ण विश्वास देकर, भारतीय जनसमुदाय ने अहिंसा, एकता, अनुशासन, संगठन, परिश्रम की सीख को सही-सही और पूरी तरह से ग्रहण नहीं किया था। शायद भारतीय जनता और जन-मन के एकछत्र नेता, महात्मा गांधी, दोनों ही परस्पर अतिशय प्रेम और विश्वास से बहुत ऊंची आशाएं लगाए हुए थे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि असहयोग के व्यवहारिक कार्यक्रम का पालन नहीं किया गया।

असहयोग आन्दोलन ने देशवासियों को एक राष्ट्रीय पोशाक दी। गांधी टोपी ने भारतवासियों को अद्‌भुत और अभूतपूर्व प्रतिष्ठा दी। भारतीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा का महत्व बढ़ा। स्वदेश और स्वदेशी से भारतीय लोगों की आत्मीयता बढ़ी। हिन्दु-मुस्लिम एकता अपने चरम बिन्दु पर पहुंची। उस समय के फोटोग्राफ

में द्वारिका के शारदापीठ के शंकराचार्य अली बन्धुओं और पंजाब के तत्कालीन मुस्लिम नेता डाक्टर किचलू के मध्य बैठे दिखलाई पड़ते हैं।

गांधी जी ने भारत में शासन और व्यापार करने वाले अंग्रेजों के नाम दो बार स्नेह और मैत्री भाव से भीने, किन्तु यथार्थ और सत्य को प्रकाशित करने वाले पत्र लिखे और उन्हें भारत का होकर, भारतवासियों के स्वजन बनकर रहने का मार्ग सुझाया। पारसी और ईसाई भारतवासियों को गांधी जी ने प्रेम से समझाया कि भारत और भारतीयता को वह अपने मन में घर करने दें, क्योंकि भारत ही उनका घर है। हिन्दू समाज में तथाकथित अछूतों को बराबरी के स्वजनों का दर्जा मिले, इस उद्देश्य से गांधी जी ने अथक परिश्रम किया। सवर्ण हिन्दुओं से उनका कहना था कि छुआछूत धर्म नहीं, अधर्म है और जब तक हम अपनी चादर पर से इस दाग को न धो डालेंगे, तब तक सभ्य संसार में हमें गौरव का स्थान न मिलेगा। भारतीय नारी को गांधी जी ने राख से ढंकी चिनगारी से शक्ति-चेतना की शुभ सौम्य ज्योति बनाने का बीड़ा उठाया। भोग विलास में पड़े हुए और विदेशी शासक और व्यापारियों की दासता और दलाली पर पले हुए नगरवासी भारतवासियों को गांधी जी ने भारत के अन्नदाता, किन्तु भूखे-नंगे शोषित किसान की सेवा की राह दिखाई। भारत देश को गांधी जी ने भेदभावमुक्त, निर्भय, स्वावलम्बी, नीति-धर्म-प्राण, सभ्य-सुसंस्कृत, स्वाभिमानी और स्वतंत्र राष्ट्र बनाने का अथक परिश्रम किया और भारतीयों के मन और विचारों में उन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन किया। विदेशी शासन, सभ्यता और संस्कृति के सामने साठ वर्ष जो भारत देश सिर झुकाए खड़ा था, गांधी जी के क्रांतिकारी, संस्कारी नेतृत्व में मोहमुक्त और निर्भय होकर, फिर तनकर खड़ा हो गया। भारत देश विदेशी सत्ता से मुक्त होने के लिए उतावला था। गांधी जी भारतीय मानस के उत्साह को रचनात्मक उद्योग में ढालने लगे। असहयोग आन्दोलन के आठ सूत्र थे—

(1) सरकारप्रदत्त सब पदों और पदकों का त्याग ; (2) सरकारी ऋणपत्रों को न खरीदना ; (3) वकीलों का अदालतों में न जाना और मुकदमों का वादी-प्रतिवादी के बीच समझौते से निपटारा करा देना ; (4) अभिभावकों और छात्रों द्वारा सरकारी स्कूलों का वहिष्कार ; (5) सरकारी विधानसभाओं और परिषदों का वहिष्कार ; (6) सरकारी आयोजनों और समारोहों में सम्मिलित न होना ; (7) सैनिक या प्रशासनिक ओहदों पर न रहना ; और (8) स्वदेशी का व्रत लेना और स्वदेशी का प्रचार करना । इस कार्य-क्रम का उद्देश्य विदेशी सरकार से असहयोग और भारतीय जन का परस्पर सहयोग ही था ।

लोकमान्य तिलक की पुण्य स्मृति में गांधी जी ने एक वर्ष में एक करोड़ रुपये के तिलक स्वराज कोष स्थापना की । अंग्रेजी सरकार के सर्वेसर्वा वायसराय ने असहयोग की हँसी उड़ाई थी और सरकारी अधिकारियों ने तिलक स्वराज कोष को पूरा न होने देने में पूरा-पूरा जोर लगाया । लेकिन सरकार की कोशिश गलत साबित हुई । एक वर्ष के भीतर एक करोड़ से अधिक रुपया तिलक-स्वराज कोष में हंसते-खेलते जमा हो गया । असहयोग आन्दोलन तो बहुत पहले ही जोर पकड़ चुका था । हिन्दू-मुस्लिम एकता का यह हाल था कि मंदिर-मस्जिदों में कोई भेद न रहा । ईदुज्जुहा यानी वकरीद पर मुसलमानों ने स्वेच्छा से गाय काटना बन्द कर दिया । सरकार का हर पासा उलटा पड़ रहा था । खीझकर सरकार ने धमकियां देना शुरू किया । वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने असहयोग को 'उल्लूपने की योजनाओं में अव्वल नंबर की' कहा था । लेकिन परिणाम यह हुआ कि सरकारी दफ्तरों में उल्लू बोलने लगे । अपने को प्रजा की माई-बाप सरकार समझने वाली अंग्रेजी हुकूमत के हाथ के तोते उड़ने लगे । लार्ड चेम्सफोर्ड के स्थान पर लार्ड रीडिंग को वायसराय बनाकर भारत भेजा गया, जो जन्म से नहीं, अपनी प्रतिभा

और परिश्रम से ऊपर उठे थे। लार्ड रीडिंग ने लड़कपन में जहाज पर हलकारे का काम किया था। फिर वह फल विक्रेता बने। और इस प्रकार अपनी मेहनत-मजूरी से साधन एकत्र कर, लार्ड रीडिंग ने कानून की शिक्षा प्राप्त की। धीमे-धीमे यह परिश्रमी व्यक्ति ऊंचे-से-ऊंचे ओहदों पर पहुंचता रहा।

लार्ड रीडिंग ने आते ही गांधी जी से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। गांधी जी ने वायसराय के निमंत्रण को स्वीकार किया। दोनों छह वार मिले। इन में पांच वार्ताओं का ब्यौरा, पुत्र के नाम लार्ड रीडिंग के निजी पत्रों के आधार पर, पुत्र द्वारा प्रणीत अपने पिता की जीवनी में उपलब्ध है। वायसराय रीडिंग विद्रोही महात्मा की सत्य-निष्ठा, भाषा और शिष्टाचार से बहुत प्रभावित हुए। लार्ड रीडिंग ने खुले दिल से बातचीत की और यह शंका प्रकट की कि क्या राजनीतिक आन्दोलनों के लिए नैतिकता और धार्मिकता के सिद्धांत और आदर्श का पालन करना संभव है। गांधी जी ने उनकी शंका का समाधान किया और अहिंसात्मक धर्मयुद्ध की अपनी नीति विस्तार से समझाई। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मेरा पहला उद्देश्य तो अहिंसा, सत्य और प्रेम की शक्ति से भारतीय मानस को शुद्ध और सबल बनाना है। इससे भीतर की दासता से मुक्त होकर, भारतवासी सहज ही बाहरी राजनीतिक और आर्थिक गुलामी से भी आप से आप मुक्त हो जाएंगे। वायसराय की समझ में न आया कि ऐसे प्रतिद्वन्दी से कैसे निपटा जाए।

स्पष्ट था कि भारत भर में खुले हिंसात्मक विद्रोह और रक्त-रंजित क्रांति को रोक सकने की शक्ति वायसराय में नहीं, वरन् एक विद्रोही महात्मा में ही थी। भारतीय मामलों के अनुभवी अंग्रेज विशेषज्ञों ने लंदन में लार्ड रीडिंग को शायद यह समझा कर भारत भेजा था कि भारतीय जनता भोली-भाली, दब्बू और भीरु होती है। और भारतीय नेता चालाक बाबू लोग होते हैं। भारतीय इतिहास

के अंग्रेज अध्येताओं का भी शायद ऐसा ही मत था कि भारत में आमतौर पर चापलूस ही बसते हैं या फिर कभी किसी नख-दंतविहीन चाणक्य से भी वास्ता पड़ सकता है। लेकिन सौम्य सात्विक विद्रोही महात्मा ने तो उन सब कल्पनाओं और मान्यताओं को एकदम झुठला दिया था। भारतीय प्रजा गांधी जी को पूजती थी। महात्मा गांधी की जय से सम्पूर्ण भारत देश गूंज रहा था। ऐसी स्थिति में वायसराय बड़े चक्कर में पड़ गए कि क्या करें, क्या न करें।

अंग्रेज़ी सरकार के सर्वोच्च प्रशासक वायसराय ने शनैः-शनैः गांधी जी को छोड़कर अन्य सब भारतीय नेताओं और असहयोगी कार्यकर्त्ताओं को जेलों में बंद कर दिया। अली बंधुओं के साथ गांधी जी भारत का दौरा करते रहे। पहली अगस्त सन् इक्कीस को दिवंगत लोकमान्य तिलक की पहली पुण्यतिथि पर बम्बई में विदेशी वस्त्रों की होली का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह सम्पूर्ण देश में फैल गया। विदेशी वस्त्रों की देशव्यापी होली की आग से भारत का मन तो पावन और मुक्त हुआ ही, अंग्रेज़ों के प्रति आक्रोश को भी एक वस्तु का निशाना मिल गया। हिंसा, विद्रोह और रक्तपातपूर्ण विप्लव की की भारतीय भूख, त्याग की इस देशव्यापी आग में प्रकट होकर, पाशविक से मानवीय बन गई।

सन इक्कीस के दिसम्बर मास में मौलाना मोहम्मदअली को गिरफ्तार कर लिया गया। वह गांधी जी के साथ-साथ एक सभा में भाषण करने के लिए जा रहे थे। कुछ ही दिनों बाद मौलाना शौकत-अली को भी गिरफ्तार कर लिया गया। अली बन्धुओं पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने अपने भाषणों से ब्रिटिश फौजों के भारतीय सैनिकों को भड़काने की कोशिश की थी, विशेषकर उन्हें, जो मुसलमान थे। मुसलमानों का मन अंग्रेज़ी शासन के प्रति तीव्र असंतोष से भर गया था। मलावार के मोपला लोगों ने हिंसात्मक विद्रोह कर दिया था, जिसे शांत करने के लिए गांधी जी अली वन्धुओं के साथ-

मलाबार जाना चाहते थे। लेकिन अंग्रेज़ी सरकार ने ऐसा न होने दिया। अली बंधु कैद में थे और गांधी जी को मलाबार जाने से रोक दिया गया।

गांधी जी के हृदय पर अपने निकटतम वफ़ादार मुस्लिम सहयोगियों की गिरफ्तारी का इतना असर पड़ा कि उनके प्रति अपनी एकता दिखाने के लिए, गांधी जी ने कांग्रेस के अन्य सब नेताओं और कार्यकर्त्ताओं को सार्वजनिक सभाओं में अली बंधुओं जैसे ही राजद्रोहात्मक भाषण देने का आदेश दिया। उन दिनों मौलाना शौकतअली गांधी जी को आदर और मान से सरकार कहा करते थे। अली बंधुओं की गिरफ्तारी के बाद गांधी जी अकेले पड़ गए। भारतीय जनता और विद्रोही महात्मा सरकार के दमन चक्र को वीरता से चुनौती देते रहे। इसी समय निर्धन जनता से एकरस होने के लिए, गांधी जी ने 'नंगा फकीर' की वह पोशाक अपनाई, जो आजीवन उनकी बनी

भारत की निर्धन जनता से एकरस होने के लिए गांधी जी ने 'नंगा फकीर' की वह पोशाक अपनाई, जो आजीवन उनकी बनी रही।

सन इक्कीस के नवम्बर मास में, ब्रिटेन के प्रिंस आफ वेल्स के भारत के दौरे की योजना बनाई गई। आशा थी कि इससे लोग अंग्रेज़ी राज के पक्ष में हो जाएंगे। लेकिन अंग्रेज़ शासक वर्ग का यह पासा भी उलटा पड़ा। भारतीय जनता ने ब्रिटेन के युवराज के स्वागत में भाग लेने से साफ इन्कार कर दिया। भारत के सब नगरों में जोरदार हड़तालें हुईं। प्रिंस आफ वेल्स को सूने नगरों की सूनी सड़कों से गुजरना पड़ा। ब्रिटिश राजसत्ता के प्रति भारतीय जन के असहयोग का ऐसा व्यापक रूप अंग्रेज़ों की कल्पना से परे था।

बम्बई की हड़ताल ने असहयोग आन्दोलन के लिए भी एक अनसोची विषम स्थिति पैदा कर दी। बम्बई के पारसी और ईसाई राजभक्ति प्रदर्शित करने से न रुके और मुसलमानों और हिन्दुओं के कोपभाजन बने। शहर में साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। स्थिति को सुधारने के लिए गांधी जी को अनशन करना पड़ा। सब सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों ने तब कहीं बम्बई को साम्प्रदायिक वैमनस्य से मुक्त किया। गांधी जी के तपे हुए व्यक्तित्व ने पुनः तप कर, अनशन की शक्ति से बम्बई में शांति स्थापना की। कलकत्ता की पूर्ण हड़ताल बम्बई की हड़ताल से भी बढ़ी-चढ़ी सिद्ध हुई। प्रिंस आफ वेल्स का भारतीय दौरा भारतीय प्रजा के मन में ब्रिटेन के प्रति सौमनस्य पैदा न कर सका।

महामना मालवीय जी और श्री मोहम्मदअली जिन्ना ने भारत सरकार और महात्मा गांधी के बीच संधि के प्रयत्न किए। लेकिन दोनों के बीच संधि तो क्या, संधि की वार्ता भी न हो सकी। अहमदाबाद में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सन इक्कीस के अंतिम मास में हुआ। कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष देशबन्धु चित्तरंजनदास जेल में थे। हकीम अजमलखां को स्थानापन्न अध्यक्ष बनाया गया। 'खादी नगर' और 'मुस्लिम नगर' कांग्रेस और खिलाफत के जोशीले कार्यकर्त्ताओं से खचाखच भरे थे। हिन्दु-मुस्लिम एकता के दृश्य कांग्रेस

और खिलाफत दोनों के मंच पर उजागर थे। सम्पूर्ण भारत ने क्रांति के उत्साह में धड़कता हुआ अपना ज्वलन्त हृदय गांधी जी के हाथों में सौंप दिया था। रोम्यां रोलां ने लिखा है कि तत्कालीन भारतीय वातावरण सन सत्तरह सौ उनासी में फ्रांस की राजक्रांति के समय जैसा ही विस्फोटक था। ज्वालामुखी जैसी इस राजनीतिक परिस्थिति में कांग्रेस ने गांधी जी को 'सर्वेसर्वा' का पद सौंप दिया। उनके एक निहत्थे हाथ के उठते ही भारत में राजक्रांति हो सकती थी। लेकिन गांधी जी इस विषय में भी यूरोप के अनुगामी नहीं बनना चाहते थे। वह भारत को अहिंसा, सत्य और प्रेम की सात्विक शक्ति के बल पर आगे बढ़ाना चाहते थे। निश्चय हुआ कि अहिंसक राजक्रांति या 'सविनय आज्ञाभंग' का कार्यक्रम जिलावार शुरू किया जाएगा। सूरत जिले की बारडोली तहसील को सर्वप्रथम युद्धक्षेत्र के रूप में चुना गया, जहां से धर्मयुद्ध शनैः शनैः भारत के हर जिले में व्यवस्थित रूप में फैलता जाएगा। इस प्रकार गांधी जी के सत्याग्रह का दूसरा चरण शुरू होना था। पहला चरण असहयोग, दूसरा सविनय और तीसरा ? तीसरा चरण, विदेशी शासन की आज्ञाभंग करने के उपरांत स्वतंत्र व्यवस्था की स्थापना।

1 फरवरी, सन 1922 के दिन गांधी जी ने वायसराय लार्ड रीडिंग को पत्र भेजकर बारडोली में अपने आगामी कार्यक्रम की सूचना दी और यह अवसर भी कि सात दिन के भीतर यदि सरकार समाचारपत्रों की स्वतंत्रता, राजनीतिक कार्यकर्ताओं की रिहाई और भारतीय जनमत को सन्तुष्ट करने की अपनी इच्छा प्रकट करेगी, तो बारडोली आन्दोलन शुरू न किया जाएगा।

छह फरवरी की अपनी घोषणा में भारत सरकार ने अपनी दमन नीति को आवश्यक सिद्ध किया और आन्दोलन को सार्वजनिक शांति भंग करने और जगह-जगह अराजकता भड़काने का दोषी ठहराया। सात फरवरी को गांधी जी ने इस आरोप का खंडन करते

हुए, हुकूमत की निरंकुशता, निर्दयता और असभ्यता के प्रमाण दिए। गांधी जी की मनोकामना थी कि दमन चक्र के बल पर शासन करने वाली विदेशी सरकार की निरंकुशता, निर्दयता और अभद्रता का उत्तर उनके प्राणप्रिय भारत देश की जनता अहिंसा, सत्य और प्रेम से देगी कि भौतिक सम्पन्नता के मद में अंधी और अहंमन्य पाश्चात्य सभ्यता की आंखें खुल जाएं। लेकिन अगले ही दिन, यानी 8 फरवरी, सन 1922 के दिन बारडोली में गांधी जी ने एक ऐसी दुर्घटना के समाचार पढ़े कि उन्हें बारडोली में अपने भावी कार्यक्रम को स्थगित करने की घोषणा करनी पड़ी।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में चौरीचौरा नामक एक देहाती थाने को, छिपे हुए पुलिस सिपाहियों के साथ जिंदा जलाकर, स्थानीय भारतीय जनता ने सरकार की उद्दण्डता और वर्बरता का उत्तर घोर हिंसा और उच्छृंखलता से दिया था। यह तथ्य था कि हिंसा और उच्छृंखलता में शुरुआत पुलिस वालों ने ही की थी। गांधी जी की जय बोलता हुआ, जनता का शांतिपूर्ण जुलूस जब पुलिस थाने के सामने से गुजरा, तब पुलिस वालों ने आवाज़ें कसीं और जब जुलूस आगे बढ़ गया, तब पुलिस वाले उसके पिछड़े हुए भाग की हारी-थकी भीड़ पर टूट पड़े। उन्होंने निहत्थी जनता पर हाथ छोड़ा, लोगों को गालियां दीं और उन्हें अपमानित किया। लोगों की गुहार सुनकर, जुलूस पलटा। निरंकुश शासन की सबसे घृणित निर्दय शक्ति पुलिस के प्रति प्रजा का रोष भड़क उठा। जुलूस के पलटते ही पुलिस वाले गोलियां चलाने लगे। आग से आग भड़की और जब पुलिस वालों का गोला-बारूद खत्म हो गया तो देहाती किसान प्रजा ने थाने का घेरा डालकर, उसमें आग लगा दी। बिल में छिपे हुए चूहों की तरह पुलिस वालों का दम घुटने लगा। तब उन्होंने भड़की हुई प्रजा की हा-हा खाई। लेकिन लंका को घेरे हुए क्रुद्ध वानरों की भांति ग्रामीण, पुलिस वालों को राक्षस समझकर भस्म

करते रहे। उन्हें शरणागत के प्रति राम का स्मरण न आया। गांधी जी के जी को बहुत गहरी ठेस पहुंची।

कुछ दिनों पहले से ही गांधी जी का जी दुखाने वाली इक्की-दुक्की और भी घटनाएं यत्र-तत्र हो चुकी थीं कि लोग गांधी जी की जय बोलकर हिंसा पर उतर आते थे। और भी भयंकर बात यह थी कि पढ़े-लिखे अनेक लोगों के मन में यह विश्वास घर कर गया था कि गांधी जी तो कूटनीतिवश अहिंसा का राग अलापते हैं, क्योंकि निहत्थी जनता को इसी तरह संगठित किया जा सकता है, पर जब उचित अवसर आएगा, गांधी जी ही हथियार उठाने को कहेंगे।

स्वयं गांधी जी भी अपने साप्ताहिक पत्र 'नवजीवन' में लिख चुके थे कि देश 'अहिंसा का नहीं, स्वतंत्रता का भूखा है।' लेकिन जैसे स्वाभाविक भूख भी कुपथ्य के कारण भयंकर रोग का कारण बन सकती है, वैसे ही स्वतंत्रता के लिए देश की इच्छा भी अनियंत्रित हिंसा से रक्तरंजित विप्लव, अराजकता और अंत में संगठित हिंसा के हाथों फिर पराजय में परिणत हो सकती थी। गांधी जी के कथनानुसार भी कायरता से वीर की हिंसा अच्छी है, किन्तु सिंह की हिंसा से मानवी अहिंसा कहीं अच्छी और कहीं बड़ी वीरता है। शुद्ध साधन से ही शाश्वत सिद्धि मिल सकती है।

अहिंसात्मक शुद्ध साधनों को पूरे जी से अपनाना तलवार की धार पर चलना है, जो तलवार चलाने से कठिन काम है। लेकिन गांधी जी को अपने प्यारे भारत से यह कठिन काम कर दिखाने की भी आशा थी। लेकिन चौरीचौरा ने कम-से-कम फिलहाल तो उस सदाशा पर पानी फेर ही दिया था।

गांधी जी ने बारडोली सत्याग्रह की योजना को स्थगित करने की घोषणा कर दी। शत्रु, मित्र और उदासीन सब अचम्भे में पड़ गए। आलोचकों ने गांधी जी को व्यंग्यबाणों का निशाना बनाया—कहां है वह स्वराज, जो एक वर्ष के भीतर अवतरित होने वाला था?

हिंसा के देशव्यापी वातावरण में महात्मा गांधी की जय का नारा चतुर्दिक गूंज रहा था। सत्याग्रह के महानायक ने अपने अन्तर की पीड़ा को अनुभव किया और अपनी आत्मा की आवाज को सुना। परंतप महात्मा ने अपने परिताप के शमन के लिए पांच दिन के अनशन की घोषणा की : "ईश्वर ने अब तीसरी बार मुझे चेताया है कि देश में सार्वजनिक सत्याग्रह के लायक अहिंसा और सत्य का वातावरण अभी नहीं बन सका है। सत्याग्रह समझ-बूझ कर और जान कर किया जाता हैं। सत्याग्रह में आग्रह तो होता है, पर वह आग्रह प्रेम के सहित होता है। सत्याग्रह में दुष्टता और घृणा के लिए कोई जगह नहीं होती। ईश्वर ने मुझे सन उन्नीस सौ उन्नीस में चेताया। रौलेट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन छिड़ा हुआ था। अहमदाबाद, वीरमगाम, खेड़ा में गलतियां हुईं; अमृतसर और कसूर में सत्याग्रह के नाम पर हिंसा हुई। मैंने अपना कदम पीछे हटाया। मैंने अपनी भूल को हिमालय के समान बड़ी बताया। भगवान और मानवता के सामने मैंने अपनी चूक के लिए सिर झुकाया और केवल सार्वजनिक सत्याग्रह आन्दोलन को ही नहीं, अपने व्यक्तिगत सत्याग्रह को भी स्थगित कर दिया। फिर मुझे ईश्वर ने बम्बई की घटनाओं के रूप में चेताया।...लेकिन मुझे अत्यधिक लज्जित करने और दुख देने वाली घटना तो अभी घटनी थी। मद्रास ने भी मुझे चेताया था, पर तब भी मेरी आंखें नहीं खुलीं। पर चौरीचौरा के रूप में भगवान ने जो स्पष्ट चेतावनी दी है, उसे अनसुना नहीं किया जा सकता।"

गांधी जी के पांच दिन के अनशन से देश में हिंसा के विरुद्ध वातावरण तो बना, किन्तु सत्याग्रह आन्दोलन के रोके जाने से व्यापक असन्तोष भी हुआ। जेलों में बंद लाला लाजपतराय, पंडित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चित्तरंजनदास जैसे दिग्गज नेताओं ने गांधी जी के निर्णय का विरोध किया। अधिकतर अन्य कार्यकर्त्ताओं का भी यही भाव था। जेल में बंद पंडित जवाहरलाल नेहरू को गांधी जी ने

विस्तार से पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने आन्दोलन की नैतिक और संगठनात्मक दुर्बलताओं का ब्योरा तो दिया ही, साथ ही देशव्यापी हिंसात्मक वातावरण का भी चित्र खींचा और चेतावनी दी : "मैं विश्वास दिलाता हूं कि आन्दोलन को रोका न जाता, तो हमें अहिंसात्मक सत्याग्रह की जगह हिंसात्मक विप्लव का नेतृत्व करना पड़ता ।"

हिंसात्मक विप्लव की स्थिति में असंगठित और निरस्त्र जनता तो अवश्य ही पिस जाती । उस स्थिति में देश का वही हाल होता, जो अठारह सौ सत्तावन के स्वतंत्रता संग्राम के बाद हुआ था; बल्कि उससे भी बुरा, क्योंकि तब तो हिन्दुस्तानियों के पास हथियार भी थे, जबकि अब सारा भारत निहत्था था । उस स्थिति में गुंडागर्दी का दौर भी आता ही, जो और भी खतरनाक होता । इसलिए चौरीचौरा की हिंसात्मक या प्रतिहिंसात्मक दुर्घटना से सबक लेकर गांधी जी ने आन्दोलन को रोक देना ही देश के लिए हितकर समझा ।

24 फरवरी, सन 1922 के दिन दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में गांधी जी के निर्णय का कड़ा विरोध हुआ । अहिंसा के प्रश्न पर ही नहीं, चर्खा और खद्दर के विषय में भी गांधी जी के प्रति प्रतिनिधियों ने विरोध प्रकट किया ।

उधर लंदन में साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासक वर्ग ने आन्दोलन के रोके जाने से उत्साहित होकर, दर्दभरी घोषणाएं करना शुरू किया । भारत सचिव मांटेगू ने धमकी दी—भारत इस भ्रम में न रहे कि हम भारत से पांव हटाने की बात कभी सोच भी सकते हैं । दुनिया में अंग्रेज जाति से अधिक दृढ़निश्चयी जाति दूसरी नहीं है और अगर इस अंग्रेज जाति को भारत द्वारा चुनौती दी गई, तो इस संघर्ष में भारत को सफलता नहीं मिलेगी । हम फिर ऐसी चुनौती का अपनी पूरी ताकत से मुकाबला करेंगे । लार्ड बर्किनहेड ने उपहास करते हुए घोषणा की कि ब्रिटेन का कोड़ा और बल-क्रम वही है जो पहले था ।

इन धमकियों का अर्थ यही था कि भारत ने सन अठारह सौ सत्तावन के स्वतंत्रता संग्राम में क्या कर लिया था, जो अब कुछ कर सकेगा !

गांधी जी ने इस धमकी के विरुद्ध एक जोरदार लेख लिखा और ब्रिटेन के शासक वर्ग को आगाह किया, स्वतंत्रता संग्राम चलता रहेगा और भारत एक दिन स्वतंत्र होकर रहेगा। गांधी जी के लेख में एक संत की चेतावनी और एक विद्रोही देशभक्त का साहस और स्वाभिमान था।

गांधी जी को युद्ध में हारा हुआ, साथियों का विश्वास हारा हुआ नेता समझकर, अंग्रेजी सरकार ने उन्हें 10 मार्च, सन 1922 की रात को गिरफ्तार कर लिया।

मजिस्ट्रेट की अदालत में राजद्रोही अभियुक्त महात्मा का नाम, पेशा और निवासस्थान के संबंध में सवाल पूछे गए। उत्तर मिला—नाम मोहनदास करमचन्द गांधी, उम्र तिरपन साल, पेशे से किसान और बुनकर, जो रहने वाला साबरमती आश्रम का है। मजिस्ट्रेट ने अपराधी को सैशन सुपुर्द कर दिया। 18 मार्च, सन 1922 के दिन सेशन जज मिस्टर ब्रूमफील्ड, आई० सी० एस० की अदालत में गांधी जी के मुकदमे की सुनवाई हुई।

राजद्रोह के अपराध में महात्मा गांधी की पेशी यों तो अहमदाबाद के एक सेशन जज की अदालत में हुई थी, लेकिन गांधी के व्यक्तित्व और मुकदमे के महत्व के कारण उनकी पेशी मानो विश्वमानवता के सर्वोच्च न्यायालय में थी।

इस मुकदमे के बारे में विन्सेंट शीन लिखते हैं—मुकदमे के अवसर पर अहमदाबाद में सेना का जबर्दस्त इन्तजाम किया गया। लेकिन वास्तव में तो यह बंदोबस्त अनावश्यक ही था; क्योंकि केवल अहमदाबाद ही नहीं, सम्पूर्ण भारत देश गांधी जी के सन्देश को अब समझ गया था और उसका पालन भी स्वेच्छा से कर रहा था। इस अवसर पर सम्पूर्ण भारत देश का और पहली बार सम्पूर्ण विश्व का

ध्यान गांधी जी पर केंद्रित था। राजद्रोह के आरोपों के लिए गांधी ने कोई सफाई पेश नहीं की। बल्कि यहां तक कहा कि आरोप में कहे गए अपराधों से कहीं अधिक संगीन है राजद्रोह का उनका अपराध, और यह भी कि वह कहीं अधिक समय से यह अपराध करते रहे हैं। उन्होंने जज से जोरदार शब्दों में मांग की कि अगर कानून को जज महोदय न्यायपूर्ण समझते हैं, तो कानून के मुताबिक वह उन्हें कड़ी से कड़ी सजा दें।

गांधी जी के बयान का वह अंश, जिसमें उन्होंने एक राजभक्त से राजद्रोही बनने की अपनी कहानी सुनाई, बहुत प्रभावपूर्ण था। सब लोगों के मन पर उसका गहरा असर पड़ा। लोगों का ऐसा अनुमान था कि गांधी जी मुकदमे में अपनी सफाई देंगे और अपने बचाव की कोशिश या रहम की दरख्वास्त करेंगे। लेकिन लोग गांधी जी को तब तक पूरी तरह से समझे न थे। इसीलिए गांधी जी का स्वाभाविक व्यवहार भी लोगों को अचम्भे में डाल देता था। बाद में तो सब समझ गए कि गांधी जी न सफाई पेश करने वाले प्राणी थे, न कड़ी से कड़ी सजा भोगने से कतराने वाले।

न्यायाधीश मिस्टर ब्रूमफील्ड इस अवसर पर संकोच और खेद का अनुभव कर रहे थे, यह स्पष्ट था। न्यायाधीश ने कहा कि न्याय की दृष्टि में सब बराबर हैं, लेकिन इस बात को भुलाया नहीं जा सकता कि जितने भी लोग आज तक मेरे सामने पेश हुए हैं या भविष्य में कभी होंगे, उन सबसे आप भिन्न कोटि के हैं। आप कोटि-कोटि जनों की दृष्टि में एक महान् देशभक्त और महान नेता हैं। वे लोग भी, जो आपके राजनीतिक विचारों से सहमत नहीं हैं, आपको एक महापुरुष और संत ही मानते हैं।

जज ने स्वराज को अपना जन्मसिद्ध अधिकार घोषित करने वाले लोकमान्य तिलक और स्वराज के जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करने के लिए राजद्रोह करने वाले महात्मा गांधी को एक-से ही दण्ड

का अधिकारी माना। बारह वर्ष पूर्व लोकमान्य के मुकदमे का हवाला देते हुए, जज ने गांधी जी को छह साल की सजा का हुकम सुनाया। लोकमान्य के पावन स्मरण के साथ अपना फैसला सुनाने और हर प्रकार से शिष्टाचार वरतने के लिए जज महोदय को धन्यवाद देकर गांधी जी ने सजा को हल्की से हल्की और कम से कम बतलाया।

गांधी जी की जेलयात्रा शुरू हुई। जनता की दृष्टि में बंदीगृह कृष्ण मंदिर वन गया। भारतवासियों का हृदय गांधी मंदिर वन गया। अहिंसात्मक सत्याग्रह का अमोघ साधन संसार भर की निहत्थी, पददलित और शोषित जनता का हथियार वन गया। साम्राज्य-वाद के लौहपाश में जकड़े हुए लहू-लुहान पराधीन राष्ट्रों का एक सन्देश मिला और स्वराज उनका भी जन्मसिद्ध अधिकार वन गया। मानवता के त्राता और मुक्तिदाता के रूप में गांधी जी की जय विश्वाकाश में गूंजने लगी।

जन-गण-मन में

गांधी जी की जेलयात्रा के समय श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कहा था, "वे लोग गांधी जी को चाहे पृथ्वी के सुदूरतम छोर पर ले जाएं, लेकिन गांधी जी का स्थायी पता-ठिकाना तो भारतीय जनता के हृदय में रहेगा।" भारतीय जनता के हृदय में महात्मा गांधी जिस गहराई के साथ पैठ गए थे, उसकी थाह पाना आसान न था। गांधी जी की अहिंसक रणनीति के गहरे प्रभाव का अनुमान उस आन्दोलन से लग सकता है, जिसे 'गुरु के बाग' के उद्धार के लिए वीरधर्मी अकालियों ने अगस्त, सन उन्नीस सौ बाईस में शुरू किया था। भारत-मित्र श्री सी० एफ० एंड्रयूज की पुस्तिका 'अकाली आन्दोलन' में इसका विस्तार से वर्णन मिलता है।

'गुरु के बाग' पर महन्तों का अधिकार था। सिखों का एक दल महन्तों से इस धर्मस्थान का उद्धार और शुद्धि करना चाहता था। लेकिन अंग्रेजी सरकार महन्तों की हिमायत कर रही थी। 'गुरु के बाग' पर महन्तों के अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए हथियारबंद पुलिस तैनात थी। धर्मस्थान के उद्धार का बीड़ा उठाने वाले अकाली सिखों ने अहिंसात्मक धर्मयुद्ध करने की ठान ली थी। लगभग एक हजार आन्दोलनकारी 'गुरु के बाग' का घेरा डाले हुए थे और लगभग चार अकाली दस मील दूर, अमृतसर के स्वर्णमंदिर में जमा थे। उनमें से अनेक सरकारी सैनिक भी रह चुके थे और बहुत-से सैनिक बनने योग्य गबरू जवान थे। लेकिन सब-के-सब अहिंसा का व्रत ले चुके थे।

एक हजार अकालियों का जत्था अहिंसा का व्रत लेकर आगे बढ़ता। पचीस की टोली 'गुरु के बाग' तक पहुंचने की शपथ लेकर,

पुल पार करने की कोशिश करती। पुल पर हथियारबंद पुलिस होती। आगे बढ़ते हुए जत्थे की ओर भाले तने रहते, जिनसे अहिंसक वीरों के सीने टकराते। जत्थे का हर वीर शांत भाव से गुरुवाणी का जाप करता। भाले की नोक हर शांत वीर के सीने में धंसती और काली पगड़ी और सफेद फूलमालाओं से सजे हुए वीर की सवा गज़ की छाती लहू-लुहान होने लगती। वीर टस-से-मस न होता, जब तक रक्त-स्राव से अचेत होकर, वह धराशायी न हो जाता। होश आने पर वीर फिर वैसा ही सीना तान कर उठ खड़ा होता, जबकि पुलिस की मार से वह अधमरा होकर, वह गिर न जाता। दिन-पर-दिन यही दृश्य दिखाई देता जो न दिखाई देता, वह था क्रोध; जो किसी भी वीर अकाली की दृष्टि में न था। किसी वीर के मुख पर कभी कोई अपशब्द भी न आया। दर्शकों की भीड़ भी वीरों के प्रति सहानुभूति और प्रेम से ईश्वरप्रार्थना करती। यह दृश्य देखकर श्री सी० एफ० ऐंड्रयूज ने मृत्युंजय ईसा का स्मरण किया और सिख दर्शकों ने मृत्यंजय गुरुओं का। लेकिन, सरकारी अधिकारियों ने अनुभव किया कि महात्मा गांधी के सत्याग्रही अहिंसात्मक धर्मयुद्ध की रीति-नीति की छाया रणबांकुरे पंजाब पर भी पड़ गई है। अंग्रेज़ी हुकूमत को यह देखकर अचरज हुआ कि अकाली भी गांधी जी की भांति ही नासमझी पर उतर आए हैं। असलियत अंग्रेज़ों से अब छिपी न रही। गांधी जी की नई युद्ध नीति जनता के मन में घर करती जा रही थी। कुछ वर्षों बाद सीमा प्रांत के वीर पठान भी खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में अहिंसा को अपनाने वाले थे। ऐसा लगता है कि गांधी जी की अहिंसात्मक युद्ध नीति भोले-भाले, निष्ठावान और अनुशासित ऐसे समाज के लिए ही अधिक उपयुक्त और स्वीकार्य थी। अहिंसात्मक युद्धनीति को वही वीर अपना सकते थे, जो सैनिक अनुशासन से परिचित ही नहीं, उसके अभ्यस्त भी हों। त्वचा पर आंच न आने देने के लिए या जान बचाने के लिए अहिंसा को सुगम

उपाय के रूप में अपनाना और उसे कायरता का कवच बनाना न उचित है, न उपयोगी। शुभ्र शौर्य की इस रण नीति को वही अपना सकता है, जो प्रहलाद की तरह ही आस्तिक सत्याग्रही और भोला बालक हो।

गांधी जी के हृदय में भी सदा एक भोला बालक रहता था। अपने जेल जीवन के प्रारंभिक तीन-चार महीनों में गांधी जी अपने मन में यह आशा संजोए रहे कि खिलाफत और असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरूप या अंग्रेजी हुकूमत के हृदय-परिवर्तन से शीघ्र ही ब्रिटेन और भारत के बीच मैत्रीपूर्ण समझौता हो जाएगा और जेलों के द्वार खुल जाएंगे। लेकिन जब ऐसा न हुआ, तो गांधी जी लम्बी लड़ाई के लिए स्वयं को तैयार करने लगे, "मुझे अब यह समझते देर न लगी कि कार्य परिश्रम और धैर्य के साथ संगठन किए बिना पूरा न होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति में राष्ट्र को पांच वर्ष से कम न लगेंगे।" राष्ट्र ने एक अवसर हाथ से गंवा दिया था, अन्यथा जैसा कि गांधी जी का अनुमान था, देश असहयोग आन्दोलन में "विदेशी वस्त्रों का पूर्ण बहिष्कार कर सकता तो जेलों के द्वार आप से आप खुल जाते।"

यरवदा जेल में गांधी जी ने अपने लिए अध्ययन-मनन का जो कार्यक्रम बनाया, सामान्यतः उसे पूरा करने के लिए छह वर्ष भी कम थे। लेकिन वह स्वाध्याय में जिस उत्साह से जुट गए, "वह जर्जर शरीर वाले चव्वन बरस के बड़े-बूढ़े के योग्य नहीं, चौबीस बरस के किसी नौजवान के लायक था।"

गांधी जी यरवदा जेल में अध्ययन और मनन करते रहे। किन्तु जेल की चारदीवारी के बाहर देश की राजनीतिक परिस्थिति तेजी से बदलती रही। अंग्रेजी सरकार का दमन चक्र चलता रहा, लेकिन कांग्रेस की ओर से कोई जवाबी हमला हो ही नहीं सकता था। असह-योग आन्दोलन को लगानबंदी और उग्र सत्याग्रह का रूप देने की बात

उठी जरूर, लेकिन गांधी जी की खाली जगह लेने लायक कोई नेता दिखाई न देता था। स्वराज पार्टी का गठन कर, पंडित मोतीलाल नेहरू और देशवन्धु चित्तरंजनदास ने सितम्बर, सन 1923 में कांग्रेस की गतिविधि को चुनाव लड़ने की दिशा में मोड़ दिया। चुनाव के मैदान से कांग्रेस के हटे रहने से मद्रास प्रान्त में जस्टिस पार्टी और पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी प्रवल हो रही थीं। इससे स्वराज की लड़ाई में वाधा ही पड़ सकती थी। जस्टिस और यूनियनिस्ट पार्टियों में अंग्रेजी सरकार के समर्थकों की कमी न थी।

उधर तुर्की की अपनी राजक्रांति के परिणामस्वरूप मार्च, सन 1924 में मुसलमानों के खलीफा का पद ही समाप्त हो गया। नवम्बर, 1922 में खलीफा सुल्तान मोहम्मद छठे ने एक ब्रिटिश युद्धपोत में सवार होकर ब्रिटेन के अधीन माल्टा द्वीप की राह पकड़ी और अपने विजेता अंग्रेजों की शरण ले ली। तुर्की के राज-परिवार के सदस्य अब्दुल मजीद खलीफा बने, लेकिन मार्च, सन 1924 में खलीफा की पदवी और धार्मिक अधिकार को ही समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार असहयोग में मुस्लिम सहयोग की बुनियाद ही ढीली पड़ गई। हिन्दू-मुस्लिम एकता का आधार बहुत दिनों सुदृढ़ न रह सका। अली वंधु खिलाफत आन्दोलन की समाप्ति के वाद भी कुछ वर्ष कांग्रेस में बने रहे। लेकिन धीरे-धीरे वे मुसलमानों के साम्प्रदायिक और राजनीतिक नेता वनते गए। उधर हिन्दू जनता में भी मोपला विद्रोह के कारण मुसलमानों के प्रति संशय जगा। खिला-फत आन्दोलन की विफलता पर मुसलमानों की कुंठा और मोपला विद्रोह के कारण हिन्दुओं का संशय अंग्रेजी भेद नीति को कारगर सिद्ध करने में सहायक हुआ। देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगों का तांता लग गया। भारत की साम्प्रदायिक फूट विदेशी शासन के हित में और राष्ट्रीय स्वतंत्रता और अखंडता के लिए दिनोंदिन अधिकाधिक बाधक होने लगी।

अन्य राजनीतिक बंदियों से भाईचारा और समानता स्थापित करने के लिए गांधी जी ने जेल में खास तरह की अच्छी खुराक लेना बंद कर दिया था। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। 12 जनवरी, सन 1924 के दिन एकाएक उनकी हालत बहुत बिगड़ गई। डाक्टरों ने रोग का निदान एपेंडिक्स के दर्द के रूप में किया और तत्काल आपरेशन करना अनिवार्य समझा। गांधी जी को यरवदा जेल से पूना के अस्पताल में भेज दिया गया। कर्नल मैडाक ने तत्काल आपरेशन करने की जिम्मेदारी ली। गांधी जी ने लिख कर दिया कि उन्हें उनमें पूर्ण विश्वास है। लेकिन सर्जन जनरल ने आपरेशन शुरू ही किया था कि बिजली फेल हो गई। सर्जन जनरल मैडाक ने अपनी टार्च का सहारा लिया, लेकिन टार्च भी फ्यूज हो गई। हरीकेन लालटेन की रोशनी में आपरेशन पूरा किया गया। आंधी-पानी की वह तूफानी रात सचमुच भयंकर थी। सर्जन जनरल मैडाक ने 13 जनवरी, सन 1924 को प्रातःकाल कस्तूरबाई गांधी को तार से सूचना दी, "कल रात श्री गांधी का आपरेशन सफल रहा। रात अच्छी तरह बीती। आज सवेरे हालत सन्तोषप्रद है।"

गांधी जी ने नश्तर लगने और उसके बाद आरोग्य लाभ के लिए अस्पताल में रहते हुए जेल अधिकारियों, डाक्टरों और परिचारिकाओं के हृदय जीत लिए थे। इस घटना से देश भी एकाएक सुषुप्ति से जाग उठा था। सब वर्गों के राजनीतिक नेता पूना पहुंच गए। गांधी जी मौत के मुंह से निकले और अंग्रेजी राज भी महात्मा गांधी का हत्यारा कहलाने के कलंक से बाल-बाल बच गया। शायद मन-ही-मन 'जान बची और लाखों पाए' कहकर, सरकार ने गांधी जी को 5 फरवरी, सन 1924 के दिन, बिना शर्त रिहा कर दिया। लेकिन आपरेशन का जखम भरने तक, गांधी जी लगभग पांच सप्ताह अस्पताल में ही रहे।

दस मार्च को गांधी जी स्वास्थ्य लाभ के लिए बम्बई के समुद्र तट पर जुहू आ गए, जहां उन्हें लगभग दस-ग्यारह सप्ताह तक रुकना

पड़ा। लेकिन जब सत्ताईस जून, सन उन्नीस सौ चौबीस को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक अहमदाबाद में हुई, गांधी जी जुहू में रुके न रह सके। पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबंधु चितरंजनदास के नेतृत्व में स्वराज पार्टी के सदस्यों ने गांधी जी के असहयोग और चर्खा कार्यक्रम को स्वीकार करने में आनाकानी की। गांधी जी को अपने प्रस्तावों के पक्ष में इतना थोड़ा बहुमत मिला कि उन्हें अपनी जीत में भी हार दिखाई दी। प्रमुख और घनिष्ठ सहयोगियों के विरोध ने गांधी जी को अक्षरशः रुला दिया। गांधी जी ने स्वयं को 'पराजित और अपमानित' कहा। उन्होंने अपने अनुयायियों सहित कांग्रेस से निकल जाने की भी सोची। लेकिन इससे कांग्रेस में फूट पड़ने का ही नहीं, उसके टूट जाने का भी डर था। गांधी जी ने दुखी होकर कहा: "हमारे असहयोग आन्दोलन का आज क्या रूप हो गया है? यह कि सरकार से असहयोग करने की जगह, अब हम आपस में ही असहयोग करने लगे हैं।"

आपस का असहयोग नेताओं के बीच ही नहीं, भारतीय राष्ट्र के विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों के बीच भी भयंकर रूप में उभर रहा था। इसका सबसे खतरनाक रूप हिन्दू-मुस्लिम दंगों में दिखलाई दिया। गांधी जी से यह न देखा गया। वह दिल्ली पहुंचे और कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना मोहम्मदअली के घर ठहरे। वहीं से गांधी जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए 18 सितम्बर, सन 1924 के दिन, इक्कीस दिन के अपने अनशन का ऐलान किया। सारे देश में तहलका मच गया। दंगों की विषैली आग शांत हो गई। गांधी जी का इक्कीस दिन का अनशन पूरा हुआ। देश के बड़े-बड़े सभी हिन्दू-मुस्लिम नेताओं ने साम्प्रदायिक एकता का प्रतिज्ञापत्र भरा और जनता के नाम शांति की अपील निकाली। साम्प्रदायिक रक्तपात का संकट टल गया। किन्तु साम्प्रदायिक वैमनस्य का विषवृक्ष जड़ से न उखड़ा। गांधी जी के इक्कीस दिन के इस अनशन के इक्कीस वरस

वाद हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का विषवृक्ष भारत के बंटवारे के रूप में फला। अंग्रेजी हुकूमत ने शायद इस बात पर कमर कस ली थी कि वह भारत में सन अठारह सौ सत्तावन और उन्नीस सौ बीस-इक्कीस की-सी हिन्दू-मुस्लिम एकता फिर कभी न होने देगी।

अनशन की सफलता के बाद गांधी जी सहयोगी मुसलमान नेताओं के साथ कोहाट में साम्प्रदायिक शांति स्थापित करने के लिए जाना चाहते थे। लेकिन सरकार ने यह न होने दिया। उधर बंगाल में घोर दमन चक्र चलाकर, सरकार ने कोहाट के दंगों की ओर से लोगों का ध्यान हटा दिया। गांधी जी को सरकारी दमन चक्र का विरोध और देशबंधु चितरंजनदास की बंगाल स्वराज पार्टी का समर्थन करने के लिए तुरंत कलकत्ता जाना पड़ा। इतना ही नहीं, सरकार के दमन चक्र के विरुद्ध एक राष्ट्रीय संगठित मोर्चा बनाने के लिए गांधी जी को कांग्रेस के आगामी वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस का अध्यक्ष पद भी स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार गांधी जी के सभापतित्व में 26 दिसम्बर, सन 1924 के दिन बेलगांव में कांग्रेस का उन्तालीसवां अधिवेशन हुआ। गांधी जी ने कांग्रेस को आपस की फूट से बचा लिया और थोड़े-बहुत मतभेद के रहते हुए भी एक सर्वसम्मत राजनीतिक कार्यक्रम तैयार किया। कांग्रेस के पंडाल में ही खिलाफत कमेटी और हिन्दू महासभा की अलग-अलग बैठकें हुईं और कांग्रेस को इन दोनों संस्थाओं का समान रूप से समर्थन भी प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय एकता बढ़ी। बेलगांव अधिवेशन में श्रीमती एनी बेसेंट भी कांग्रेस में फिर सम्मिलित हो गईं।

बेलगांव कांग्रेस में असहयोग का कार्यक्रम समाप्त हो गया था और गांधी जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भी स्वराज को स्वीकार किया था। अब वह देश में अपने रचनात्मक कार्यक्रम पर ही अधिक-से-अधिक जोर देना चाहते थे। उनके इस कार्यक्रम के तीन मुख्य उद्देश्य थे : (एक) चर्खा और कर्घा, हाथ की

कताई-बुनाई का देशव्यापी प्रचार; (दो) हिन्दू-मुस्लिम एकता; और (तीन) अस्पृश्यता निवारण। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गांधी जी ने फिर देशव्यापी दौरे शुरू किए।

चर्खा चलाने के प्रति बुद्धिजीवियों में गहरी अरुचि थी, जिसका मुख्य कारण शायद यह था कि हाथ से काम करना, और वह भी मोटा काम, भारतीय उच्च वर्ग को अच्छा नहीं लगता। संभवतः एक और कारण यह भी था कि चर्खा चलाना भारत के अधिकांश भागों में पुरुषों का नहीं, स्त्रियों का ही खाली समय का कार्य रहा है। भारत के पढ़े-लिखे लोग मन-ही-मन शायद यही सोचते थे कि कलम और तलवार ही पुरुष के हाथ के योग्य हैं। तलवार तो छूट ही गई थी, पर कलम के स्थान पर या उसके साथ-साथ चर्खे को अपनाना उन्हें रुचिकर न था। लेकिन गांधी जी उनकी रुचि को बदलने पर तुल गए थे। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय जनता और भारतीय नारी के प्रति भारतीयों के विचारों में गांधी जी ने एक परिवर्तन पैदा कर दिया था।

गांधी जी बंगाल का दौरा कर ही रहे थे कि देश पर अपने मन-प्राण और अपनी सब अचल सम्पत्ति निछावर कर देने वाले देशबंधु चितरंजन-दास का सोलह जून, सन् उन्नीस सौ पचीस के दिन दार्जिलिंग में देहान्त हो गया। गांधी जी कुछ दिनों पहले उनके साथ ठहर कर खुलना पहुंचे ही थे कि उन्हें देशबन्धु के निधन का समाचार मिला। गांधी जी सीधे कलकत्ता पहुंचे और अठारह जून को उन्होंने देशबंधु की अर्थी को कंधा दिया। गांधी जी ने कहा : "देशबंधु महानतम व्यक्तियों में से थे। उनका त्याग महान था। उनकी उदारता और दानशीलता की कोई सीमा नहीं थी।"

गांधी जी ने जैसे तिलक स्मारक निधि की स्थापना की थी, वैसे ही वह अखिल भारतीय देशबंधु स्मारक निधि की स्थापना के कार्य में जुट गए। गांधी जी बंगाल में बहुत दिनों रुके रहे। बंगाल गांधी जी को इसलिए और भी प्रिय था, क्योंकि वहीं हाथ की कताई और बुनाई की

भारतीय कला अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंची थी और वहीं अंग्रेजी राज के अन्याय, लोभ और अत्याचार ने उस कला और उद्योग की निर्मम हत्या की थी। गांधी जी भारत के इस हुनर और करतब को पुनर्जीवित करना चाहते थे।

बंगाल से गांधी जी बिहार आए और पटना में बाईस सितम्बर, सन् उन्नीस सौ पच्चीस के दिन उन्होंने अखिल भारतीय चर्खा संघ की स्थापना की। चर्खा गांधी जी की रचनात्मक सब प्रवृत्तियों का केन्द्र था। चर्खा को गांधीजी निर्बल का बल राम और रावण द्वारा हरी हुई वनवासी राम की सीता मानते थे। मशीनी सभ्यता को अपनाने वाले पूंजीवादी और साम्राज्यवादी देश ये दशानन रावण, जिनसे सीता का उद्धार करना गांधी जी का ध्येय बन गया था। चर्खा के आलोचक कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सामने उन्होंने चर्खा का यही चित्र प्रस्तुत किया। सब से महत्व की बात यह थी कि गांधी जी मिल के बने कपड़े के प्रचारक बनकर अमीर मिल-मालिकों की थैली नहीं, गरीब किसानों और दस्तकारों की झोली भरना चाहते थे। चर्खा का खूब प्रचार हुआ। किन्तु फिर भी प्रचार और अमल उतना व्यापक नहीं हो पाया, जितना कि गांधी जी चाहते थे। बुद्धिजीवियों को चर्खा एक रसहीन प्रतीक और एक मोटा उपाय जान पड़ता था। गांधी जी के चर्खा विषयक अत्यधिक आग्रह को वे लोग एक सन्त का सिधापन ही मानते थे।

सब सवर्ण हिन्दुओं को अस्पृश्यता निवारण के लिए गांधी जी तैयार न कर सके, लेकिन बहुसंख्यक सवर्ण हिन्दुओं की भावना अधिक उदार हो गई और उनके आचार-विचार भी इस विषय में थोड़े-बहुत गांधी जी के अनुकूल बनते गए। लेकिन गांधी जी की सबसे बड़ी सफलता इस क्षेत्र में यह हुई कि उन्होंने स्वयं अछूतों को जगा दिया और उनके लिए भावी उन्नति का एक मार्ग भी प्रशस्त कर दिया।

हिन्दू-मुस्लिम एकता को पुनः स्थापित करने में गांधी जी को केवल आंशिक सफलता ही मिलती रही और इस क्षेत्र में उन्हें सन उन्नीस सौ बीस-इक्कीस के सुनहले दिन फिर कभी देखने को नहीं मिले। फिर भी सन उन्नीस सौ पच्चीस के अंत में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन तक हिन्दू-मुस्लिम समस्या बहुत विषम नहीं बनी थी। खिलाफत कमेटी, कांग्रेस और हिन्दू सभा के बीच अच्छे सम्बन्ध थे।

उन्नीस सौ छब्बीस का सन् गांधी जी ने साबरमती आश्रम में रहते हुए, अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों के संगठन, 'नवजीवन' में धारावाहिक

उन्नीस सौ छब्बीस का सन गांधी जी ने साबरमती आश्रम में रहते हुए, रचनात्मक प्रवृतियों के संगठन, 'आत्याभक' के लेखन और मनन-चिन्तन में बिताया।

रूप में प्रकाशित 'आत्मकथा' के लेखन और मनन-चिन्तन में बिताया। डाक्टर अंसारी ने गांधी जी को स्वास्थ्य लाभ के लिए भी आश्रमवास का आदेश दिया था। यह वर्ष गांधी जी के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य लाभ की दिशा में उपयोगी रहा।

वर्ष के अंत में कांग्रेस का अधिवेशन असम में हुआ। अधिवेशन के चार दिन पहले ही दिल्ली में स्वामी श्रद्धानंद जी की हत्या एक धर्मान्ध मुसलमान के हाथों हो चुकी थी। कांग्रेस अधिवेशन में इस पर गांधी जी ने शोक प्रस्ताव पेश किया। मौलाना मोहम्मदअली ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए हत्यारे के कार्य की निन्दा की। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि स्वामी जी का सेवा कार्य जितना महत्वपूर्ण हिन्दुओं की दृष्टि में होगा, उतना मुसलमानों की दृष्टि में नहीं।

वस्तुत: शुद्धि और तबलीग आन्दोलनों के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता अब छिन्न-भिन्न होने लगी थी। हिन्दू महासभा और खिलाफत कमेटी के बीच राजनीतिक मतभेद दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। शायद अंग्रेजी सरकार को इस बढ़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का ही बड़ा भरोसा था। हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक मतभेद के सहारे ही ब्रिटिश साम्राज्य भारत में टिके रहने की आशा करता था।

सन उन्नीस सौ सत्ताईस में गांधी जी भारत के विभिन्न भागों का दौरा करते रहे। उन्होंने चर्खा और खद्दर का अभूतपूर्व प्रचार और प्रसार किया। अस्पृश्यता निवारण के कार्य में भी प्रगति हुई। किन्तु हिन्दू-मुसलमानों के बीच बढ़ती हुई फूट की अधिक रोकथाम न हो सकी। लार्ड रीडिंग के स्थान पर लार्ड इर्विन भारत के वायसराय बने. जिन्होंने गांधी जी को सूचना दी कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समस्या की जांच-पड़ताल के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति करने का निर्णय किया है। कहना न होगा कि इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। देश ने लगभग एकमत होकर साइमन कमीशन के बहिष्कार का फैसला किया। फिर एक ऐसा संयोग उपस्थित हो गया

कि पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्री मोहम्मद अली जिन्ना हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर एक मंच पर आ गए।

कांग्रेस का मद्रास अधिवेशन डाक्टर अंसारी की अध्यक्षता में हुआ। राष्ट्रीय एकता की दिशा में यह अधिवेशन वहुत ही सफल रहा। कांग्रेस ने श्री जिन्ना की हिन्दू-मुस्लिम एकता की योजना को स्वीकार किया। मालवीय जी ने योजना का समर्थन किया और श्री जिन्ना ने घोषणा की कि उन्हें मुसलमानों के संरक्षण के लिए लार्ड विंटरटन का नहीं, मालवीय जी का भरोसा है। इस समय श्री जिन्ना साइमन कमीशन के विरोध में पूरी तरह कांग्रेस के साथ थे। उन्होंने कमीशन के पक्षपाती सर मोहम्मद शफी जैसे जी-हुजूर मुस्लिम नेता का साथ छोड़ दिया था। क्या ही अच्छा होता कि इस अवसर पर स्वतंत्र भारत के भावी संविधान के विषय में भारत के तत्कालीन राजनीतिक नेता हिलमिल कर कोई सर्वसम्मत टिकाऊ योजना वना सकते। लेकिन गांधी जी इस विषय में मौन रहे। वह अपने रचनात्मक कार्यक्रम में संलग्न थे। बारडोली में किसान सत्याग्रह छिड़ गया था और सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में बारडोली सत्याग्रह सफल भी हुआ। गांधीजी का ध्यान इस महत्वपूर्ण घटना पर भी टिका रहा।

लखनऊ में सर्वदली-सम्मेलन पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ और सम्मेलन ने हिन्दू-मुसलमानों के राजनीतिक समझौते का आधार भी प्रस्तुत कर दिया, जो लगभग सर्वसम्मत था। लेकिन इस बीच देश की राजनीतिक परिस्थिति तेजी से वदलने लगी। साइमन कमीशन के देशव्यापी वहिष्कार ने लगभग असहयोग आन्दोलन का-सा व्यापक और उग्र रूप धारण कर लिया। नगर-नगर में वड़े-वड़े जुलूस निकले, जिनका नेतृत्व करने वाले नेताओं पर अंग्रेजी सरकार की लाठियां पड़ीं। लखनऊ में पंडित जवाहरलाल नेहरू और पंडित गोविंदवल्लभ पंत और लाहौर में अस्वस्थ और वयोवृद्ध पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय पर पुलिस ने लाठीप्रहार किया। कुछ दिनों बाद

आघात से ग्रस्त लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई। इस बर्बर आघात और लाला जी के अपमान का बदला लेने के लिए ही सरदार भगतसिंह ने लाहौर में पुलिस सार्जेन्ट सौंडर्स की हत्या की थी। इस उग्र वातावरण में सर्वदली राजनीतिक समझौते की योजना की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया।

सन उन्नीस सौ अट्ठाईस की कलकत्ता कांग्रेस का अध्यक्ष पद पंडित मोतीलाल नेहरू ने ग्रहण किया। कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज या डोमीनियन स्टेटस की मांग रखी, जिसकी स्वीकृति और घोषणा के लिए ब्रिटिश सरकार को एक वर्ष की अवधि का अवसर दिया गया। गांधी जी ने कांग्रेस के वयोवृद्ध और तरुण नेताओं को सन्तुष्ट करने के लिए एक ओर तो औपनिवेशिक स्वराज की मांग रखी और दूसरी ओर एक वर्ष की अवधि की शर्त। शर्त पूरी न हुई, तो आगामी वर्ष में पूर्ण स्वराज आप-से-आप कांग्रेस का सर्वसम्मत ध्येय होगा। कांग्रेस के वयोवृद्ध नेता पंडित मोतीलाल नेहरू कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्ष थे। तरुणों के नेता थे पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा श्री सुभाषचन्द्र बोस। गांधी जी पुराने और नए दोनों के विश्वास-पात्र थे। गत चार वर्षों के अपने अथक परिश्रम और रचनात्मक कार्यक्रम से गांधी जी कांग्रेस संगठन को फिर सशक्त बना चुके थे। एक वर्ष की अवधि में औपनिवेशिक स्वराज की मांग पूरी हुई तो ठीक! और न हुई, तो पूर्ण स्वराज [की लड़ाई शुरू करने लायक देश को तैयार कर सकना, गांधी जी की आन्तरिक इच्छा थी।

पिछले कुछ वर्षों से गांधी जी के यूरोपवासी मित्र और प्रशंसक उन्हें यूरोप बुला रहे थे। गांधी जी सन उन्नीस सौ उन्तीस में यूरोप की यात्रा करने का वचन भी दे चुके थे। लेकिन एक वर्ष की अवधि के बाद होनेवाले सत्याग्रह का ध्यान करके गांधी जी स्वदेश से बाहर न जाना चाहते थे। इस बीच रैमसे मैकडानोल्ड के नेतृत्व में इंग्लैंड में लेबर पार्टी (श्रमिक दल) की सरकार बनी, जिसने भारत को औपनिवेशिक स्वराज

देने के लिए गोलमेज़ कान्फ्रेंस बुलाने की घोषणा की। लेकिन इंग्लैंड की टोरी पार्टी (अनुदार दल) ने ऐसा शोर मचाया कि इंग्लैंड की सरकार औपनिवेशिक स्वराज देने के मुख्य प्रश्न पर फिर ढुलमुल होने लगी। तेईस दिसम्बर, सन उन्नीस सौ उन्तीस के दिन गांधी जी अन्य नेताओं के साथ वायसराय लार्ड इर्विन से मिले। वायसराय ने गोलमेज़ कान्फ्रेंस की वात तो वहुत की, लेकिन औपनिवेशिक स्वराज के पक्ष पर हां-ना करने से आनाकानी की। सवको स्पष्ट हो गया कि कहकर मुकर जाने की पुरानी रीति-नीति पर ही इंग्लैंड की सरकार चलेगी। अव कांग्रेस के सामने पूर्ण स्वराज की मांग रखने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था।

गांधी जी इंग्लैंड की श्रमिकदली सरकार से सहयोग करने को वहुत उत्सुक थे। वह यहां तक उत्सुक थे कि औपनिवेशिक स्वराज भी चाहे अभी न मिले, लेकिन भारत को इंग्लैंड बराबरी का दर्जा देकर, समझौते की वातचीत करे तो भी वात वन सकती थी। पर इंग्लैंड तो भारत को अधीन देश ही मानने पर दृढ़ था। एक वर्ष की अवधि के भीतर इंग्लैंड ने औपनिवेशिक स्वराज देने की आशा न दी थी। उस दिशा में सम्मानपूर्ण समझौते के लिए भी हाथ न वढ़ाया था। इसलिए लाहौर में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुए कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज की घोषणा कर दी गई।

कांग्रेस का प्रभाव जनता के वीच वहुत व्यापक हो गया था। लेकिन इस वार वैसी हिन्दू-मुस्लिम एकता न थी, जैसी कि उन्नीस सौ वीस-इक्कीस के दिनों में असहयोग-खिलाफत के आन्दोलन में थी। हिन्दू-मुस्लिम फूट को वढ़ावा देने में अंग्रेजी राज ने कोई कसर न की। अंग्रेज पत्रकार श्री ब्रेल्सफोर्ड ने तत्कालीन परिस्थिति के विषय में गांधी जी की जीवनी में लिखा है, "अंग्रेजी हुकूमत हिन्दू-मुसलमानों की इस आपसी फूट का पूरी तरह से लाभ उठाना चाहती थी। इस अवसर पर वह राजभक्त आगाखान की पीठ ठोंक रही थी, जैसे कि वाद में उसने

जिन्ना की पीठ ठोंकी। पर इस अवसर पर शौकतअली भी कांग्रेस के विरोधी वन गए थे। वह आन्दोलन के विरुद्ध मुसलमानों को भड़का रहे थे। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि मुसलमान राह देख रहे थे कि उन्हें गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग लेने का मौका मिले।"

यों राष्ट्रीय विचारों के अनेक मुस्लिम नेता कांग्रेस के साथ थे। मुस्लिम जनता का एक अंश भी कांग्रेस के साथ था। लेकिन अधिकांश में मुस्लिम समाज आन्दोलन में तटस्थ रहना चाहता था। विचित्र बात थी कि मुस्लिम समाज और उसके नेता गांधी जी के अछूतोद्धार और समाज सुधार के अन्य प्रयत्नों को हिन्दू आन्दोलन की संज्ञा देते थे और यह मान बैठे थे कि गांधी जी भी हिन्दू नेता हैं। गांधी जी भारतीय मुसलमानों के मित्र और हितैषी हैं, मुसलमान समाज उन्हें भुला बैठा था।

लाहौर कांग्रेस में आजादी की घोषणा ही नहीं की गई थी, आजादी का झण्डा भी फहराया गया था। भारत के हर नगर और लगभग हर गांव में छब्बीस जनवरी, सन उन्नीस सौ तीस के दिन आजादी की घोषणा की गई और आजादी का झण्डा फहराया गया। गांधी जी ने पूर्ण स्वराज के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ग्यारह बातें देश के सामने रखीं: (एक) पूर्ण मद्यनिषेध; (दो) विनिमय की दर को घटाकर रुपये को एक शिलिंग छह पेंस के बराबर मानना; (तीन) लगान की दर को आधा करना; (चार) नमक पर से महसूल उठा दिया जाना; (पांच) अंग्रेजी सेना पर खर्च की रकम को घटाकर आधा कर देना; (छह) ऊंची तनख्वाह पाने वाले अफसरों की तनख्वाह घटाकर आधी कर देना; (सात) विदेशी कपड़े के आयात पर ऐसा कर लगाना कि जिससे देसी कपड़े के उत्पादन को संरक्षण मिले; (आठ) हत्या के अपराध में सज़ा पाने वाले कैदियों को छोड़कर, अन्य सब राजनीतिक कैदियों की रिहाई; (नौ) ऐसा कानून बनाना, जिससे भारत के समुद्र तट के निकट जहाजों का चलाना भारतीय उद्योग माना जाए; (दस) खुफिया

पुलिस के विभाग को समाप्त करना; और (ग्यारह) आत्मरक्षा के लिए बन्दूक पिस्तौल रखने की छूट।

गांधी जी के इस ग्यारह सूत्रों में ऐसी कोई बात नहीं थी, जिसे किसी एक सम्प्रदाय या वर्ग के हित का माना जाए। कार्यक्रम का उद्देश्य सबका हित ही हो सकता था। आश्चर्य की बात केवल यही थी कि गांधी जी ने वायसराय से इस कार्यक्रम को स्वीकार और कार्यान्वित करने का अनुरोध किया। इस अनुरोध का यही अर्थ लगाया जा सकता था कि गांधी जी पूर्ण स्वराज के लिए नहीं, केवल सुराज के लिए लालायित थे। वायसराय से अपने अनुरोध में गांधी जी ने स्पष्ट किया था कि भारतजन की औसत आय से वायसराय का अपना वेतन पांच हजार गुना है।

दो मार्च उन्नीस सौ तीस के दिन गांधी जी ने वायसराय को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने ग्यारहवें दिन नमक कानून तोड़ने के अपने इरादे की घोषणा कर दी। गांधी जी ने वायसराय को मौका दिया कि वह दस दिन के भीतर अपने शासन की नीति में परिवर्तन का ऐलान कर

ऐतिहासिक डांडी यात्रा

सकेंगे। वायसराय ने अनुरोध को अस्वीकार किया। गांधी जी के पत्र का उत्तर स्वयं न देकर, अपने सहायक से वायसराय ने अपनी अस्वीकृति की सूचना दिलवाई। गांधी जी ने नमक कानून तोड़ने के लिए बारह मार्च, सन उन्नीस सौ तीस के दिन साबरमती आश्रम से दांडी की ओर कूच आरम्भ किया। उनके साथ चुने हुए उनासी सत्याग्रही थे। विचित्र संयोग था कि गांधी जी के इन सत्याग्रही साथियों की संख्या के समान ही उनके जीवन के वर्ष भी उनासी ही होने वाले थे।

गांधी जी को तुरन्त गिरफ्तार करने की चुनौती को वायसराय लार्ड इर्विन ने स्वीकार न किया। गांधी जी चौबीस दिनों तक कूच करते रहे। मार्ग में ग्रामीण जनता से वह अपने रचनात्मक कार्यक्रम की ही बात कहते थे। रोज सांझ-सवेरे खुले आकाश के नीचे प्रार्थनासभाएं होती थीं। गांधी जी ने लगभग दो सौ मील की पैदल यात्रा की। उन दिनों देशभर में अद्भुत जागृति का ज्वार आया। एक तपस्वी विद्रोही महात्मा ने अपने सांकेतिक कूच से अपने विशाल देश का ही नहीं, सम्पूर्ण सभ्य संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। कूच से पहले गांधी जी ऐलान कर चुके थे कि स्वराज लिए बिना वह आश्रम में न लौटेंगे।

छह अप्रैल को गांधीजी दांडी पहुंचे। सब सत्याग्रही समुद्र में नहाए। सबने उपवास रखा और प्रार्थना की। गांधी जी ने सत्याग्रही दल के नेता की हैसियत से सर्वप्रथम समुद्र से नमक निकाल कर, नमक कानून को तोड़ा। भारत भर में 'नमक कानून तोड़ दिया' के नारे लगने लगे। भारत की भूमि आन्दोलित हो गई। भारत का आकाश सत्याग्रह के नारों से गूंज उठा। जन-मन में महात्मा गांधी की मूर्ति भारत-भाग्य-विधाता के रूप में विराजमान हो गई।

सत्याग्रह, संधि-विग्रह और अनशन

सन उन्नीस सौ उन्नीस से ही छह अप्रैल का दिन राष्ट्रीय सप्ताह के आरम्भ का दिन माना जाता था। उस दिन नमक कानून तोड़कर गांधी जी ने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया, वह देश भर में दावाग्नि की भांति फैल गया। विधानसभा के सदस्यों ने इस्तीफे दिए और गांवों में मुखिया और चौकीदार भी अपने काम से हाथ खींचने लगे। बाद में जगह-जगह लगानबंदी आन्दोलन भी शुरू हो गया। भारतीय किसानों और स्त्रियों ने अभूतपूर्व विशाल संख्या में आन्दोलन में भाग लिया। उस महत्वपूर्ण वर्ष के कांग्रेस अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू

4 मई की रात को पुलिस ने छापा मारकर शांति से सोते हुए महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया।

तथा देश के और अनेक नेता गिरफ्तार कर लिए गए। अंग्रेजी राज का दमन चक्र जोरों के साथ चला, जिसकी चपेट में आन्दोलनकारियों के अभिभावक और परिवार के बड़े भी आने लगे। लेकिन ज्यों-ज्यों दमन चक्र में तीव्रता आई, आन्दोलन भी व्यापक बनता गया।

गांधी जी फिर कांग्रेस के सर्वेसर्वा अधिनायक बना दिए गए। इस बार महात्मा गांधी सत्याग्रह में पहल करने से चूकने वाले न थे। उन्होंने वायसराय को चेतावनी दी कि वह स्वयं धारासणा के सरकारी नमक गोदाम पर छापा मारेंगे। सरकार ने ऐसा न होने दिया और चार मई की रात को पुलिस ने छापा मारकर, शान्ति से सोते हुए महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया। परिणामस्वरूप भारत के सब नगरों में बड़ी-बड़ी हड़तालें हुईं। शोलापुर में गोलीकाण्ड भी हुआ और कलकत्ता में भी वातावरण घनघोर हो गया। अंग्रेजी राज की जेलें ठसाठस भरने लगीं और खजाना खाली होने लगा। इंग्लैण्ड की श्रमिक-दली सरकार गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाने की अपनी योजना के बारे में संशय में पड़ गई, क्योंकि कांग्रेस और गांधी जी की अनुपस्थिति में कान्फ्रेंस में होना-जाना ही क्या था?

धारासणा के नमक गोदाम के सामने जो सत्याग्रह हुआ, वह कितना अहिंसात्मक और अनुशासित था और उसके विपरीत सरकारी दमन कितना पाशविक और बर्बरतापूर्ण था, इसका आंखों-देखा वर्णन देश-विदेश के समाचारपत्रों में छपा। निहत्थे सत्याग्रहियों पर पुलिस लाठी तो बरसाती ही थी, उन पर लात-घूंसे भी बरसाए जाते थे। इस बार अंग्रेजी हुकूमत ने पुलिस को एक खास तरह की ट्रेनिंग यह दी थी कि सत्याग्रहियों पर भीतरी और कुठौर मार पड़े। स्त्रियों को भी बे-इज्जत करने से पुलिस और जेल के अधिकारी चूकते न थे। हुकूमत की बर्बरता देखकर, तटस्थ लोगों का भी कलेजा दहल जाता था। जी-हुजूर लोगों को जनता ने टोडी-बच्चा कहकर, छेक दिया था। देश में

अहिंसात्मक आन्दोलन का ऐसा व्यापक रूप पहले कभी देखने में न आया था।

भारत में इंग्लैण्ड के श्रमिक दल के मुखपत्र के विशेष संवाददाता का जी भी बहुत दुखा। उसने गांधी जी से जेल में भेंट करने की अनुमति प्राप्त की और सन्धिवार्ता छेड़ी। कुछ दिनों बाद श्री सप्रू और श्री जयकर ने भी गांधी जी से इसी उद्देश्य से भेंट की। कांग्रेस कार्य-कारिणी के सदस्यों को यरवदा जेल में गांधी जी के पास कुछ दिनों के लिए पहुंचाया गया। लेकिन कोई ऐसा आधार न बन पाया कि अंग्रेजी सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता सम्भव हो।

आन्दोलनकारी अहिंसक थे और उन्होंने देश की आजादी के लिए सर पर कफन बांध रखा था। तत्कालीन सीमाप्रान्त में खुदाई खिदमतगारों ने पेशावर शहर और आसपास के क्षेत्र से पुलिस के पांव उखाड़ दिए थे। उनके शान्तिपूर्ण प्रबन्ध में जनता सुखी थी। लेकिन तीन दिन बाद गोरी फौज ने आक्रमण किया। सीना तान कर खड़े हुए, शान्तिपूर्ण निहत्थे खुदाई खिमदतगारों को फौज ने मशीनगनों का निशाना बनाया। वीरों की अहिंसा की जो मिसाल खुदाई खिदमत-गारों ने देश के सामने रखी, वह सचमुच ही अद्भुत थी। इसका एक परिणाम यह निकला कि एक दिन गढ़वाली फौजियों ने निहत्थे और शान्तिपूर्ण खुदाई खिदमतगारों पर गोली चलाने से साफ इन्कार कर दिया। उन्हें भड़काया गया था कि हिन्दू और खुदाई खिदमतगार मुसलमान हैं। लेकिन गढ़वाल के फौजी सिपाही इस झांसे में न आए। निहत्थे शान्तिपूर्ण सत्याग्रहियों पर गोली चलाने को वे तैयार न हुए। उन्होंने इस फौजी अपराध के लिए अकथनीय दण्ड भोगे।

गुजरात के देहातों में सरकारी अमलदारी की बर्बरता और किसानों की संगठित वीरता की पराकाष्ठा हो गई। बम्बई में कांग्रेस ने विदेशी हुकूमत को हिला दिया। आन्दोलन का जैसा सुसंगठित स्वरूप बम्बई में दिखाई दिया, उससे यही अनुमान किया जा सकता था

कि अंग्रेजी राज गया और स्वराज आ गया। व्यापार व्यवसाय और कारखानों के इस शहर में विदेशी माल और विदेशी सत्ता का उन दिनों लगभग लोप हो गया था। आन्दोलन दिनोंदिन जोर पकड़ रहा था, अधिक व्यापक हो रहा था।

इस बीच गोलमेज कान्फ्रेंस का एक अधिवेशन लन्दन में समाप्त हो रहा था। समापन भाषण में इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री रैमसे मैक्डानोल्ड ने यह आशा प्रकट की कि कांग्रेस भी कान्फ्रेंस के दूसरे अधिवेशन में भाग ले सकेगी। संकेत पाकर, वायसराय लार्ड इर्विन ने छब्बीस जनवरी, सन उन्नीस सौ इकतीस के दिन, यानी दूसरे स्वाधीनता दिवस पर गांधी जी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों को बिना शर्त रिहा कर दिया।

कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक इलाहाबाद में पण्डित मोतीलाल नेहरू के घर पर हुई। त्यागमूर्ति पण्डित मोतीलाल नेहरू मरणशैय्या पर पड़े थे। सन्धि सन्देश लेकर श्री सप्रू, श्री जयकर और श्री श्रीनिवास शास्त्री भी उपस्थित थे। तय पाया कि समझौते की बातचीत जारी रखी जाए। कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों सहित गांधी जी दिल्ली गए। वायसराय से उनका पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ और दोनों के बीच तीन सप्ताह तक सन्धि-वार्ता होती रही, जिससे चिढ़कर चर्चिल ने कहा था, "कितनी खतरनाक और घिनौनी बात है। यह दिन भी देखना पड़ा, जब राजद्रोही बैरिस्टर मिस्टर गांधी, एक अधनंगे फकीर के भेस में, वायसराय के महल की सीढ़ियों पर धड़ल्ले-से चढ़ते चले जाते हैं, जबकि एक तरफ तो वह कानून तोड़ने के राजद्रोही आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में लिए हैं और दूसरी तरफ राजराजेश्वर के प्रतिनिधि वायसराय के साथ बराबरी के दर्जे पर समझौते की बातचीत करते हैं।"

बराबरी के दर्जे पर मिलने और सन्धि-वार्ता कर सकने का अधिकार साम्राज्यवादियों को बहुत खल गया। लेकिन स्वराज के संघर्ष

कांफ्रेंस के विषय में गांधी जी की शंकाएं सच निकलीं। अंग्रेजी सरकार ने गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने वालों को इस दृष्टि से चुना था कि भारत की आपसी फूट को खूब उछाला जा सके। देसी रियासतों के राजाओं और नवाबों के अतिरिक्त हिन्दू, सिख, पारसी, ईसाई, मुसलमान, एंग्लो-इण्डियन, अंग्रेजी व्यापारी मण्डल, ट्रेड यूनियन, जमींदार, अछूत इत्यादि सम्प्रदायों और वर्गों के बीच राष्ट्रनायक महात्मा गांधी की उपस्थिति बेतुकी मालूम होती थी। भारत के एकमात्र प्रतिनिधि को वायसराय और अंग्रेजी अफसरशाही की थैली के चट्टों-बट्टों के साथ रखकर गोलमेज कान्फ्रेंस का खिलवाड़ सत्ता के हस्तान्तरण के लिए नहीं, उसे टालने के लिए किया गया था। अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के नाम पर ब्रिटिश सरकार मूल प्रश्न, स्वराज, को बातों में उड़ा देना चाहती थी। गांधी जी का रीते हाथों लौटना अवश्यंभावी था।

अंग्रेज कौम को शासक वर्ग ने भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के बारे में अन्धेरे में रखा था। अमरीकी अखबारों की तुलना में इंग्लैण्ड के अखबार भारतीय आन्दोलन के विषय में बहुत कम सूचना देते थे। अंग्रेजी हुकूमत के दमन चक्र और पुलिस के पाशविक लाठीप्रहार तथा अन्य अत्याचारों के विवरण उनमें नहीं छपते थे। इस विषय में फिल्में दिखाई जा सकतीं, तो इंग्लैण्ड का जनमत अपने शासक वर्ग को शायद धिक्कारता, श्री ब्रेल्सफोर्ड का ऐसा मत था। लेकिन न ऐसी फिल्में भारत में अंग्रेजी सरकार बनने देती और न उन्हें विलायत में भेजा या दिखाया जा सकता। भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम और अंग्रेजी हुकूमत के पाशविक दमन चक्र के विषय में सामान्य ब्रिटिश नागरिकों की जानकारी नहीं के बराबर थी। जानकारी थोड़ी-बहुत थी तो बस इस बात की कि अच्छे भले भारतीय नेताओं को बार-बार जेल भेजा जाता था। इस बारे में ब्रिटिश सरकार बार-बार लीपा-पोती करती थी कि जेल जाने वाले नेता अधिकतर ऐसे सिरफिरे, असन्तुष्ट और अहंमन्य मध्यवर्गीय

लोग हैं जो भारतीय प्रजा और अल्पसंख्यक सम्प्रदायों और वर्गों के हितों को कुचल कर, अपने स्वार्थों और हितों को साधने के लिए सरकार पर जोर डालना चाहते हैं। न्याय और कानून के हित में हुकूमत को उन्हें जेल भेजना पड़ता है, शासक वर्ग का यही प्रचार था।

गांधी जी की लन्दन यात्रा से इतना ही लाभ हुआ कि इंग्लैंड के मजदूर वर्ग की यह गलतफहमी अंशतः दूर हो गई कि कि गांधी जी विदेशी कपड़े के बहिष्कार के द्वारा उन्हें भूखों मारना चाहता है। गांधी के मुख से अंग्रेजी राज द्वारा भारत के कपड़ा व्यवसाय के चौपट किए जाने और किसानों की गरीबी का हाल सुनकर, लंकाशायर के मजदूरों का वैमनस्य बहुत-कुछ दूर हो गया।

गांधी जी लंकाशायर के मजदूरों के साथ

इंग्लैंड के बुद्धिजीवियों से भी गांधी जी का परिचय हुआ। लेकिन इंग्लैंड के शासक वर्ग और कूटनीतिज्ञों ने गांधी जी को छकाना ही अपना धर्म समझा। वेह गांधी जी को स्वतन्त्रता का सार-तत्व, यानी औपनिवेशिक स्वराज भी नहीं देना चाहते थे।

भारतीय प्रतिनिधियों की फूट की पराकाष्ठा हो गई, जब सब अल्पसंख्यकों ने भारत में अंग्रेजी व्यापारियों के प्रतिनिधि, सर ह्यूबर्ट कर के नेतृत्व में महात्मा गांधी के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बना लिया। सब सम्प्रदायों और वर्गों के प्रतिनिधि पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग कर रहे थे। अल्पसंख्यकों ने शर्मनाक ढंग से यह सिद्ध कर दिया था कि भारत से लाभ तो सब उठाना चाहते थे, भारत का सगा उनमें कोई नहीं था। लेकिन कहा जाता है कि गांधी जी मुसलमानों और सिखों की पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग स्वीकार कर लेते, तो शायद मामला कुछ सुलझ जाता। लेकिन सौ बातों की एक बात यह थी कि ब्रिटिश सरकार को कुछ देना ही नहीं था और इसी न देने के सौ बहाने पेश किए जा रहे थे। बहानों की कोई कमी भी न थी। ब्रिटेन के शासक दल की समझ में न आया कि उनके देश और राष्ट्र के गांधी जी सच्चे मित्र थे। लेकिन शक्ति के मद और सम्पदा के लाभ में शत्रु-मित्र की पहचान किसे होती है? भारत की फूट से फायदा उठाकर, अंग्रेजों ने भारत में अपना राज जमाया था और उसी फूट से फायदा उठाकर, वे भारत में टिके रहना चाहते थे। लेकिन अचम्भे की बात तो यह थी कि भारत के अल्पसंख्यकों ने भी महात्मा गांधी जैसे उदार मित्र का भरोसा न किया, वरन् भारत के विदेशी शासकों के इशारे पर भारत और भारत के राष्ट्रपुरुष महात्मा को नीचा दिखाने में कोई कोर-कसर न रखी। गांधी जी की इस चेतावनी का भी कोई असर न हुआ कि यदि अछूतों को पृथक निर्वाचन क्षेत्र देकर भारत की आपसी फूट को बढ़ाया गया, तो वह अपनी जान पर खेल जाएंगे।

लन्दन और पेरिस में गांधी जी ने महत्व की सभाओं में भाषण किए। वह चार्ली चैपलिन और जार्ज बर्नार्ड शा से लन्दन में और लासान में रोम्यां रोलां से मिले। रोम में मुसोलिनी से

उनकी मुलाकात हुई। लेकिन तत्कालीन पोप ने उनसे भेंट न की। रोम के एक पत्रकार ने गांधी जी से भेंट किए बिना ही, एक जाली भेंट-वार्ता प्रकाशित कर दी, जिसमें गांधी जी से ब्रिटेन को धमकियां दिखाई गई थीं और सख्त-सुस्त बातें कहलाई गई थीं। गांधी जी समुद्र यात्रा के दौरान इस विषय से अनभिज्ञ रहे। अदन पहुंचने पर ही गांधी जी प्रतिवाद कर सके। लेकिन इस बीच ब्रिटेन के शासक वर्ग ने इस जाली भेंट-वार्ता का खूब प्रचार किया। ऐसा मालूम होता है कि ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी को नीचा दिखाने का पक्का इरादा कर लिया था। भारत के नए वायसराय लार्ड विलिंग्डन और इंग्लैंड में श्रमिकदली सरकार के खिसकने के बाद बनी मिली-जुली सरकार तय कर चुकी थी कि भारत में राजे-रजवाड़ों और अल्पसंख्यकों की मदद से, कांग्रेस और गांधी जी के नेतृत्व को सदा के लिए समाप्त कर दिया जाए।

गांधी जी के लन्दन प्रवास के दिनों में भारत में अंग्रेजी सरकार ने भारत में नेताओं की धर-पकड़ शुरू कर दी थी। जवाहरलाल नेहरू, खान अब्दुल गफ्फार खां और डा० खान साहब जेल में थे। बंगाल, यू० पी० और सीमाप्रान्त में भीषण दमन हो रहा था। लार्ड विलिंग्डन ने गांधी-इर्विन समझौते को जड़ से उखाड़ देने की ठान ली थी। जब तक गांधी जी स्वदेश लौटें, तब तक लार्ड विलिंग्डन कांग्रेस संगठन को कमजोर कर डालना चाहते थे। और उधर कांग्रेस के उतावले गरम दल ने भी अपने महनायक महात्मा गांधी के वापस आने से पहले ही यू० पी० में किसान आन्दोलन छेड़ दिया था। यों वायसराय की कूटनीति और दमन चक्र तथा कांग्रेस में गरम दल के अत्यधिक उत्साह और साहस के कारण, बात गांधी जी के हाथ से निकल चुकी थी। उन्होंने वायसराय से बातचीत करनी चाही। लेकिन वायसराय ने बातचीत करने से साफ इन्कार कर दिया। अंग्रेजी हुकूमत ने

अल्पसंख्यकों और राजा-नवाबों और जमींदारों का राष्ट्रीयता-विरोधी गुट बनाकर, कांग्रेस को घेर लिया था। कराची कांग्रेस में प्रगतिशील नीति-निर्धारण के बाद से भारत का धनी वर्ग भी कांग्रेस संगठन को पहली-जैसी सहायता नहीं दे रहा था। किसानों मजदूरों का संयुक्त मोर्चा ही इस परिस्थिति में कारगर सिद्ध हो सकता था, लेकिन इस दिशा में कांग्रेस बहुत दूर तक जाने में असमर्थ थी। श्रमिक-कृषक आन्दोलन का रूप अन्ततः अहिंसात्मक नहीं, हिंसात्मक विप्लव भी हो सकता था, जिसके लिए कांग्रेस का गरम दल भी तैयार न था। गांधी जी के नेतृत्व की गरम दल को भी जरूरत थी। देश की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस और कांग्रेस में अपने सहयोगियों के प्रति दायित्व के कारण, गांधी जी को फिर आन्दोलन शुरू करना पड़ा। जनता ने इस वार भी आन्दोलन का साथ दिया। सरकारी दमन चक्र की तीव्र गति और भीषणता को देखकर, चर्चिल को भी सन्तोष हुआ कि "अठारह सौ सत्तावन के वाद पहली बार हुकूमत ने अपनी शक्ति का पर्याप्त प्रयोग किया।" कांग्रेस को गैरकानूनी संस्था घोषित कर दिया गया।

गांधी जी सन इकतीस के अट्ठाईस दिसम्बर को बम्बई वापस आए और सन वत्तीस की चौथी जनवरी को गिरफ्तार कर लिए गए। कुछ ही दिनों पहले, जो इंग्लेंड की जनता द्वारा अभिनन्दित हुए और ब्रिटिश राजा और रानी के मेहमान बने थे, फिर यरवदा जेल के कैदी थे। जेल में गांधी जी सदा प्रसन्न रहते थे। लेकिन इस बार उनके भाग्य में प्रसन्नता न थी। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मैक्डानोल्ड ने अल्पसंख्यक भारतीय सम्प्रदायों के पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था के अन्तर्गत अछूतों के लिए भी पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की घोषणा की। गांधी जी पहले ही कह चुके थे कि यदि ऐसी व्यवस्था हुई, तो वह अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। अछूत होने के कारण यदि उन्हें हिन्दुओं से पृथक किया गया तो हिन्दू

धर्म की बदनामी तो होगी ही, हिन्दुस्तान बारहबाट हो जाएगा, गांधी जी को ऐसा लगा। और जीते-जी वह ऐसा न होने देंगे, यह स्पष्ट था।

गांधी जी ने सवर्ण हिन्दुओं के अन्तःकरण को जगाने के लिए, उन्हें अछूतों के प्रति उदार और न्यायप्रवण बनाने के लिए आमरण अनशन करने की ठान ली। उनका मत था कि हिन्दू समाज में न अस्पृश्यता रहेगी और न विदेशी शासक वर्ग इस परिस्थिति से अनुचित लाभ उठाकर, हिन्दू समाज और हिन्दुस्तान में अलगाव की खाइयां खोद सकेगा। गांधी जी का आमरण अनशन एक ओर तो सवर्ण हिन्दुओं की तरफ से प्रायश्चित था और दूसरी ओर चेतावनी थी यदि हिन्दू समाज के माथे पर से अब भी अस्पृश्यता का कलंक न मिटा तो हिन्दू समाज और हिन्दुस्तान विश्व भर में बदनाम हो जाएगा। दूरदर्शी गांधी जी ही यथार्थ कल्पना कर सकते थे कि पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के कारण

गांधी जी ने सवर्ण हिन्दुओं को नींद से जगाने के लिए 20 सितम्बर, 1932 के दिन आमरण अनशन शुरू कर दिया।

सवर्ण और अवर्ण हिन्दू शीघ्र ही परस्पर प्रतिद्वन्द्वी और एक-दूसरे के शत्रु बन जाएंगे। गांधी जी ने अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को रद्द करने के लिए ब्रिटिश सरकार को बार-बार लिखा। लेकिन इनके अनुरोध को न ब्रिटेन के भारत मन्त्री ने माना, न प्रधानमन्त्री ने। गांधी जी ने सवर्ण हिन्दुओं को नींद से जगाने के लिए बीस सितम्बर, सन उन्नीस सौ बत्तीस के दिन आमरण अनशन शुरू कर दिया। यह उनका पहला 'आमरण' अनशन था। और उन्हें ऐसा भी लगा कि ब्रिटिश सरकार उन्हें मरा हुआ देखकर खुश ही होगी। शायद इसीलिए इस आमरण अनशन में उनकी जीवन शक्ति चौथे ही दिन शिथिल हो गई। डाक्टरों की राय थी कि गांधी जी चार-छह दिन से अधिक नहीं जिएंगे।

पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में स्वर्ण हिन्दू, अछूतों के राजनीतिक नेताओं के साथ समझौते के लिए व्यग्र हो उठे। सबके लिए यह कल्पना असह्य थी कि महात्मा गांधी उनके बीच न रहें। ज्यों-ज्यों गांधी जी की हालत बिगड़ती गई, उन्हें बचाने के लिए हिन्दू समाज की संकल्प शक्ति प्रबल होती गई। अनशन के पांचवें दिन सवर्ण और अवर्ण हिन्दुओं के नेताओं के बीच समझौता हो गया, जिसे उन दिनों 'पूना पैक्ट' का नाम दिया गया। समझौते पर डाक्टर आम्बेदकर ने भी हस्ताक्षर कर दिए। समझौते का मसविदा गांधी जी को स्वीकार था। लेकिन अनशन की समाप्ति तभी सम्भव थी, जब ब्रिटिश प्रधानमन्त्री अपनी व्यवस्था को रद्द करें।

श्री विन्सेंट शीन इस प्रसंग में लिखते हैं—"मैक्डोनोल्ड, होर, लोथियन और इंग्लैंड के अन्य मन्त्री, जो सबके सब लन्दन से बाहर सप्ताहांत की छुट्टी मना रहे थे, रविवार, पच्चीस सितम्बर के दिन लन्दन आए। उन्होंने आधी रात तक समझौते का सविस्तर अध्ययन किया और सोमवार को लन्दन और दिल्ली में ब्रिटिश

सरकार द्वारा समझौते की स्वीकृति की घोषणा कर दी गई। गांधी जी का आमरण अनशन समाप्त हुआ और भारत भर में उत्सव मनाया गया। वम्वई और कलकत्ता में अछूतों के लिए अनेक देवमन्दिरों के द्वार खुल गए। गांधी जी के आमरण अनशन ने एक सप्ताह में वह कर दिखाया, जो हिन्दू सन्त और समाज सुधारक सदियों में न कर सके थे।

जेल में रहते हुए ही गांधी जी ने अछूतोद्धार का काय आरम्भ कर दिया। सन उन्नीस सौ तैंतीस के फरवरी महीने में गांधी जी ने अपने साप्ताहिक पत्र 'नवजीवन' की जगह 'हरिजन' का प्रकाशन और सम्पादन आरम्भ किया और साथ ही हरिजन सवक संघ की स्थापना की। अछूत की शव्द जगह हरिजन का प्रयोग गांधी जी ने ही शुरू किया। उन्होंने सवर्ण और अवर्ण हिन्दुओं के वीच राजनीतिक समझौता ही नहीं कराया वरन हिन्दू समाज के प्रमुखों द्वारा यह प्रतिज्ञा भी कराई कि, "आज से हिन्दू समाज में किसी को भी जन्मना अछूत नहीं माना जाएगा।" समझौता और प्रतिज्ञा में पण्डित मदनमोहन मालवीय ने गांधी जी का साथ दिया। भविष्य में भी उन्होंने गांधी जी के हरिजन सेवा कार्य में सहयोग किया।

हरिजन सेवा और हरिजनों का सव प्रकार से उत्थान ही अव गांधी जी का प्रमुख कार्य वन गया। जेल में उनके सहयोगी ने जव भंगी की तरह मशक्कत करने की अनुमति मांगी और अधिकारियों ने अनुमति न दी, तो गांधी जी ने वाईस दिसम्वर को फिर अनशन शुरू किया। लेकिन अधिकारियों ने गांधी जी की वात मानकर, उनके सहयोगी को भंगी का काम करने की अनुमति दे दी। कुछ दिनों वाद गांधी जी गुरुवयूर मन्दिर को खुलवाने के लिए अनशन पर उतारू हुए। लेकिन स्थानीय हिन्दुओं ने वहुमत से केरल के उस प्रसिद्ध मन्दिर के द्वार हरिजनों के लिए

खुलवा दिए। जेल की चारदीवारी से ही गांधी जी हरिजन आन्दोलन चला रहे थे। लेकिन इस परिस्थिति में आन्दोलन उतना प्रबल नहीं हो सका, जितना गांधी जी चाहते थे। गांधी जी की दृष्टि में, आन्दोलन शिथिल और सवर्ण हिन्दुओं का विरोध प्रबल पड़ रहा था। गांधी जी जेल की चारदीवारी के भीतर बेचैन हो उठे। 8 मई, सन 1933 से उन्होंने इक्कीस दिन के अनशन का संकल्प किया, जैसा कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए दस वर्ष पहले उन्होंने किया था। सरकार ने संकट में पड़ने की आशंका से गांधी जी को उसी दिन जेल से रिहा कर दिया। बाहर आकर गांधी जी ने इक्कीस दिन का अपना अनशन पूरा किया। इस विषय में उन्होंने कहा, "इक्कीस दिन की अखण्ड प्रार्थना निर्विघ्न पूरी हुई।"

इस अनशन से पहले की अपनी मनोदशा के बारे में गांधी जी ने बतलाया कि आदेश अन्तरात्मा का था, "साकार रूप में मुझे कुछ दिखाई न दिया। लेकिन एक आवाज मुझे सुनाई पड़ी, जो दूरागत होते हुए भी, बहुत निकट की थी। आवाज साफ-साफ समझ में आती थी, वैसे ही जैसे कोई मानवी वाणी। उसके आदेश को न मानना असम्भव था। जिस समय यह आवाज मैंने सुनी, मैं स्वप्नावस्था में न था। आवाज सुनने से पहले मेरे मन में भीषण संघर्ष चल रहा था। तभी अचानक वह आवाज सुनाई दी। मैंने उसे ध्यान से सुना। सुनकर, निश्चित रूप में जान लिया कि आवाज मेरी अन्तरात्मा की है। अन्तर्संघर्ष तुरन्त शान्त हो गया। मेरा मन शान्त हो गया। आदेशानुसार मैंने संकल्प कर लिया। अनशन का दिन और समय भी तभी निश्चित हो गया। मैं आनन्दमग्न हो गया।"

जेल से निकल कर गांधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन की समाप्ति की घोषणा की। लेकिन हरिजन आन्दोलन की बागडोर

उन्होंने तुरन्त संभाल ली। इस सिलसिले में उन्हें पहली अगस्त को गिरफ्तार किया गया और पांच दिन वाद रिहा कर दिया गया। उन्हें पूना से वाहर न जाने की आज्ञा दी गई। लेकिन गांधी जी ने सरकारी आज्ञा का उल्लंघन किया। उन्हें एक वर्ष की सजा हुई। इस बार जेल में उन्हें हरिजन आन्दोलन चलाने की अनुमति और सुविधा नहीं दी गई, जिसके विरुद्ध गांधी जी ने सोलह अगस्त को फिर अनशन शुरू कर दिया। तेईस अगस्त, सन उन्नीस सौ तैंतीस के दिन गांधी जी को विना शर्त रिहा कर दिया गया। इस प्रसंग में गांधी जी के अनशन की आलोचना हुई कि जेल से निकलने के लिए उन्होंने अनशन का उपयोग किया है। गांधी जी ने इसका प्रतिवाद किया और कहा कि "मेरी नीयत साफ है।" वस्तुतः गांधी जी की दृष्टि में हरिजन आन्दोलन भी स्वराज की लड़ाई का ही एक अंग था। सामाजिक अन्याय को दूर किए विना, भारतीय समाज द्वारा स्वराज की प्राप्ति न सम्भव थी, न वांछनीय। गांधी जी ने निश्चय किया कि देश के सामाजिक और आर्थिक पुनर्संगठन और उत्थान का कार्य ही सर्वोपरि है। इसलिए गांधी जी ने राजनीति से हाथ खींच लिया और हरिजन सेवा, ग्रामोद्योग, वुनियादी तालीम, नारी जागरण और राष्ट्रीय एकता के रचनात्मक कार्य में लग गए। गांधी जी सावरमती आश्रम में नहीं गए। उसे हरिजन सेवा के लिए दे दिया गया। गांधी जी ने सेवाग्राम आश्रम की स्थापना की।

रचनात्मक कार्य को प्राथमिकता दी जाए या राजनीतिक आन्दोलन को और कांग्रेस स्वतन्त्रता प्राप्ति के अपने उद्देश्य की पूर्ति में सत्य और अहिंसा का पालन करे या वैध और शान्तिपूर्ण उपायों का, इन प्रश्नों का उत्तर देने में कांग्रेस के नेता और गांधी जी एकमत न थे। कांग्रेस के कई एक नेताओं का ऐसा भी भाव था कि गांधी जी राजनीतिज्ञ नहीं, सन्त हैं और अपने

सिद्धान्तों को वह देश की आजादी से भी अधिक महत्व देते हैं। नीति, धर्म और राजनीति को वह एक दृष्टि से न देखते थे। गांधी जी ने भी अनुभव किया था कि उनका समर्थन करने वालों में भी अनेक अनुयायी केवल दिखावा करते थे या उनके व्यक्तित्व के आगे सिर झुका देते थे। ऐसी दशा में गांधी जी ने देखा कि स्थिति, मतभेद की हो या सहमति की, दोनों तरह से अवांछनीय थी। गांधी जी ने कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। जैसे कोई बड़ा-बूढ़ा बाप समझदार बेटे को स्वतन्त्रता का अधिकार दे, वैसे गांधी जी ने कांग्रेस को पांवों पर खड़ा करके, अपने शासन से मुक्त कर दिया। पर फिर भी देखने में यही आया कि साधु कम्बल को भले ही छोड़ दे, कम्बल साधु को न छोड़ता था। कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठकें गांधी जी के सेवाग्राम आश्रम में होने लगीं। गांधी जी को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के 'सुपर प्रेसीडेंट' की संज्ञा दी। कांग्रेस के अध्यक्ष यदि अर्जुन थे, तो गांधी जी सारथी कृष्ण थे, जिनके हाथ में हथियार तो नहीं, किन्तु कांग्रेस के रथ की रास थी।

सन उन्नीस सौ सैंतीस में विधानसभाओं के चुनावों का प्रश्न आया। गांधी जी ने कांग्रेस को चुनावों में भाग लेने की अनुमति दे दी। कांग्रेस की देशव्यापी विजय हुई। प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बने। कांग्रेस ने अधिकतर प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाए। यह स्वराज का पूर्वाभास था। यदि इसी समय कांग्रेस और मुस्लिम लीग में काम-काजी समझौता हो जाता, तो सम्भवत: देश को भावी विभाजन और खून-खराबी का दुर्दिन न देखना पड़ता। गांधी-जिन्ना समझौते का यही समय था। श्री जिन्ना समझौते के लिए उत्सुक थे। लेकिन कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र देकर, गांधी जी कांग्रेस की तरफ से समझौते की बात करने में स्वयं को असमर्थ समझते थे। अवसर हाथ से निकल गया। चुनावों में कांग्रेस और मुस्लिम

लीग निकट आकर दूर होती गई। हिन्दू-मुसलमानों के बीच राजनीतिक समझौता न हो सका।

राष्ट्रीयतावादी मुसलमानों का शक्तिशाली, अनुशासित और प्रबल अहिंसात्मक संगठन सीमा प्रान्त में था। खान अब्दुल गफ्फार खान उसके प्राण थे। उनके बड़े भाई डाक्टर खान साहब सीमा प्रान्त के मुख्यमन्त्री थे। कांग्रेस को सीमा प्रान्त के मुसलमानों पर नाज़ था। शायद इसलिए भी कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की बढ़ती हुई साम्प्रदायिक राजनीति को अनदेखा कर दिया। पंजाब में मुस्लिम-हिन्दू जमींदारों का एका था और बंगाल की विजयिनी कृषक प्रजा पार्टी के फजलुल हक भी तब तक श्री जिन्ना के पूर्ण प्रभाव में न थे। इसलिए भी भारतीय राजनीति के साम्प्रदायिकतावादी विषवृक्ष की ओर कांग्रेस ने पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया, क्योंकि भारत की मूलभूत एकता में कांग्रेस का विश्वास था और इस एकता का उसे पूरा भरोसा था।

गांधी जी ने सन उन्नीस सौ अड़तीस में सीमा प्रान्त का दौरा किया। वहां बादशाह खान और डाक्टर खान साहब ने उनको सिर-आंखों पर लिया। गांधी जी ने वीरों की अपनी अहिंसा का जीता-जागता प्रमाण खुदाई खिदमतगारों के विशाल लालपोश संगठन में देखा। ऐसी हालत में उन्हें भारत के भावी विभाजन की शंका क्योंकर होती ?

भारत की शाश्वत संस्कृति का वस्तुगत प्रमाण उन्हें तक्षशिला के अजायबघर में देखने को मिला। ढाई हजार वर्ष पहले की पुरातत्व-प्रधान वस्तुएं उन्हें साक्षात् देखने को मिलीं। उन वस्तुओं में पांवों में पहनने के, एक जोड़ा चांदी के कड़े थे। गांधी जी की दृष्टि उन प्राचीन कड़ों पर टिक गई। वह स्निग्ध स्वर में बोल उठे—"ठीक ऐसे ही कड़े मेरी मां भी पहना करती थी।"

सन उन्नीस सौ उन्तालीस में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया।

इंग्लैंड ने भारत को अपने साम्राज्य का अधीन देश समझकर, विश्वयुद्ध में शामिल कर दिया। कांग्रेस स्वयं भी हिटलर और मुसोलिनी के विरुद्ध थी। लेकिन मातहत और चाकर बनकर, इंग्लैंड का साथ देने के लिए बाध्य होना कांग्रेस को प्रिय न था। कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी शिमला में वायसराय लार्ड लिनलिथगो से मिले। उन्होंने इंग्लैण्ड के प्रति प्रेम और मैत्री की भावना प्रकट की, लेकिन राष्ट्रीय स्वाभिमान और स्वतन्त्रता के आधार पर ही सहमति को भी अनिवार्य बतलाया। जहां तक गांधी जी के निजी मत का सम्बन्ध था, अहिंसा के सिद्धान्त के अनुसार वह युद्ध का समर्थन करने में असमर्थ थे। लेकिन सद्भाव उनका इंग्लैंड और उसके सहयोगी राष्ट्रों के साथ था। पोलैण्ड के प्रति गांधी जी ने खुलकर अपना सद्भाव व्यक्त किया।

कांग्रेस स्वराज के बदले सहयोग देने के पक्ष में थी। लेकिन इंग्लैंड के युद्धकालीन प्रधानमन्त्री साम्राज्यवादी चर्चिल स्वराज के सम्बन्ध में बात करने को भी तैयार न थे। विवश होकर कांग्रेस ने सत्याग्रह करने का इरादा किया। गांधी जी विरोधी के संकटकाल में उससे लड़ने के पक्ष में न थे और साथ ही वह परिश्रम से पाली-पोसी हुई कांग्रेस को भी निराधार नहीं छोड़ सकते थे। कांग्रेस देश की केन्द्रीय राजनीतिक और राष्ट्रीय संस्था थी और उसके नेता त्यागी, लोकसेवक और गांधी जी के परमप्रिय सहयोगी और अनुयायी थे। इसलिए उन्होंने अंग्रेजी राज से सांकेतिक मतभेद प्रकट करने के लिए 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' की योजना बनाई। सूची में पहला नाम तपस्वी और बालब्रह्मचारी विनोबा का था। बाद में क्रमशः पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल और मौलाना आजाद के नाम

थे। कांग्रेस के नेताओं को यह योजना पसन्द न थी। फिर भी बापू की बात उन्हें माननी ही पड़ी। व्यक्तिगत सत्याग्रह के आन्दोलन में तेईस हजार दो सौ तैंतीस सत्याग्रही जेल गए। इनके अतिरिक्त हजारों ऐसे भारतीय नजरबन्द थे, जिनके राजनीतिक विचार उग्र रूप में साम्राज्यविरोधी थे।

अन्तिम आन्दोलन और बलिदान पर बलिदान

सन उन्नीस सौ इकतालीस के बीतते-बीतते जापान भी युद्ध में उतरा। पश्चिम में जर्मनी और पूर्व में जापान ने युद्ध को महा-संकटपूर्ण बना दिया। कांग्रेस का व्यक्तिगत सत्याग्रह धीमा पड़ने लगा और अंग्रेजी राज ने स्थिति को अनुकूल समझकर सत्या-ग्रहियों को रिहा कर दिया। इंग्लैंड और भारत के बीच राज-नीतिक समझौता अनिवार्य ही प्रतीत होने लगा। अमरीका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और चीन के तत्कालीन सर्वेसर्वा चांगकाई शेक इंग्लैंड पर जोर डालने लगे कि भारत का सहयोग प्राप्त करने के लिए वह भारत को स्वायत शासन दे। चर्चिल ने विवश होकर, राजनीतिज्ञ समझौते का दिखावा करना अनिवार्य समझा। 'क्रिप्स मिशन' की योजना बनाई गई, जिसकी तह में चर्चिल की कूटनीति यह थी कि प्रगतिशील राजनीतिज्ञ भारतमित्र क्रिप्स असफल हों, कांग्रेस झगड़ालू संस्था साबित हो और भारत की आपसी फूट दुनिया में उजागर हो, यानी यह कि सांप मर जाए और लाठी भी न टूटे।

क्रिप्स का प्रस्ताव ऐसा था कि भारतीय संघ को युद्ध के बाद ऐसा स्वायत शासन प्राप्त हो जिससे सम्बन्ध-विच्छेद करने की छूट प्रान्तों को तो हो ही, देसी राज्य भी जिसके अधीन न रहें। गांधी जी सौदाबाजी के विरुद्ध थे ही, सौदेबाजी की दृष्टि से भी उन्हें 'क्रिप्स प्रस्ताव' घाटे का सौदा लगा, जिसे उन्होंने 'दिवालिया बनती हुई कोठी की हुंडी' कहा। क्रिप्स

ने भविष्य में उनका पूरा भरोसा करने का अनुरोध किया। लेकिन दूध का जला भारत, छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीने की मनोस्थिति में था। इंग्लैंड लगातार वादा-खिलाफी करता रहा था और अब अपने संकट में भारत को सहयोगी बनाकर, फिर मुकर सकता था। भारत के मन में ऐसी शंका थी। कांग्रेस और इंग्लैंड के शासक वर्ग के बीच भरोसे का भाव दुर्लभ था। क्रिप्स मिशन फेल हो गया। बारह अप्रैल को क्रिप्स निराश होकर इंग्लैंड गए। चर्चिल मन ही मन प्रसन्न थे।

कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक जुलाई सन बयालीस में वर्धा में हुई। बैठक में बहुमत तत्काल स्वराज के बदले युद्ध में पूर्ण सहयोग के पक्ष में था। गांधी जी अहिंसा पर अटल, और जापान के संभाव्य आक्रमण की स्थिति में देशव्यापी अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिए कटिबद्ध थे। लेकिन वह कांग्रेस पर अनुचित दबाव न डालना चाहते थे। इसलिए कांग्रेस को वह सोच-विचार का अवसर देना चाहते थे। अगस्त में बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ। आठ अगस्त, सन उन्नीस सौ बयालीस की मध्य रात्रि तक सोच-विचार होता रहा और अन्त में गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस में 'भारत छोड़ो' कहकर भारत में अंग्रेजी राज को चुनौती दी। आठ अगस्त, सन बयालीस की मध्य रात्रि में भारत के स्वातंत्र्य-सूर्य महात्मा गांधी के मुखमंडल पर प्रदीप्त था। वह अपनी हर किरण से कह रहा था—आज से तुम सब स्वतन्त्र हो।

'करेंगे या मरेंगे' का नारा देकर भी, गांधी जी भारत में अंग्रेजी राज के सर्वेसर्वा वायसराय को समझाना और अवसर देना चाहते थे। लेकिन वायसराय ने गांधी जी को इसका अवसर ही न दिया। गांधी जी तथा कांग्रेस के नेता उसी रात या अगले दिन मुंह-अन्धेरे गिरफ्तार कर लिए गए। विन्सेंट शीन ने लिखा है कि गिरफ्तारी

के समय गांधी जी अमरीका के राष्ट्रपति को पत्र लिखने में संलग्न थे। उन्हें आशा न थी कि वह पकड़े जाएंगे।

कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं को महाराष्ट्र में अहमदनगर के किले में नजरबन्द किया गया और गांधी जी को उसी प्रान्त में पूना के आगा खान महल में। व्यक्तिगत रूप से गांधी जी के जीवन
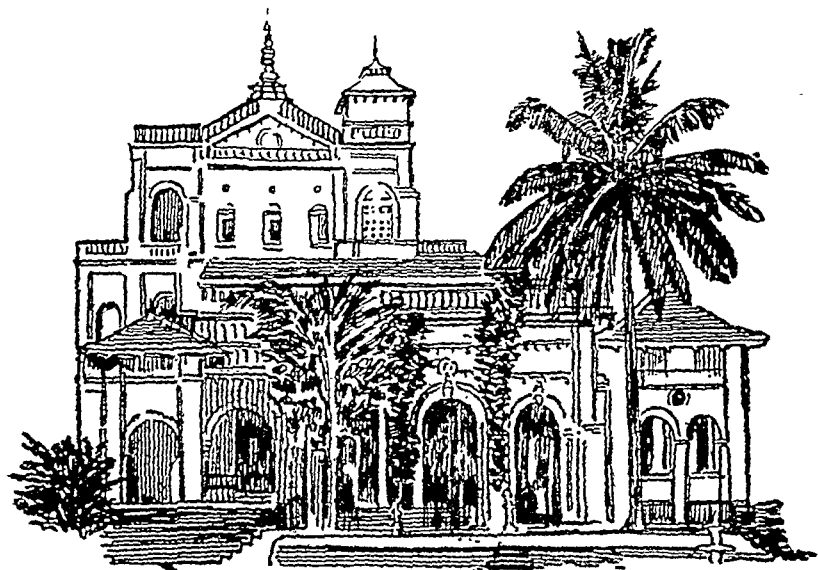
पूना का आगा खान महल जिसमें गांधीजी को नजरबन्द रखा गया था।

का दुखान्त अन्तिम अध्याय शुरू हुआ। पन्द्रह अगस्त, सन बयालीस के दिन, गांधी जी की सेवा में पच्चीस साल बिता कर, महादेवभाई देसाई एकाएक आगा खान महल के बन्दीगृह में दिवंगत हो गए। आगाखान महल में वह अपने गुरु, स्वामी, सखा और बापू के साथ केवल सात दिन ही रह पाए। इस दुखद प्रसंग में सुशीला नैयर ने जो घटनास्थल पर उपस्थित थीं, लिखा है—"महादेवभाई वगैरा के हंसने की आवाज आ रही थी। एकाएक आवाज बन्द हो गई। किसी ने मुझे पुकारा।

बा खुद आई भागी और बोली—'सुशीला, जल्दी चलो। महादेव को दौरा पड़ा है। मैं दौड़ी गई। महादेवभाई महाप्रयाण की तैयारी में थे। नाड़ी बन्द थी। हृदय की गति बन्द थी। सांस चल रही थी। बदन ऐंठा जा रहा था। मैंने बापू को बुलवाया। बापू महादेवभाई की खटिया के पास आकर खड़े हुए 'महादेव! महादेव!!' पुकारने लगे। मगर जवाब कौन दे? बा ने पुकारा—'महादेव, बापू जी आए हैं। महादेव, बापू जी बुलाते हैं।' लेकिन महादेवभाई तो उस दिन किसी को जवाब देने वाले नहीं थे। धीरे-धीरे सांस भी बन्द हो गई। पहला बलिदान पूरा हुआ।"

महादेवभाई की अन्त्येष्टि के समय बा यही पुकारती रहीं—महादेव तू जहां जाए, वहां सुखी रहना; हे भाई, तू सदा सुखी रहना। तूने बापू की बहुत सेवा की है, तू सदा सुखी रहना। वह बार-बार पूछती थीं—महादेव क्यों चला गया, और मैं क्यों नहीं? ईश्वर का यह कैसा न्याय है? महादेवभाई ब्राह्मण थे। उनकी अकाल मृत्यु से बा के मन में यह शंका भी समा गई कि "ब्राह्मंमण की मृत्यु तो भारी अपशकुन है।" बापू ने शंका का समाधान करते हुए कहा—"हां, सरकार के लिए।" लेकिन बा की शंका का समाधान न हुआ। सुशीला नैयर लिखती हैं कि "कुछ दिनों बाद वह फिर मुझसे पूछने लगीं—"सुशीला, ब्राह्मण की यह मौत तो हमारे ही सिर पर पड़ी न? बापू ने लड़ाई छेड़ी, महादेव जेल में आया और यहां उसकी मृत्यु हुई। यह पाप तो अपने ही मत्थे चढ़ा न?" मैंने समझाया—"आप ऐसा क्यों सोचती हैं? महादेव भाई तो देशसेवा में बलि चढ़े हैं। उनकी मृत्यु का पाप कैसा? और अगर हो भी, तो वह सरकार के सिर हो सकता है। बापू ने लड़ाई शुरू ही कब की थी? इस पर बा बोलीं—"हां, बात तो सच है। बापू जी ने लड़ाई शुरू नहीं की थी। वह तो अभी सरकार के साथ समझौते

की चर्चा करने जा रहे थे। लेकिन यह सरकार बड़ी पापी है। इसने कुछ करने ही नहीं दिया !"

सरकार के पाप की बात बा खूब जानती थीं। तभी तो बा ने देश को पाप की पराधीनता से मुक्त कराने में बापू को पूरा साथ दिया था। लेकिन वह पाप की पाशविक शक्ति से भी परिचित थीं। ईश्वर की शक्ति पर भी उन्हें पूरा भरोसा था, लेकिन महादेवभाई की अकाल मृत्यु से वह बहुत अधीर हो गई थीं। एक दिन बोलीं—"लेकिन आज तो ईश्वर भी हमारे ही विरुद्ध जा रहा है। देखो न, महादेव को किस तरह ले गया ?" बापू ने सुना तो बोले—"महादेव का जाना एक शुद्धतम बलिदान है। उससे आजादी की लड़ाई को लाभ ही होने वाला है।"

सुशीला नैयर लिखती हैं—"मगर बा के मन से शंका गई नहीं। एक दिन उनकी तबीयत कुछ ज्यादा खराब थी। चिढ़कर बापू स कहने लगीं—देखिए, मैं आपसे कहती थी कि इतनी बड़ी सल्तनत से छेड़छाड़ मत कीजिए। सरकार की ताकत का पार नहीं है। वह लोगों को कुचल रही है। लोग बेचारे कहां तक सहेंगे ? इसका परिणाम क्या होगा ?

"बापू ने पहले तो बा को दलीलों से समझाने की कोशिश की। लेकिन उस दिन वह इस तरह समझने को तैयार न थीं। आखिर बापू ने कहा—तो तू चाहती क्या है ? चल, तू और मैं सरकार से माफी मांग लें।

"बा चिढ़ गई थीं। बोलीं—मैं क्यों किसी से माफी मांगूं ? "तो तू कहे तो मैं वायसराय को माफी के लिए पत्र लिखूं ? —बापू बोले। बापू की मानहानि को बा किसी भी हालत में सह नहीं सकती थीं। वह जरा गुस्से में बोलीं—सुकुमार लड़कियां जेलों में पड़ी हैं। वे माफी नहीं मांगतीं और आप माफी मांगेंगे ? अब किया है, तो उसका फल भुगतिए। आपके

साथ हम भी भुगतेंगे। महादेव जेल में खतम हो गया है। अब मेरी बारी आ रही है।

"बापू चुपचाप सुनते रहे। बा जब गुस्सा होतीं, बापू आमतौर पर मौन धारण कर लिया करते थे।"

आगा खान का महल बापू और बा का अन्तिम सहनिवास था। एक दिन बा ने बापू से कहा—मैं तो यह कहती हूं कि आप अंग्रेजों से हिन्दुस्तान से जाने को क्यों कहते हैं? भले वे यहां रहें। हमारा देश बहुत बड़ा है। उसमें हम सब समा सकते हैं। आप उनसे कहिए कि वे यहां हमारे भाई बनकर रहें।"

बापू ने कहा—"तो मैं और कहता ही क्या हूं? मैं तो उनसे यही कहता हूं कि आप हमारे भाई बनकर रहें, सरदार बनकर नहीं। आप अपनी सरदारी हटा लें, तो आपके साथ हमारा कोई झगड़ा ही नहीं।"

बा ने हामी भरी—"सो तो ठीक ही है। हम अंग्रेज़ों को अपना सरदार बनाकर नहीं रख सकते। भाई बनकर वे खुशी से रहें।" इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए सुशीला नैयर ने कहा है कि दूसरे दिन बा ने कहा—"सुशीला, ये लोग बहुत बदमाश हैं। बापू जी कहते हैं—हमारे देश में हमारे भाई बनकर रहो। पर उन्हें तो हमारी सरदारी करनी है। हिन्दुस्तान को लूटना है। इसलिए बापू को और दूसरे सब नेताओं को जेल में बन्द कर दिया है।"

गांधी जी जेल में हाथ-पर-हाथ धरे बैठने वाले नहीं थे। वह सरकार द्वारा जनता के घोर दमन से दुखी थे। और यह देखकर उनका दुख दूना हो गया था कि सरकार अहिंसा के पुजारी पर ही उलटे यह इल्जाम लगा रही है कि आन्दोलन में तोड़-फोड़ और हिंसा की जिम्मेदारी उस पर है। गांधी जी मन-ही-मन अनशन करने की सोच रहे थे। उन्होंने वायसराय को इस आरोप का

खंडन करते हुए एक छोटा-सा पत्र लिखा था। उन्हें वायसराय के उत्तर की प्रतीक्षा थी। सुशीला नैयर ने लिखा है— "बापू उन दिनों बहुत ध्यानमग्न रहने लगे। इस पर मीरा बहन ने कहा—बापू को एकान्त की जरूरत है। आम के पेड़ के नीचे एक झोंपड़ी बना दी जाए, तो अच्छा हो। बा ने मना किया। बोलीं—झोंपड़ी की क्या जरूरत है। बापू तो हर जगह एकान्त में रह सकते हैं। बापू ने भी कहा— मेरा एकान्त दूसरी तरह का है। बा को मैं अपने से दूर नहीं रख सकता, रखना भी नहीं चाहता।"

बापू के जन्म दिन पर श्रीमती सरोजिनी नायडू ने आगा खान महल में दीपोत्सवी की। बा महादेवभाई की समाधि को न भूली। डा० सुशीला नैयर लिखती हैं—"बा ने मुझे पुकारा और कहा—सुशीला, शंकर के यहां दीया जरूर रख आना। पहले तो मैं कुछ समझी ही नहीं कि बा क्या कहना चाहती थीं। एक सिपाही का नाम शंकर था। मगर बा उसके यहां दीया क्यों भिजवाने लगीं ? एकाएक मुझे ध्यान आया। मैंने पूछा—बा, आप महादेव-भाई की समाधि पर दीपक रखने को कह रही हैं न ? —हां-हां, वही तो महादेव का—शंकर का—मंदिर है न ?—बा ने जवाब दिया।"

बा एक ब्राह्मण सिपाही को सीदा भी दिया करती थीं। अन्य सिपाहियों को ईर्ष्या हुई और अधिकारियों तथा साथियों ने आपत्ति की। बा ने एक न सुनी। कहा—मैं अपने हिस्से में से ही तो देती हूं। यह सच था कि बा के व्रत-उपवास के अनेक दिनों के कारण उनके हिस्से का राशन तो बचता ही था। रामायण और भागवत तो बा नियम से सुनती ही थीं, बापू से वह गीता भी पढ़ती थीं। बापू ने उन्हें गुजराती की पांचवीं किताब पढ़ानी शुरू की—उसमें कविताएं आईं। उनके शुरू में राग का नाम लिखा रहता। बापू जी बा को उनका राग

सिखाने लगे। आठ-दस दिन तक शाम की प्रार्थना के वाद वा और वापू उन कविताओं को गाया करते। श्रीमती नायडू अक्सर मजाक करतीं। वापू हंस देते और फिर वा के साथ गाने लगते।

"हर रोज दोपहर के खाने के वाद वापू एक नारंगी मंगाते और उससे वा को विषुवत रेखा वगैरह समझाते। आखिर वा को वह याद हो गए।" लेकिन वा को पंजाव की नदियों के और प्रान्तों की राजधानियों के नाम याद न रहते। "वा के पढ़ने का ढंग वच्चों का-सा था। बापू ने उन्हें समझाया कि उनको अपने पढ़ने का ढंग सुधारना चाहिए। वापू ने उनके पढ़ने के ढंग की टीका की, तो उन्होंने जोर से पढ़ना ही छोड़ दिया।" अखवार वा दूसरों से सुनने लगीं और अनासक्ति योग भी वा अव मन-ही-मन पढ़ लिया करती थीं।

"वा के लिखने का ढंग भी वच्चों का-सा था। वह अक्षरों को अलग-अलग करके लिखा करती थीं। वापू जी ने उन्हें अच्छी तरह लिखना सिखाने की कोशिश की। उन्हें लिखने का अभ्यास करने को कहा। वा में चोहत्तर साल के अनुभव और वुद्धिमत्ता के साथ ही वालक की-सी सरलता भी थी।"

यह पूछे जाने पर कि धर्मनिष्ठा और वैष्णव घर के आचार-विचार में पली हुई सरल वाल-हृदय बा ने बापू के सुधारवादी आचार-विचारों को क्योंकर अपनाया, वापू ने उन्हीं दिनों वतलाया था—"मुझे कहना चाहिए कि इस काम में मेरे परिवार की सव स्त्रियों की मदद मुझे मिली। वे सव वा से कहती थीं—दूसरे लोग चाहे पुराने रीति-रिवाज का पालन करें, अछूतों को घर में न आने दें, मुसलमानों का छुआ पानी तक न पिएं, मगर तुझे तो ये सब विचार छोड़ ही देने चाहिएं। अपने पति के पीछे चलना ही मेरा धर्म है। उसके पीछे चलते

हुए कुछ भी क्यों न करे, तुझे उसका पाप लग ही नहीं सकता। उसका तो शुभ परिणाम ही हो सकता है।

"और बा ने हमेशा उनकी सलाह पर अमल करने की कोशिश की है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसने हर एक कदम अपनी बुद्धि से समझ कर उठाया है, लेकिन मैं तो हमेशा यह मानता आया हूं कि बुद्धि हृदय के पीछे चलने वाली चीज है। बा ने जो कुछ किया है, श्रद्धा से किया है, हृदय से किया है। और बाद में बुद्धि से भी वह उन चीजों को बहुत हद तक समझ सकी है।"

बा में छुआछूत की भावना न रह गई थी। हिन्दू-मुसलमान के प्रति उनके मन में समभाव था। वह बापू के सब अनुयायियों और सेवकों को अपनापा देती थीं। आश्रम की सब लड़कियां उनकी बेटी और सब लड़के उनके बेटे थे। बापू सबके बापू थे। तो बा सबकी बा थीं। पर चौहत्तर बरस की बा का स्वास्थ्य अब ढह चुका था। और सन उन्नीस सौ तैंतालीस के फरवरी मास में स्पष्ट हो गया कि बापू उपवास करेंगे। श्रीमती नायडू ने जोरदार शब्दों में बापू से कहा—बापू, आपका उपवास बा को खतम कर डालेगा।"

बापू हंस दिए और बोले—"मैं बा को तुम लोगों से ज्यादा पहचानता हूं। तुम लोग बा की बहादुरी का अन्दाज भी नहीं लगा सकते। उसे तुम पहचानते ही नहीं हो। आखिर मैंने बा के साथ बासठ साल बिताए हैं। मैं तुमसे कहता हूं कि बा तुम सबसे अधिक हिम्मत रखने वाली है। मेरे हरिजन उपवास के दिनों में, जब मैंने जीवन की आशा छोड़कर अपना सब सामान अस्पताल वालों को बांट देने का निश्चय कर डाला था, तब बा ने दृढ़तापूर्वक अपने हाथों सारा सामान दूसरों को बांट दिया था और उस वक्त उनकी पलक तक नहीं भीगी थी।"

उसी शाम बापू ने बा से आगामी उपवास के बारे में बातें कीं। दूसरे दिन बा कहने लगीं—"जहां इतनी ज्यादा झुठाई चल रही हो, वहां बापू चुप कैसे बैठ सकते हैं ? सरकार के अत्याचारों पर अपना विरोध जताने के लिए बापू के पास उपवास को छोड़कर, दूसरा साधन ही क्या है ?"

10 फरवरी, सन 1943 के दिन बापूजी ने इक्कीस दिन का उपवास आरम्भ किया। उन्होंने पहले ही कह दिया था कि यदि आवश्यकता पड़ी, तो वह पानी के साथ मौसम्बी का रस थोड़ा-बहुत ले लेंगे। हमेशा की तरह बा ने भी अन्न छोड़ दिया। और फलाहार पर रहने लगीं। डाक्टरों के आदेश से वह शहद मिलाकर पानी पीती रहती थीं। एक दिन डा० गिल्डर ने बा से कहा कि कहीं ऐसा न हो कि अधिकारी लोग समझें कि बा पानी में शहद घोलकर बापू को पिलाती हैं। बा ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"बापू के बारे में कोई ऐसी शंका कर ही नहीं सकता।"

उपवास के तीसरे दिन बापू को मचली आनी शुरू हुई। बा ने कहा—"पानी में थोड़ा मौसम्बी का रस लीजिए न ?" बापू ने इंकार किया। बा ने फिर कभी आग्रह नहीं किया। तेरहवें दिन बापू की हालत बहुत खराब हो गई। वह जीवन-मरण के बीच झूल रहे थे। वह दस मिनट में आधा औंस पानी भी नहीं पी सके। थक कर बेहोश हो गए ; नाड़ी कमजोर हो गई। बदन पसीने से तर हो गया। बोलना तो दूर, उनमें इशारा करने की भी ताकत न रही। बा तुलसी के सामने प्रार्थना करने में लीन थीं। डा० सुशीला नैयर लिखती हैं—"मीरा बहन चुपके से बाहर बरामदे में बुलाकर ले गईं। वहां बा तुलसी माता के सामने घुटने टेक कर प्रार्थना कर रही थीं। उनके मुख का भाव इतना करुण और दीन था कि देखने वाले की आंखें डबडबा आती थीं। बा अपने ध्यान में लीन थीं। उनको इस बात की

खबर न थी कि कौन उनके पास खड़ा है या उधर से गुजर रहा है।"

मीरा बहन चुपके से बाहर बरामदे में बुलाकर ले गइ। वहां बा तुलसी माता के सामने घुटने टेककर प्रार्थना कर रहीं थीं।

बापू ने उस दिन दो औंस मौसम्बी का रस पानी के साथ लिया। डा० नैयर ने लिखा है—"मैंने डरते-डरते कहा—'बापू जी, क्या मौसम्बी का रस लेने का समय नहीं आया?' सात मिनट तक विचार करने के बाद बापू ने इशारे से मंजूरी दी। मैं फौरन ही दो औंस रस और पानी मिलाकर ले आई और बापू को पिलाया। बापू जी के निस्तेज चहरे पर जीवन की किरण झलकने लगी। इतने में बा आ पहुंचीं। भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली।"

22 फरवरी, सन 1943 का दिन था। ठीक एक साल बाद इसी तारीख को बा ने देह छोड़ी। लेकिन उपवास के दिनों में यह कौन जानता था? उन दिनों सरकार ने आगा खान महल के द्वार खोल दिए थे। बहुत-से लोग बापू के दर्शनों को आते-जाते थे। कहा

जाता है कि अधिकारियों ने चंदन की लकड़ियां भी मंगा रखी थीं, जो ठीक एक वर्ष वाद वा के लिए काम आईं। उपवास पूरा हुआ और मुलाकाती जाने लगे और वा की आंखें सजल हो आईं। विदा देते समय उन्होंने आश्रमवासिनी एक वहन से कहा—"वहन, यह आखिरी राम-राम है। वा ने आश्रमवासिनी वहनों की प्रार्थना के श्लोक 'गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय। कौरवः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥' को दोहराते हुए वोलीं—"अव तो कृष्ण भगवान इन कौरवों से घिरे हुए हमारे देश की सुध लें तो अच्छा हो। हम दोनों को चाहे जेल में रखें, लेकिन और सवकी रिहाई हो।" वास्तविक वात तो यह है कि वा वेमियाद नजरवंदी के जेल जीवन में इस वार अपनी ध्रुव मृत्यु की ही वार-वार कहती थीं। वह पहले अनेक वार जेल गई थीं। लेकिन इस वार उन्हें जीवित वाहर जाने की आशा न थी। वापू के उपवास के वाद तो उन्होंने साफ कह दिया था कि अव वह अधिक दिनों न जिएंगी।

डाक्टर नैयर लिखती हैं—"मैंने कहा, वा ऐसा क्यों कहती हैं? हम सव ही वाहर जाने वाले हैं।" वा ने उत्तर दिया—"हां, तुम सव जाओगे।" वापू का उपवास तीन मार्च को पूरा हुआ। अधिकतर मुलाकाती दो मार्च को ही विदा कर दिए गए थे। तीन-चार दिन वाद देवदासभाई और रामदासभाई भी विदा कर दिए गए। पुत्रों की मुलाकात वन्द होने के वाद से वा का स्वास्थ्य गिरने लगा। वह उदास रहने लगीं। और दो सप्ताह वाद उन्हें दिल की धड़कन के दौरे पड़ने लगे। उनकी सेवा-टहल के लिए जयसुखलाल गांधी की पुत्री मनु को नागपुर जेल से तवादला करा के वुला लिया गया। वा की हालत सुधरी। समय वीतता गया और दो अक्तूवर सन उन्नीस सौ तैंतालीस को वापू का जन्म दिन आया। वापू ने पिचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश किया। उस दिन वा ने वापू के हाथ के कते सूत की साड़ी पहनी, जो खासतौर पर सहेज कर रखी गई थी। आदेश दिया गया कि जब वापू की गोद में

सिर रख कर वह देह छोड़ें, तब यही साड़ी उन्हें पहनाई जाए। और चार मास बाद यही हुआ।

सन तैंतालीस के नवम्बर से ही बा बीमार रहने लगीं। कैरम खेलने का उन्हें शौक था, पर खेलते-खेलते उनकी सांस फूल जाती थी। खेल बन्द कराया गया। बा ने चारपाई पकड़ ली। सांस उखड़ती, तो लेटा न जाता और बा को पहियों वाली कुर्सी पर बिठा कर घुमाया जाता। सामने रखी छोटी मेज पर अपने हाथ रख और सिर टिकाकर वह सो भी लेतीं। बा की मृत्यु के बाद वह मेज़ बापू ने अपने पास रखा ली थी। बापू उसी पर खाना खाते थे और शायद सामने बैठकर पति को खाना खिलाने वाली जीवन-संगिनी को याद किया करते थे।

सन चवालीस की मकर संक्रांति के दिन तिल-गुड़ के लड्डू बनवाने के लिए बा का आग्रह देखकर, बापू ने समझाया कि जेल और घर में अन्तर है और घर पर जो हो सकता है, जेल में नहीं। लेकिन बा न मानीं। आखिर तिल-गुड़ की उनकी मांग पूरी हुई। लड्डू बने और बा ने अपने हाथ से सिपाहियों, अधिकारियों और साथियों में बांटे।

जेल में बा को सुविधाएं प्राप्त होती थीं, लेकिन समय से नहीं। कई बार तो बापू की बहुत लिखा-पढ़ी और कहने-सुनने के बाद—"अपनी पत्नी के इलाज के लिए मैं आवश्यक प्रबन्ध न कर सकूं, तो कृपा कर आप लोग मुझे किसी दूसरे जेलखाने में ले जाएं, जिससे मुझे अपनी पत्नी की वेदना का मूक साक्षी न बनना पड़े।" देर-अबेर से ही सही, बा के सब तरह के इलाज हुए। परिचर्या भी खूब हुई। लेकिन उनकी मृत्यु सन्निकट थी। बा भी इसे जानती थीं। जाने से पहले कोठा शुद्ध करने के लिए रेंडी का तेल लेने का आग्रह करने लगीं। कमजोरी बढ़ेगी, डाक्टरों की आपत्ति को इस अनसुनी कर बोलीं—"बढ़ने दीजिए न? मुझे तो अब मसान में ही जाना है न?"

डाक्टर गिल्डर ने कहा—"आप ऐसा क्यों कहती हैं ? अभी तो आपके लड़के आने वाले हैं। लड़कों से तो अभी मिलना है न ?"

वा मुस्कराने लगीं और फिर गम्भीर होकर बोलीं—"उन्हें क्यों वुलाते हैं ? आप सव मेरे लड़के ही हैं न ? मर जाऊं तो जला देना। रामदास को तो आने से रोक ही देना। किराया वहुत लगता है। और गाड़ियों में भीड़ वहुत रहती है।" वा हर रोज हरिलालभाई के बारे में पूछा करतीं। सत्रह फरवरी को हरिलालभाई एकाएक आ गए। महात्मा पिता के विद्रोही वड़े वेटे को देखकर वा बहुत खुश हुई। रात को जव हरिलालभाई को रहने की अनुमति न मिली तो वा नाराज हुईं—"यह क्या बात है ? देवदास को तो चाहे जव आने देते हैं और हरिलाल एक ही वार आ सकता है ? भाइयों में इतना फरक क्यों करते हैं ? यह वेचारा गरीव है तो अपनी मां से नहीं मिल सकता।"

वापू ने वा को शान्त किया। हरिलालभाई के लिए भी इजाजत ले ली। लेकिन तन, मन और जीवन से टूटे हुए हरिलालभाई ही फिर तीन दिनों तक लापता हो गए।

हरिलालभाई ने पिता से विद्रोह किया था। उनकी शिकायत थी कि वापू ने अपने वच्चों के प्रति अन्याय किया है और परायों के साथ उदारता वरती है। हरिलालभाई भी मातृभक्त थे। एक वार की वात है कि वापू जी बा के साथ सदल-वल बम्बई से इलाहावाद जा रहे थे। कलकत्ता मेल जवलपुर से निकलकर कटनी में रुकी। "महात्मा गांधी की जय !" के वीच एक एकाकी कंठ की पुकार सुनाई पड़ी—"माता कस्तूरवा की जय !" भीड़ को चीरते हुए हरिलालभाई वा की पुकार करते हुए गांधी जी के डिब्वे के पास पहुंचे और उन्होंने अपनी मां को एक मौसंवी भेंट की। कहा—"इसे तुम्हीं खाना, वा। इसे तुम्हारे लिए ही लाया हूं।" वापू भी हँसते हुए खिड़की पर आए और वोले—"मेरे लिए कुछ नहीं लाया ?" विद्रोही वेटे ने बड़े वाप से कहा—"नहीं, यह तो वा के लिए ही लाया हूं। आपसे

तो सिर्फ यही कहना है कि बा के प्रताप से ही आप इतने बड़े बने हैं।"

"इसमें तो कोई शक ही नहीं।"—बापू बोले—"लेकिन क्या तू अब हमारे साथ चलेगा ?" बेटे ने कहा—"नहीं, मैं तो बा से मिलने आया हूं।" और मां बेटे की बातें होने लगीं—"लो, बा, यह मौसंबी।" "कहां से लाया?" "कहीं से लाया होऊं। तुम्हारे लिए प्रेमपूर्वक लाया हूं। भीख मांगकर लाया हूं।" बा ने मौसंबी ले ली। लेकिन बेटे को संतोष न हुआ—"बा, यह मौसंबी तुम्हीं को खानी है। तुम न खाओ, तो मुझे वापस दे दो।" बेटे को एकटक निहारती हुई मां बोली—"अच्छा, अच्छा, यह मौसंबी मैं ही खाऊंगी।" बेटे पर टिकी हुई दृष्टि टिकी रही। बा ने कहा—"तू अपना हाल तो देख? जरा यह तो सोच तू किसका बेटा है। चल, हमारे साथ चल।" हरिलाल बोले—इसकी तो बात ही न करो बा ? मैं अब इस हालत से उबर नहीं सकता।" बा की आंखें छलछला आईं। गार्ड ने सीटी दी। ट्रेन चली। बिछुड़ते हुए बेटे ने मां से फिर कहा—"मौसंबी तो तुम्हीं खाना, भला !" गाड़ी आगे बढ़ने लगी तो बा को सुध आई—"अरे, बेचारे को फल-बल कुछ नहीं दिया। भूखों मरता होगा।" डलिया से फल निकालकर बाहर देखा, तो गाड़ी प्लेटफार्म पार कर चुकी थी। लेकिन दूर से क्षीण होती हुई आवाज सुनाई पड़ रही थी—"माता कस्तूरबा की जय !"

इसके बाद हरिलालभाई ने अपने पिता का जी जलाने को क्या-क्या नहीं किया ? वह मुसलमान बने और फिर आर्य समाज में अपनी शुद्धि कराई। लेकिन फिर भी अशुद्ध आचार-विचारों से उबर न सके। मां ने लिखा था—"चिरंजीव हरि, तू क्यों मेरा जी जलाता है ? क्यों अपने बाप को दुख देता है ? लेकिन हरिलालभाई पिता के प्रति विद्रोह की आग में स्वयं को मिटाते ही रहे। मां के अंतिम दिनों में वह आए और फिर गायब हो गए। सरकार ने और मित्रों ने उन्हें

हीनावस्था में बेसुध पाया। हरिलाल मरणशैय्या पर पड़ी अपनी मां के सामने अंतिम बार इक्कीस फरवरी को दोपहर के समय आए। उनकी हालत देखकर बा बहुत दुखी हुई और दुख की मारी अपना सिर पीटने लगीं। हरिलालभाई को उनके सामने से हटा दिया गया।

शाम को हरिलालभाई की बेटी मनु, उसके चाचा देवदासभाई तथा और भी सगे-सम्बन्धी उपस्थित थे। अपने छोटे बेटे से बा ने कहा—"अब तू सबको संभालना। बापू तो साधु हैं। उन्हें सारी दुनिया की चिन्ता है। इसलिए अब परिवार तुझी को सम्भालना है।" रात पड़ी। रात को बा के पास रहने की इजाजत आगंतुकों में केवल देवदासभाई को मिली थी। हरिलालभाई की पुत्री मनु को भी बाहर जाना पड़ा। बा की वह अंतिम रात थी। बा त्रिदोषग्रस्त थीं, जिसे निमोनिया से आक्रांत कहा जाता है। बापू के शब्दों में—"राम-नाम ही अब उनकी दवा थी।" और सब दवाएं बन्द कर दी गई थीं। बापू ने बा के अंतिम तीन-चार दिनों में उनकी सेवा-सुश्रूषा का काम अधिकांश में अपने हाथ में ले लिया था। लोग लाख कहते, वह बा के पास से हटते न थे। अंतिम दिन, यानी बाईस फरवरी, सन उन्नीस सौ चवालीस को पूर्वाह्न में बापू ने जब कहा—"मैं जरा टहल आऊं?" तो बा ने मना कर दिया। वह बापू के कन्धे पर सिर धरे बहुत देर तक विश्राम करती रहीं। दोपहर को देवदासभाई गंगाजल और तुलसीदल लाए। बापू बोले—देवदास गंगाजल और तुलसीदल लाया है, लोगी? बा ने तुलसीदल के टुकड़ों के साथ गंगाजल बापू के हाथ से लिया और गंगा जी का स्मरण करती रहीं। जाने से पहले उनकी हालत में सुधार-सा दिखाई देता था। साढ़े पांच बजे पेनिसिलीन आई। देवदास-भाई का मन हुआ कि डाक्टरों को प्रयोग कर लेने दिया जाए। लेकिन जब बापू को पता चला कि अनेक बार इंजैक्शन देने होंगे, तो अपने पुत्र को समझाया—"तू कैसी ही चमत्कारी औषधि क्यों न ले आए, अब तू अपनी मां को नहीं बचा सकेगा। याद रखना कि चार-चार

छह-छह घंटे में सुई लगवा कर, तू अपनी मरती हुई मां को शारीरिक पीड़ा ही पहुंचाएगा ।" इतने में बापू की पुकार हुई । बा उन्हें बुला रही थीं । बापू बा के पास बैठ गए । लेकिन मनु से फोटो लेने को मना कर दिया ।

बा की बेचैनी बहुत बढ़ रही थी । उन्हें किसी कल चैन नहीं मिलता था । बापू ने पूछा—"क्या होता है ?" बा ने अस्फुट स्वर में कहा—"कुछ समझ नहीं पड़ता ।" इतने में बा के भाई माधवदास जी आए । बा ने उन्हें पहचाना । आखें भर आईं । उठने को हुईं । बापू ने कहा —"लेटी रहो ।" बा ने बापू की गोद में सिर डाल दिया । आखें पथराने लगीं । 22 फरवरी, सन 1944 की शाम को ठीक सात बजकर पच्चीस मिनट पर बा की आत्मा मुक्त हुई । देवदास जी बा-बा कहकर रोने लगे । बापू की आंखों के कोयों से आंसू की दो बूदें टपक पड़ीं ।

बा ने बापू की गोद में सिर डाल दिया । आंखें पथराने लगीं । 22 फरवरी, 1944 की शाम को ठीक सात बजकर पच्चीस मिनट पर बा की आत्मा मुक्त हुई ।

बा को अगले दिन चिता पर लिटा दिया गया। बापू ने अपने पुत्र को आदेश दिया, "देवा, महादेव के अंतिम संस्कार मैंने किए, बा के अंतिम संस्कार तू कर।" देवदासभाई ने हाथ में अग्नि लेकर बा के शव की तीन बार प्रदक्षिणा की और जोर से गोविंद-गोविंद कहते हुए चिता को प्रज्वलित कर दिया। घी से सींची हुई, चंदन की चिता धक-धककर जल उठी। चौथे दिन फूल बीनते समय चिता-भस्म से कांच की पांच चूड़ियां अक्षुण्ण अवस्था में मिलीं। कहते हैं सुहागिनी सती की चूड़ियों को आंच नहीं आती। चिता-भस्म पूना के पास देहू की इंद्रायणी नदी में और फूल प्रयाग की त्रिवेणी में प्रवाहित कर दिए गए। बापू बा के विछोह को भुला न पाते थे। कहते—"उसकी याद आती है, तो मैं भी धीरज नहीं रख पाता।"

बा की मृत्यु के बाद से बापू भी अस्वस्थ रहने लगे थे। उन्हें मलेरिया हुआ। सरकार ने सोचा कि कहीं आगा खान के महल में तीसरी मृत्यु न हो जाए। 6 मई, सन 1944 के दिन बापू को नजरबंदी से रिहा कर दिया गया। तिरानवें सप्ताह जेल में रहकर, बापू ने बलिदान घर से विदा ली। जाने से पहले वह दोनों समाधियों पर फूल चढ़ाने गए, जिनमें पहली पर 'ओम्' अंकित था और दूसरी पर 'हे राम!'

बलिदानों की परम्परा में

गांधी जी को बहुत अस्वस्थ अवस्था में जेल से रिहा किया गया था। मलेरिया के बाद उन्हें पेट का रोग लग गया था। सबकी समझ में आ गया था कि उन्हें अधमरा करके छोड़ा गया है। देश की भी ऐसी ही हालत थी। हजारों की संख्या में देशभक्त जेल में थे। आर्थिक दृष्टि से देश एक ओर तो मुनाफाखोरी, चोरबाजारी, काली कमाई और मुद्रा-स्फीति की गिरफ्त में आ गया था और दूसरी ओर बेकारी, मंहगाई और भुखमरी की मार थी। बंगाल के अकाल में पन्द्रह लाख लोग काल के गाल में पहुंच चुके थे। यह तटस्थ लोगों का अनुमान है। भारतीय राजनीति में हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव अपनी चरम सीमा पर पहुंच रहा था। प्रगतिशील बुद्धिवादी भी दो राष्ट्र की बात करने लगे थे। हिन्दू राष्ट्र और मुस्लिम राष्ट्र के महानेता क्रमशः महात्मा गांधी और श्री जिन्ना माने जाने लगे थे।

ऐसी स्थिति में भी गांधी जी ने ब्रिटिश सत्ता और नए मुस्लिम महानेता जिन्ना साहब (और बाद में कायदे आजम जिन्ना साहब) से सद्भावपूर्ण समझौते के प्रयत्नों का सूत्रपात किया। वायसराय लार्ड वेविल की इच्छा थी कि भारत ब्रिटिश सत्ता के अन्तर्गत अखण्ड बना रहे। श्री जिन्ना स्वतन्त्रता और विभाजन चाहते थे। इसलिए उनके साथ गांधी जी का मतैक्य न हुआ। शायद श्री जिन्ना का डर दिखाकर अंग्रेज़ सत्ताधीश कांग्रेस को अपूर्ण स्वराज स्वीकार करने के लिए विवश करना चाहते थे और कांग्रेस को डराने के लिए वे श्री जिन्ना को बराबर बढ़ावा देते रहे थे। लेकिन आखिर दांव-पेच के प्रयोग से राजनीतिक परिस्थिति अंग्रेज़ी राज के हाथ से भी निकल गई और भारत की स्वतन्त्रता या सत्ता के हस्तान्तरण के लिए उसे बाध्य

होना पड़ा और कांग्रेस को भी भारत के रक्तरंजित विभाजन के मूल्य पर स्वतन्त्रता लेनी पड़ी। अंग्रेज़ी राज की जैसी परिणति अन्यत्र हुई है, वैसी ही भारत में भी हुई। स्वतन्त्रता के लिए संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा से विभाजित नहीं हुआ, वरन् उसे अपने दक्षिणी राज्यों से भी गृह युद्ध करना पड़ा। आयर और अल्सटर के रूप में आयरलैण्ड विभाजित हुआ। मिस्र और सूडान और जोर्डन और इज़राइल में भी इंग्लैण्ड की भेद नीति और अन्ततः विभाजन की नौवत आई। यही हाल भारत का हुआ।

लार्ड वेविल ने सन उन्नीस सौ पैंतालीस के जून मास में गांधी जी तथा अन्य अनेक भारतीय नेताओं को परामर्श के लिए शिमला वुलाया। कहते हैं कि आमन्त्रित नेताओं की कुल संख्या वावन थी। लार्ड वेविल उन्हें ताश के वावन पत्ते वनाकर खेलते रहे और 'पेशेंस' के इस खेल के वाद उन्होंने अपनी योजना की घोषणा की, जिसके अनुसार उनकी काउंसिल के सव सदस्य भारतीय होंगे और उनमें हिन्दू और मुस्लिम सदस्यों की संख्या वरावर-वराबर होगी। कांग्रेस ने हिन्दू और मुसलमानों की देशव्यापी तीन-चौथाई और एक-चौथाई जनसंख्या को भी भुलाकर इसे मान लिया। लेकिन जिस बात को कांग्रेस न मान सकी, वह यह थी कि कांग्रेस को केवल हिन्दू सदस्यों की ही सूची देने का अधिकार था। कांग्रेस में राष्ट्रीयतावादी मुस्लिम नेता भी सम्मानित पदों पर थे। पर लार्ड वेविल तो कांग्रेस को केवल हिन्दुओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था मानते थे। कांग्रेस ने लार्ड वेविल की योजना को अस्वीकार कर दिया। लेकिन लार्ड वेविल की योजना का प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणाम यह निकला कि भारत की भावी स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारत का भावी विभाजन भी सुनिश्चित हो गया। कांग्रेस हिन्दुओं की राजनीतिक संस्था और मुस्लिम लीग मुसलमानों की, यह वात लार्ड वेविल ने प्रतिपादित ही नहीं की, प्रामाणिक भी वना दी।

श्री जिन्ना से कांग्रेस का राजनीतिक समझौता सम्भव ही न था और श्री जिन्ना अधिकतर भारतीय मुसलमानों के सिरमौर बन चुके थे। विन्सेंट शीन लिखते हैं—"जिन्ना बहुत ही योग्य और सफल वकील थे। पहले वह कांग्रेस के क्रियाशील और सशक्त कार्यकर्ता रह चुके थे। लेकिन अपने लंदन प्रवास के बाद, जब वह भारत लौटे तो इस विश्वास को लेकर कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग, जो कभी सहकारी राजनीतिक संस्थाएं थीं, अब परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होनी चाहिएं। शायद यह गांधी जी के अद्भुत नेतृत्व के प्रति उनकी ईर्ष्या और जवाहरलाल नेहरू के प्रति वैमनस्य का प्रभाव रहा हो। वह बहुत अहंमन्य थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया होगा, इसे जानता होगा। वह ईमानदारी से मानते थे कि काबिलियत में वह किसी से कम नहीं हैं। इसलिए वह दूसरा दर्जा लेकर किसी के साथ काम नहीं करना चाहते थे।" वह दस बरस में पाकिस्तान के नाम पर मुसलमानों के सर्वेसर्वा बनने में सफल हुए। इस प्रकार भारतीय राजनीति को उन्होंने एक नए ही सांचे में ढाल दिया। भारत के हिन्दू और मुसलमान पारस्परिक राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता में ऐसे उलझे कि दोनों भूल ही गए कि दोनों का एक ही दुश्मन है—अंग्रेज़ी राज। वस्तुतः दोनों की राजनीतिक समस्याएं भी एक ही जैसी थीं—विदेशी साम्राज्यवाद से उत्पन्न गरीबी और गरीबी में जड़ जमाने वाली बेकारी, लाचारी, अविद्या और बीमारी—दोनों औपनिवेशिक शोषण, विदेशी दलालों के छल और विदेशी कारकुनों के बल से परेशान थे। दोनों राजे-नवाबों और जमींदारों के भार से दबे थे। लेकिन भारतीय राजनीति में तब विवेक लुप्त हो रहा था।

विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी चर्चिल की चुनावों में पराजय हुई। इस प्रकार साम्राज्य का विघटन न चाहने वाले, युद्धकालीन इंग्लैण्ड के इस अपराजेय साम्राज्यवादी महानेता का पराभव हुआ। लेकिन साथ ही साम्राज्यवाद से अनवरत धर्मयुद्ध करने वाले और अखण्ड भारत के महानतम नेता महात्मा गांधी भी स्वतन्त्र भारत के

भावी विभाजन के महत्वपूर्ण प्रश्न पर अकेले पड़ गए। यों अविवे
और विवेक, दोनों की शक्तियां एक-साथ क्षीण होने लगीं।

इंग्लैण्ड की विजयिनी श्रमिकदलीय सरकार ने सन उन्नीस
छियालीस में वायसराय लार्ड वेविल को लंदन बुलाया। भारत अ
ही लार्ड वेविल ने एक नई योजना की घोषणा की, जिसके अन्तर्ग
केन्द्रीय विधान मण्डल और प्रान्तीय विधानसभाओं के लिए चुना
की व्यवस्था की गई। चुनावों का महत्व इसलिए बहुत बढ़ गया
कि उनके बाद ही इंग्लैण्ड द्वारा भारत के भावी संविधान पर निर्ण
होना था। परिणाम यह निकला कि जहां बहुमत हिन्दुओं का थ
वहां कांग्रेस की पूर्ण विजय हुई और जहां मुसलमानों की जनसंख्
अधिक थी, उन क्षेत्रों में मुस्लिम लीग को पूर्ण विजय मिली। द
बरस के भीतर, यानी उन्नीस सौ सैंतीस से छियालीस तक में कांग्रे
और मुस्लिम लीग सहयोगी से विरोधी शक्तियां बन गई थीं
भारतीय राजनीति का नक्शा ही बदल गया था।

चुनावों के बाद इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री एटली ने अपने मन्त्रिमण्ड
के तीन सदस्यों को भारत भेजा। क्रिप्स, पैथिक लारेंस और एलेग्ज़ेंड
तीनों ब्रिटिश मन्त्री दो महीने भारत में रहे। वे बहुत जगह ग
और अनेक राजनीतिक नेताओं से मिले। इन तीनों ब्रिटिश मन्त्रिय
में से क्रिप्स भारत और गांधी जी से पहले ही परिचित थे। लार्ड पैथि
लारेंस का भी गांधी से तीस बरस पुराना परिचय था। वह सन अट्ठाई
में भारत की यात्रा भी कर चुके थे। इंग्लैण्ड में गांधी जी तीस वर्ष पू
उनके घर खाना भी खा चुके थे। दोनों गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग
चुके थे। तीसरे मन्त्री भारत से तो अधिक परिचित न थे, लेकि
इंग्लैण्ड के जनमत के अच्छे जानकार थे। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री एटल
के ये तीनों मन्त्री विश्वासपात्र थे। इन तीनों मन्त्रियों के लिए यह
स्वाभाविक था कि भारत की भीतरी फूट से उनके प्रस्ताव प्रभावि

परिवर्तन हो गया था। धीमे-धीमे यह स्पष्टतर होता गया, कि अधिकाधिक शासनाधिकार लेने की जिम्मेदारी अब भारतीय राजनीतिज्ञों पर आती जा रही है। सत्ता प्राप्ति की अधीर लालसा, आपसी वैमनस्य, अहंमन्यता और अदूरदर्शिता ने राजनीतिज्ञों को एकमत न होने दिया।

इस देश का दुर्भाग्य था कि जब राजलक्ष्मी घर के द्वार पर खड़ी थी, तब भी इसके हिन्दू, मुसलमान, सिख और दलित जातियों के नेता व्यक्तिगत मानाभिमान, साम्प्रदायिकता, वैयक्तिक और वर्ग स्वार्थ से बहुत ऊपर न उठ सके। यह भी दैवी दुर्विपाक या मनुष्यों के बुद्धिभ्रम की ही परिणति थी कि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति की दिशा में पहल इंग्लैण्ड की ओर से हो रही थी और भारतीय नेताओं का ध्यान सत्ता के बंटवारे की ओर ही था। गांधी जी ने सुझाया कि केन्द्र में खुदमुख्तार हुकूमत श्री जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग को को ही सौंप दी जाए। यदि उधर से इन्कार हो तो कांग्रेस को। लेकिन लेनेवालों में मेल न हो तो देनेवाला तो बांट-बांटकर ही देता है। और यह भी सच है कि बंटवारे में सबको संतुष्ट करने की शक्ति कभी नहीं होती।

लार्ड पैथिक लारेंस ने लिखा है : "अपने दोनों सहयोगी मन्त्रियों के साथ उनके भारत से 29 जून, सन 1946 के दिन वापस जाने तक अन्तरिम केन्द्रीय सरकार बनने की दिशा में समझौता न हो सका था। समझौते की सम्भावना भी दिखाई न देती थी....गांधी और कांग्रेस के नेता मानने लगे थे कि हमारे प्रतिनिधि मण्डल की ओर से ईमानदारी से ही यह कोशिश हुई है कि भारत स्वतंत्रताप्राप्ति की ओर बढ़े। लेकिन जिन्ना के मन में यह भाव गहरे में घर कर गया है कि कांग्रेस के साथ बहुत अधिक रियायत बरती गई है।

छह जुलाई को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बम्बई में बैठक हुई। गांधी उसमें गए। अपने भाषण में उन्होंने साफ कहा कि

चारों ओर अन्धेरा-ही-अन्धेरा दिखलाई पड़ता है । फिर भी उन्होंने कांग्रेस की कार्यकारिणी द्वारा ब्रिटिश मन्त्रियों के प्रस्ताव की स्वीकृति का विरोध नहीं किया । केन्द्रीय संविधान सभा में जाना स्वीकार किया गया । यह भी मान लिया गया कि कांग्रेस अन्तरिम सरकार में शामिल होगी । इक्कीस दिन बाद मुस्लिम लीग की कौंसिल ने कांग्रेस के निर्णय के विपरीत प्रस्ताव पास किए और डटकर आन्दोलन करने की भी धमकी दी ।

संविधान सभा के चुनावों में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने भाग लिया । कांग्रेस के निर्वाचित सदस्यों की संख्या दो सौ पांच और मुस्लिम लीग के निर्वाचित सदस्यों की तिहत्तर । फिर भी मुस्लिम लीग कांग्रेस के समकक्ष बैठकर, केन्द्र में बराबर का हिस्सा चाहती थी । मुस्लिम लीग के दुराग्रह का अन्त न था और कांग्रेस में भी सत्याग्रह करने की सकत न रह गई थी । गांधी जी ने दुखी होकर स्वीकार किया था कि आन्दोलनों में देश में उनके धर्मयुद्ध की नीति का व्यापक रूप में कभी पालन ही नहीं किया गया था ।

मुस्लिम लीग के खुले आन्दोलन, यानी साम्प्रदायिक दंगों के शुरू होने का दिन सोलह अगस्त का था । कलकत्ता में भीषण दंगे हुए, जिनमें पांच हजार व्यक्ति हत और पन्द्रह हजार आहत हुए ।

बारह अगस्त के दिन लार्ड वेविल ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू को अन्तरिम सरकार बनाने का बुलावा दिया । दोनों पक्षों की सरकार बनाने के निमन्त्रण को श्री जिन्ना पहले ही ठुकरा चुके थे। जवाहरलाल जी फौरन बम्बई गए और श्री जिन्ना से मिले । श्री जिन्ना ने जवाहरलाल नेहरू के सम्मिलित सरकार बनाने के आग्रह को ठुकरा दिया । 2 सितम्बर, सन 1946 के दिन केन्द्र में कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार बनाई, जो शास्त्रीय शब्दावली में तो वायसराय की काउंसिल ही थी, लेकिन जिसे मन्त्रिमण्डल की संज्ञा दी जाती थी । पण्डित जवाहरलाल को प्रधानमन्त्री कहा जाने लगा । वह मृत्युपर्यन्त इसी

पद पर रहे, यद्यपि बाद में विभाजन से देश छोटा और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति से उनका पद बहुत बड़ा हो गया।

कांग्रेस की अन्तरिम सरकार बनने के बाद साम्प्रदायिक दंगे और भी व्यापक हो गए, जिनकी पुनरावृत्ति नई सरकार की स्थापना के दिन मुस्लिम लीग द्वारा काले झण्डों से शोक दिवस मनाने से हुई। वायसराय के मुस्लिम लीग से फिर अनुरोध करने पर जिन्ना साहब ने अपने पांच प्रतिनिधियों को अन्तरिम सरकार में शामिल होने की अनुमति दी। मुख्य प्रतिनिधि लियाकतअली खान ने छूटते ही ऐलान किया कि मन्त्रिमण्डल संयुक्त दायित्व के आधार पर नहीं है। यानी यह कि बाहर की तरह भीतर भी मन्त्रिमण्डल में फूट ही रहेगी।

फूट और दंगों के दिनों में गांधी जी हिन्दू-मुस्लिम एकता और एकता के लिए व्यक्तिगत बलिदान की प्रेरणा देते रहे : "कायरता से बड़ा और कोई पाप नहीं है।" गांधी जी हुकूमत के जोर पर या फौज की मदद से शान्ति स्थापना के स्थान पर जनता और जनसेवकों द्वारा एकता और पारस्परिक प्रेम को व्यापक और गहरा बनाने के पक्ष में थे।

बंगाल के बाद बिहार में साम्प्रदायिक उत्पात हुआ, जिसका दुखद समाचार गांधी जी को कलकत्ता में मिला। गांधी जी को गहरा आघात पहुंचा, क्योंकि भारत में बिहार के चम्पारन में ही उन्होंने किसानों के लिए सबसे पहले अपना सार्वजनिक कार्य शुरू किया था। बिहार से गांधी जी को विशेष अनुराग था। गांधी जी को कभी ऐसा भी लगता कि देश काल बदल गया है और उनका समय बीत चुका है : "मेरे अन्तःकरण की आवाज कहती है कि होनेवाले व्यर्थ के रक्तपात को देखने के लिए तुम न रहोगे। सूर्य के प्रकाश की भांति स्पष्ट सत्य को यदि लोग आज नहीं देख पाते, यदि लोग तुम्हारे कहे पर ध्यान नहीं देते, तो क्या इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारा समय

शान्ति स्थापित कर सके। गांधी जी का आत्मविश्वास और जनसेवा का उत्साह बढ़ा। उन्हें यह आशा हो चली कि शायद भारतवासी अब भी मिल-जुलकर अपना भावी संविधान बनाने को राजी हो जाएंगे। इसीलिए असम प्रान्त और सिख सम्प्रदाय के लोगों को उन्होंने 'केबिनेट मिशन' की व्यवस्था से हटकर राय दे दी। शायद उन्हें मन-ही-मन खल रहा था कि नेतृत्व स्वदेश के हाथों से निकल परदेसी सत्ता के पास चला गया है। गांधी जी की स्वतन्त्र व्यवस्था से जिन्ना साहब फिर चिढ़ गए। समझौता और संयुक्त दायित्व की सम्भावनाएं और भी दुर्लभ हो गईं।

आखिर ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने ऐलान किया कि भारत में आपसी सहमति और समझौता हो या न हो, ब्रिटिश सत्ता भारत में अधिक से अधिक जून उन्नीस सौ अड़तालीस तक ही रहेगी। उसके बाद भारत जाने, भारतवासी जानें!

लार्ड वेविल के स्थान पर लार्ड माउण्टबेटन की नियुक्ति वायसराय के पद पर हुई और उन्होंने आते ही ऐलान किया कि वह भारत में अन्तिम वायसराय हैं। गांधी जी ने तुरन्त कहा कि ऐलान समझ-बूझकर, बिना किसी शर्त के और वास्तविक अर्थ में किया गया है। लेकिन उन्हें चिन्ता हुई कि आपसी फूट से टूटकर और एक-दूसरे के खून के प्यासे बनकर, कहीं भारतीयजन ही वायसराय से टिके रहने की प्रार्थना न करें। उस हालत में तो भारत कहीं का न रहेगा। भारतीय किसी को मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे।

पारस्परिक संशय, भय और वैमनस्य को भुलाने के लिए गांधी जी गांव-गांव अलख जगाते रहे, नगर-नगर घूमते रहे। विभाजन के भूखों को शान्त करने के लिए गांधी जी ने यहां तक कहा कि "जैसे मैं बलात् भारत विभाजन के विरुद्ध हूं, वैसे ही मैं बलात् भारत की अखण्डता को बनाए रखने के विरुद्ध हूं।"

बाइविल की एक कहानी में दो स्त्रियों ने एक वालक पर अधिकार पाने के लिए दावा किया। दोनों ही स्वयं को वालक की मां वताती थीं। न्यायमूर्ति राजा ने कहा—तव तो वालक को दो टुकड़ों में काटना पड़ेगा। एक औरत ने व्यवस्था को स्वीकार किया, दूसरी रो पड़ी। बुद्धिमान न्यायमूर्ति राजा ने पहचान लिया कि वालक की असली मां कौन है। उसने रोती हुई मां को उसका बेटा सौंप दिया। लेकिन भारत में देशभूमि के बंटवारे के लिए बेटों ने झगड़ा किया और इंग्लैण्ड से भारत के विभाजन की व्यवस्था ली। आखिर कटना उसी को पड़ा, जिसने कहा कि 'काटना है तो मेरे शरीर के टुकड़े कर दो, भारत के नहीं।' देश का वलिदान महात्मा गांधी का ही वलिदान था।

गांधी जी भारत विभाजन में भी सांस्कृतिक एकता के आधार पर और उसे वनाए रखने के लिए पंजाव और वंगाल के विभाजन के विरुद्ध थे। विरुद्ध जिन्ना भी थे, लेकिन अधिक सत्ता की प्राप्ति के लिए। भारत विभाजन के वाद भी गांधी जी आस लगाए रहे कि शायद किसी दिन उनके सद्भाव और प्रेमपूर्ण प्रयत्नों से दो विछुड़े भाई फिर मिल जाएं। लेकिन गांधी जी को वह दिन देखना न वदा था।

3 जून, सन 1947 के दिन इंग्लैण्ड और भारत में साथ-साथ ऐलान कर दिया गया कि पाकिस्तान और भारत दो स्वतन्त्र देश-राष्ट्र और राज्यों की स्थापना ब्रिटिश सत्ता को मान्य है। इसे पण्डित जवाहरलाल नेहरू, कायदे आज़म जिन्ना और सरदार वलदेव सिंह ने भारत की ओर से और ब्रिटिश संसद् के दोनों सदनों में सब दलों ने ग्रेट ब्रिटेन की ओर से स्वीकार कर लिया। ब्रिटेन की संसद में निर्विरोध प्रस्ताव पास हुआ कि 15 अगस्त, सन 1947 से भारत को विभाजित करके दो डोमिनियन (स्वायत्त सत्ताप्राप्त देश) इण्डिया और पाकिस्तान नाम से अस्तित्व में आ जाएंगे। और भीषण रक्तपात और हर्षोल्लास के वीच दुर्भाग्य और सौभाग्य का वह दिन आ भी गया।

गांधी जी के बारे में लार्ड पैथिक लारेंस लिखते हैं—"लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के हर्ष और उल्लास में उस आदमी ने हिस्सा नहीं लिया, अपने देश को विदेशी हुकूमत से मुक्त कराने में जिसका सबसे अधिक श्रेय था। इसके विपरीत उसने तो यह कहा कि उत्सव के उजाले में उसे सब कहीं अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता है। उसने अपने मन की बात को छिपाया नहीं और साफ-साफ कहा कि उसने भारत विभाजन की व्यवस्था का विरोध किया था और अब भी उस दिन की आस लगाए हुए है जब विभाजन की व्यवस्था समाप्त होगी और विभाजित देश फिर एक हो जाएगा।"

लोगों ने कहा कि महात्मा जी भारत विभाजन के विरुद्ध अनशन क्यों नहीं करते? गांधी जी ने जवाब दिया कि जो व्यवस्था मेरे सहयोगियों को स्वीकृत है, उसके विरुद्ध अनशन न करूंगा। "हां, वह अठहत्तर बरस की उमर में भी देश में शान्ति यात्रा करने को उतावले थे। साम्प्रदायिक शान्ति के लिए वह अनशन करने को भी तैयार थे। अपने देशवासियों का नेता और मानवता का शिक्षक वीरता का ऐसे तत्वों से बना था"—लार्ड पैथिक लारेंस लिखते हैं।

भारत का विभाजन सामान्य घटना नहीं थी। रक्तपात से ही नहीं, भूमि से विस्थापित होकर जनता विचलित हो गई थी। गांधी जी अपनी प्रार्थनासभा में भगवान से बराबर कहते थे—भारतरूपी गजराज डूब रहा है, उसे उबारो!

पंजाब के विभाजन का आघात हिन्दू, सिख और मुसलमानों को सहना पड़ा। व्यवस्था के ऐलान और उसके कार्यान्वित होने में इतना कम समय लगा कि लोग समझ भी न पाए कि उन्हें कब क्या करना है। बस एक काली आंधी आई और जमे हुए वृक्षों को उखाड़ गई। पंजाब में रक्त और अश्रु की एक प्रलय-सी आई और सदियों से जमा हुआ जन-समाज उसमें डूबने लगा। सेना की देखरेख भी भीषण रक्तपात को न रोक सकी। लेकिन बंगाल में विभाजन से पहले की

दुर्घटना की पुनरावृत्ति विभाजन के बाद न हुई। इसका श्रेय सम-सामयिक इतिहासकारों ने एकमात्र महात्मा गांधी को दिया, जो विभाजन और स्वतन्त्रताप्राप्ति के दिनों में कलकत्ता में बैठे थे। अठारह अगस्त के दिन हिन्दू-मुसलमानों ने कलकत्ता में और बंगाल में अन्यत्र भी कई स्थानों पर ईद का त्यौहार हिल-मिलकर मनाया था। कुछ चतुर लोगों ने कहा कि यह मेल अस्थायी है।

कलकत्ता में शान्ति स्थापना के लिए गांधी जी ने तब आमरण अनशन की घोषणा की। तुरन्त महानगर में शान्ति छा गई। मुस्लिम लीग के पत्र 'मार्निंग न्यूज़' ने छापा—"प्राण निछावर करने को वह सदा तैयार हैं कि लोग शान्ति से जी सकें।" 'लंदन टाइम्स' का कहना सर्वथा यथार्थ था कि जो काम एक विशाल सेना के लिए भी न होता, वह एक आदमी ने कर दिखाया।

सितम्बर के अन्त में गांधी जी दिल्ली आ गए। हरिजन बस्ती में, जहां वह दिल्ली में ठहरा करते थे, शरणार्थियों को स्थान मिला था। इसलिए गांधी जी को बिरला भवन में ठहराया गया। दो अक्तूबर, सन उन्नीस सौ सैंतालीस के दिन गांधी जी ने उनासीवें वर्ष में प्रवेश किया। उनके दर्शन करने और उनका अभिनन्दन करने बहुत लोग आए। गांधी जी ने कहा—"मेरे हृदय में व्यथा ही व्यथा है। यदि घृणा और मारकाट का ऐसा ही वातावरण बना रहा, तो उनके जीने का हेतु क्या रह जाएगा?"

उन दिनों गांधी जी अपनी व्यथा को सहकर, कैसे सर्वत्र प्रेम और शान्ति का प्रसाद वितरित करते रहे, यह अचम्भे की बात थी। भारतीय प्रजा के पशु बनते जाने से वह बहुत पीड़ित थे। क्या यही उनके सपनों का भारत था? क्या यही उनके अथक परिश्रम और उनकी देशसेवा का फल था? किन्तु देशप्रेम और निष्काम कर्म के अभ्यास ने गांधी जी को जिलाए रखा, कार्यरत रखा। कुछ क्षुब्ध और दुखी देशवासियों ने कहा—महात्मा जी, अब तुम हिमालय चले

जाओ। गांधी जी का उत्तर था—अपने बच्चों को छोड़कर, मैं कहां जाऊं? आहत भारत ही मेरा हिमालय है।

यौवन काल में उनकी साध थी कि विलायत से स्वदेश आकर, मां से पूर्ण व्रतपालन की शाबाशी लूंगा और बैरिस्टरी से अच्छी आजीविका कमाकर, मां का राजपाट बहाल करूंगा। लेकिन माता के दर्शन भाग्य में बदे न थे। युवक मोहनदास करमचंद गांधी आंखों में आंसू पीकर और मन मसोस कर रह गए। फिर जब माता भारतमाता बन गई, बैरिस्टर गांधी ने सत्य, अहिंसा और सेवा का व्रत लिया। शायद कहीं मन में साध थी कि भारतमाता से व्रत पालन की शाबाशी मिलेगी और स्वतन्त्रताप्राप्ति से महात्मा सपूत अध्यात्म ज्योति अपनी भारतमाता को फिर राजरानी के रूप में देखेंगे। लेकिन यह क्या? अध्यात्म ज्योति की जगह हिंसा और वैमनस्य का अन्धकार? स्वच्छ ग्राम, सहयोगी समाज, सर्वोदयी भारत का सपना क्या कभी सत्य सिद्ध होगा? लेकिन नहीं, कर्मयोगी का संशय से क्या वास्ता? महात्मा गांधी विचलित भारतीय प्रजा और विस्थापित आदर्श की पुन:स्थापना के कार्य में लगे रहे। जो शोकमग्न थे, उन्हें सांत्वना, जो क्षुब्ध थे, उन्हें धैर्य और जो भयभीत थे, उन्हें अभय देना बापू को खूब आता था।

सेवा से ऊबे और मेवा के लिए लार टपकाने वालों को बापू ने संयम और समझदारी का सन्देश दिया। सहयोगियों के मतभेद उन्होंने दूर किए। आपदा में पड़े हुए बहुत बड़े अपने परिवार को उन्होंने राष्ट्रपिता के रूप में छांह दी। लेकिन उनकी छांह में भी जो क्रोध और प्रतिहिंसा, अरक्षा और भय से कांप रहे थे, उन्हें वह इन प्रश्नों का क्या उत्तर देते—कहां जाएं? हम क्या करें?

असह्य पीड़ा और अन्तर्संघर्ष को शान्त करने का अन्य कोई उपाय न देख, बापू ने बारह जनवरी को अनशन का ऐलान किया और तेरह जनवरी से उसे आरम्भ भी कर दिया। अठारह जनवरी

को राजधानी में सर्वदलीय नागरिक शान्ति समिति की स्थापना हुई और उसने दिल्ली में शान्ति स्थापना का संकल्प किया। भारत सरकार ने पाकिस्तान से काश्मीर के झगड़े के कारण पाकिस्तान के भाग की जो बहुत बड़ी धनराशि रोक रखी थी, उसकी भी भरपाई हो गई। गांधी के अनशन का उद्देश्य पूरा हो गया। गांधी जी ने मौलाना आजाद के हाथ से नारंगी का रस लिया। लोगों को सन्तोष हुआ।

लेकिन एक वर्ग को असन्तोष भी हुआ। बीस जनवरी के दिन बापू की प्रार्थना सभा के अहाते में बम विस्फोट हुआ। बापू को इस बात से कोई चिन्ता न हुई। उनकी प्रार्थनासभा नित्य नियमित रूप से होती रही। पुलिस के संरक्षण को बापू हमेशा नापसंद करते थे। और

बापू की प्रार्थना सभा।

सच तो यह है कि किसी को कल्पना ही नहीं हो सकती थी कि बापू

पर कोई आक्रमण करेगा। पूछा जा सकता है कि क्या भारत के विभाजन की कल्पना किसी को हुई थी ? कौन जानता था कि अकारण, अप्रत्याशित और कल्पनातीत ढंग से भारत विभाजन में सत्तर-अस्सी लाख लोग मारे जाएंगे और डेढ़ करोड़ लोगों को घरबार और कुटुम्ब-परिवार छोड़कर विस्थापित होना पड़ेगा ? स्वयं गांधी जी ने ही कहा था--"सोचता हूं तो मेरा सिर चकराता है। यह सब हुआ कैसे ? विश्व के इतिहास में ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई। इसके कारण मेरा और आपका सिर शर्म से झुक जाना चाहिए।"

शर्म से सिर झुक जाने का अवसर तीस जनवरी की शाम को पांच वजकर पांच मिनट के तुरन्त वाद हुआ। गांधी जी, उपवास के वाद जिनकी कमज़ोरी अभी दूर नहीं हुई थी, अपनी पोती और पोते की वहू का सहारा लेकर प्रार्थनासभा में आ रहे थे। एकाएक एक युवक आगे वढ़ा और बापू के चरणों में झुका और घुटने टेककर,

महात्मा का महा प्रयाण।

अजातशत्रु पर धायं-धायं गोलियां दागने लगा। बापू ने 'हे राम?' कहा, हाथ जोड़े और धराशायी हो गए।

क्या कभी इतना बड़ा दुष्काण्ड इतने ओछे हाथों हुआ! लेकिन जरा नाम के व्याध के हाथों द्वारिकाधीश के गोलोक जाने की बात भी तो बहुत-कुछ ऐसी ही है। महाभारत के वैभवकाल में स्वर्णद्वारिका के अधीश्वर श्रीकृष्ण और परतन्त्र भारत की छोटी-सी सुदामापुरी में जन्म लेने वाले रामभक्त जनसेवक मोहनदास करमचन्द गांधी के प्रयाण में समानता देखना समसामयिक को पौराणिक बनाने की व्यर्थ चेष्टा ही होगी। मोहनदास करमचंद गांधी के जन्म और मरण के बीच एक अद्भुत साम्य देखना ही क्या अलम् न होगा? 2 अक्तूबर, सन 1869 के दिन, भोर की आरती के समय उनका जन्म एक ऐसे स्थान में हुआ था, एक ओर जिसके श्रीकृष्ण का मन्दिर था और दूसरी ओर श्रीराम का; और मरण हुआ सन्ध्या समय प्रार्थना-सभा में। फिर भी एक सामान्य बालक के जन्म और एक महामान्य महापुरुष के देहोत्सर्ग में साम्य का एक यही तत्व हो सकता है कि हर नर में नारायण का निवास है।

○